समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच. डी. (हिन्दी साहित्य) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी
मोहरसिंह बैरवा

पर्यवेक्षक
डॉ. पूरणमल मीना
सहायक आचार्य

हिन्दी विभाग
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाई माधोपुर

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2019

डॉ. पूरणमल मीना
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाईमाधोपुर (राज.)

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध प्रबन्ध **'समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद)'** शोधार्थी **मोहर सिंह बैरवा** ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है—

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी का बताई गई शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देता हूँ।

दिनांक :

डॉ. पूरणमल मीना
(शोध पर्यवेक्षक)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled "SAMKALEEN PARIDRISHYA ME DALIT SAHITYA KI ABHIVYAKTI (2001 KE BAD)'' by MOHAR SINGH BAIRWA has been examined by us. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as Author own work.
c. There is no fabrication of data or results which have been compiled/analyzed.
d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.
e. The thesis has been checked using (i)TURNITIN (ii) SMALL SAE TOOLS-plagiarism checker website (iii) Viper-The Anti-plagiarism Scanner and (iv) plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Singnature of Research Scholar)

Name & Singnaturand seal of Research supervisor

Place:

Date:

Place:

Date:

लघु सार (Abstract)

'साहित्य समाज का दर्पण है' का प्रचार-प्रसार तो काफी हुआ, लेकिन दलित साहित्य के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त की परिणति व्यावहारिक रूप में नहीं हुई। दलित समाज जितना उपेक्षित रहा, उतना साहित्य भी। दलित समाज और साहित्य ने अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए निरन्तर संघर्ष किया है तथा इसी अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए दलित साहित्य प्रतिबद्ध है। जहाँ दलित साहित्य का मूल उद्देश्य नये मानवीय एवं समतामूलक समाज का निर्माण करना है दलित साहित्य के केन्द्र में भारतीय समाज का सबसे निचला तबका, मेहनतकश, सर्वहारा एवं असंख्य मानव जाति है जिसे सदियों-सदियों से मनुवादी वर्ण-व्यवस्था ने धर्मशास्त्र, सामाजिक परम्परा आदि की आड़ में दलितों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से गुलाम बनाकर रखा। इतिहास इस बात का गवाह है कि प्राचीनकाल से अब तक शोषण और उत्पीड़न सिर्फ शूद्र एवं पिछड़ी जातियों का ही हुआ है।

भारतीय समाज सदियों से वर्ण-व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ा रहा तथा इस वर्ण-व्यवस्था की कलुषित मानसिकता ने मनुष्य-मनुष्य के बीच अलगाव पैदा कर भारतीय समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन वर्णों में बाँट दिया। इसी व्यवस्था के चलते सबसे निकृष्ट वर्ग को शिक्षा और ज्ञान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित कर दिया गया तथा उनकी धार्मिक अनुष्ठान एवं कार्यों में उपस्थिति निषिद्ध कर दी गई। उनको केवल अपने से ऊपर तीनों वर्णों की सेवा करने का कार्य थोप दिया गया। इस प्रकार उनको तमाम अधिकारों से वंचित कर उनका जीवन नरक तुल्य बना दिया।

'साहित्य समाज का दर्पण होता है' अत: समाज में व्याप्त ऐसी घोर विडम्बना का प्रतिबिम्ब साहित्य में होना आवश्यक है। प्राचीन समय से लेकर आधुनिक काल तक दलित चेतना किसी-न-किसी रूप में विद्यमान थी। लेकिन इसकी व्यापकता आधुनिक काल में आकर एक साकार रूप धारण करती है जहाँ पर दलित समाज अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करता हुआ नजर आता है तथा साथ ही अपने अधिकारों की माँग भी करता है।

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का उद्‌भव इसी संघर्ष की परिणति है, जिसके माध्यम से दलित अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए तथा एक नये समाज के निर्माण की अवधारणा रखी। इस विचारधारा के मूल प्रेरणा स्रोत डॉ. अम्बेडकर थे जिन्होंने दलित साहित्य को विकास पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। उनकी पहल और समाजवादी विचारधारा ने दलित साहित्य को दिशा प्रदान की और एक अलग पहचान दिलवाई।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इन्हीं स्रोतों को आधार मानकर समकालीन दलित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

वर्तमान समय में अनेक दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित साहित्य का सृजन कर रहे हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो समकालीन दलित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन एक विस्तृत एवं वृहद् कार्य बन जाता है। अत: शोध की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए और अपने अध्ययन को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए समकालीन दलित साहित्यकारों एवं उनकी रचनाओं का समावेश करते हुए 'समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद)' नामक विषय पर शोध कार्य प्रस्तुत किया है जिसमें समकालीन दलित साहित्य की विविध विधाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण शोध को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है जिसमें प्रथम अध्याय में प्रतिपाद्य विषय की अवधारणा, नामकरण, उद्‌भव, विकास, स्वरूप, उद्देश्य और वैचारिकता, नारी विमर्श तथा आधुनिक परिदृश्य में दलित विमर्श आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में समकालीन दलित साहित्यकारों की आत्मकथाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिनमें दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन में भोगे हुए दु:ख, पीड़ा को अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत समकालीन प्रमुख दलित कहानीकारों की कहानियों की संक्षिप्त व्याख्या कर समाज में व्याप्त छुआछूत, अन्धविश्वास, सामाजिक अत्याचार एवं धार्मिक जातीय ढोंग एवं नारी उत्पीड़न जैसी समस्याओं को कहानियों के माध्यम से उजागर करने का प्रयास है। चतुर्थ अध्याय में समकालीन दलित उपन्यासों का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत कर वर्तमान दलित साहित्य के प्रमुख चिन्तन बिन्दु ग्रामीण चेतना तथा दलित चेतना जैसे विषयों को

यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। अध्याय पंचम के अन्तर्गत दलित साहित्य की समकालीन कविताओं का समाजशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में प्रमुख दलित कवियों की काव्य रचनाओं के माध्यम से दलित आक्रोश, दलित मुक्ति चेतना, सामाजिक क्रूरता एवं रूढ़ियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर, नारी चेतना तथा नारी उत्पीड़न के प्रति आक्रोश आदि का यहाँ पर यथार्थ रूप में चित्रण किया गया है। अध्याय षष्ठ में प्रमुख दलित चिन्तकों के आलोचना ग्रन्थों के माध्यम से दलित साहित्य के बारे में अन्धविश्वास एवं पौराणिक मान्यताओं से परे हटकर दलित साहित्य की सभी विधाओं के बारे में बिना किसी भय और भेद-भाव से मुक्त होकर आलोचनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया है। अध्याय सप्तम में समकालीन दलित नाटकों एवं पत्रकारिता के सन्दर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिसमें नाटकों एवं समकालीन पत्रकारिता के माध्यम से दलित समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया है। शोध प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय उपसंहार है, जिसके अन्तर्गत विषय समापन करते हुए सभी अध्यायों को समाहार रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें शोध का सार, निष्कर्ष आदि समाहित है। शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट भाग के अन्तर्गत सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में आधार ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ, शब्दकोश, पत्र-पत्रिकाओं को सूचीबद्ध किया गया है।

घोषणा–पत्र (शोधार्थी)

मैं घोषणा करता हूँ कि शोध–प्रबन्ध **'समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद)'** में, जो शोधकार्य मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिये आवश्यक है। मैंने यह शोधकार्य **डॉ. पूरणमल मीना (सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाई माधोपुर, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा)** के निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरा मौलिक कार्य है। मैंने अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहाँ दूसरे विचारों और शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे मेरे द्वारा विभिन्न मान्य स्रोतों से लिये गये हैं। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है। जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है, वह कहीं और किसी और डिग्री के लिए किसी भी संस्था में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझता हूँ कि किसी भी नियम का उल्लंघन करने पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है और मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। यदि मैंने किसी स्रोत से बिना, उसका नाम दर्शाये या जिस स्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक :

मोहरसिंह बैरवा
(शोधार्थी)

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी मोहरसिंह बैरवा (RS/1088/13) द्वारा उपर्युक्त सभी सूचनायें मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांक :

डॉ. पूरणमल मीना
(शोध पर्यवेक्षक)
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर (राज.)

प्राक्कथन

साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब झलकता है। समाज की तरह साहित्य भी गतिशील होता है तथा साहित्य, समाज में हो रहे परिवर्तन का साक्षी होता है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य पर गौर किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि दलित चेतना और दलित विमर्श के दर्शन होते रहे हैं तथा आधुनिक काल में दलित विमर्श एक विचारधारा के रूप में उभर कर सामने आयी है। आजकल दलित साहित्य का चारों ओर बोलबाला है। अब आवश्यकता इस बात की है कि दलित साहित्य का सन्देश आम जन तक पहुँचे क्योंकि भारतीय समाज का एक वर्ग ऐसा भी है, जिसको सदियों से उत्पीड़ित, अपमानित किया गया जिनके साथ पशुओं से बदतर व्यवहार किया गया और दूसरों की सेवा करना ही इनका धर्म निर्धारित किया गया। इनमें चेतना विकसित न हो इसलिए शिक्षा जैसे मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया। आज दलित वर्ग अपनी अस्मिता, सत्ता संघर्ष के साथ-साथ साहित्य और सांस्कृतिक संघर्ष के संकट से गुजर रहा है। इसी संघर्ष की अभिव्यक्ति दलित साहित्य में हो रही है।

दलित समाज में संघर्ष व चेतना का स्वर फूँकने में दलित साहित्य निरन्तर क्रियाशील है। सामाजिक व राजनीतिक पटल पर हुए अनेक आन्दोलनों ने भी इसकी धार को तेज किया है। आज सम्पूर्ण भारत में चलाये जा रहे दलित आन्दोलन का उद्देश्य वर्ण-व्यवस्था का अन्त कर उसकी जगह एक ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक मुक्ति की बात हो और जिसमें समाज को समानता की कसौटी पर कसा जा सके।

दलित साहित्य को अम्बेडकरवादी जीवन प्रेरणाओं का साहित्य कहा जाता है क्योंकि अम्बेडकर दर्शन दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत है। इन्होंने दलित साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया है जिसके कारण समकालीन दलित साहित्य फल-फूल रहा है तथा जिसकी अनेक विधाओं, जैसे—आत्मकथा, कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति हो रही है।

मैंने अपने शोध शीर्षक 'समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद)' को शोध प्रबन्ध के रूप में चुना है जिसके माध्यम से समकालीन दलित साहित्य को अनेक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सके।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शोध कार्य सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक तरीके से किया जा सके इस हेतु प्रतिपाद्य विषय को निम्नानुसार आठ अध्याय एवं दो परिशिष्टों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में दलित साहित्य की अवधारणा, उद्‌भव, विकास, उद्देश्य, वैचारिकता, नारी विमर्श आदि बिन्दुओं के माध्यम से दलित चेतना एवं साहित्य को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।

द्वितीय अध्याय में समकालीन दलित साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों की आत्मकथाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जहाँ दलित लेखकों ने अपने जीवन में भोगे हुए दु:ख, संत्रास, पीड़ा आदि की यथार्थ अभिव्यक्ति अपनी आत्मकथाओं में व्यक्त की।

तृतीय अध्याय में समकालीन दलित कहानीकारों द्वारा रचित कहानियों को विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है जिसमें दलित समाज की छुआछूत, अन्ध विश्वास, सामाजिक अत्याचार, नारी उत्पीड़न जैसी समस्याओं को उजागर किया है।

चतुर्थ अध्याय में समकालीन दलित उपन्यासकारों के उपन्यासों का विवेचन कर वर्तमान दलित साहित्य के प्रमुख चिन्तन बिन्दु नारी चेतना, ग्रामीण चेतना तथा दलित चेतना जैसे विषयों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत प्रमुख दलित कवियों की कविताओं का विश्लेषण कर दलित आक्रोश, सामाजिक असमानता, दलित मुक्ति चेतना, सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर तथा दलित उत्पीड़न के प्रति आक्रोश यथार्थ रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

षष्ठ अध्याय में प्रमुख दलित चिन्तकों के आलोचनात्मक ग्रन्थों में दलित साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है तथा अन्धविश्वास एवं पौराणिक मान्यताओं से परे हटकर दलित साहित्य के सभी पक्षों के बारे में अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

सप्तम अध्याय में समकालीन दलित नाटककारों की नाट्यकृतियों में समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की समस्याओं के बारे में खुलकर विचार-विमर्श किया है, वहीं दलित पत्रकारिता के अन्तर्गत समकालीन दलित साहित्य का पत्रकारिता के सन्दर्भ में अनेक दलित चिन्तकों के दृष्टिकोणों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

अष्टम अध्याय उपसंहार का है जिसमें सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध का निचोड़, तारतम्य और निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्याय में अनुसन्धान एवं विवेचन के लिए किए गए प्रयासों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है तथा अध्याय के अन्त में आधार ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ, कोश ग्रन्थ तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है।

शोध प्रबन्ध को आरम्भ से अन्त तक पूर्ण करने में अनेक व्यक्तियों के सहयोग, परामर्श और उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, जिनका आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

शोध प्रबन्ध को अन्तिम रूप या सम्पूर्णता तक पहुँचाने का श्रेय मैं अपने शोध निर्देशक परम आदरणीय डॉ. पूरणमल मीना, सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाई माधोपुर को देता हूँ जिनके कुशल निर्देशन एवं श्रेष्ठ मार्गदर्शन के कारण ही यह शोध कार्य पूर्ण हो सका। वस्तुत: उनके द्वारा प्रदत्त उच्च कोटि के मार्गदर्शन का वर्णन मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर

सकता। अत: परम सम्माननीय डॉ. पूरणमल मीना जी द्वारा निर्देशित इस कार्य हेतु मैं उनका हार्दिक आभार प्रकट करना चाहूँगा और साथ ही मेरा यह विनम्र अनुरोध भी रहेगा कि वे भविष्य में भी मेरा मार्ग–दर्शन इसी प्रकार करते रहेंगे।

इस शोध कार्य के लिए प्रेरणा देने वाले मेरे परिवारजनों और मित्रों में विशेष रूप से मेरे माता–पिता और धर्मपत्नी का सहयोग और उनकी त्याग भावना के कारण ही मैं यह शोध कार्य पूर्ण कर सका। इसलिए मैं उनका ऋणी हूँ तथा हृदय से उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध छात्र होने के नाते मेरा यह विनम्र दायित्व और प्रयास है कि इस शोध प्रबन्ध में जो भी कमियाँ है, वह मेरी है ओर जो कुछ अच्छा श्रेष्ठ है, वह मेरे शोध निर्देशक, मार्गदर्शक गुरुजनों एवं विद्वानों के ज्ञान का प्रसाद है।

अन्त में कुशल कम्प्यूटर टाईपिंग के लिए विशाल कम्प्यूटर्स को साधुवाद।

(मोहर सिंह बैरवा)
शोधार्थी

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन **i-iv**

प्रथम अध्याय : दलित साहित्य की अवधारणा **1–35**

1.1 नामकरण
1.2 भारतीय दलित साहित्य की परम्परा
1.3 दलित साहित्य आन्दोलन
1.4 दलित साहित्य का प्रादुर्भाव
1.5 विशेषताएँ
1.6 दलित साहित्य का स्वरूप
1.7 दलित साहित्य : उद्देश्य और वैचारिकता
1.8 दलित साहित्य के प्रतिमान
1.9 दलित साहित्य में नारी चेतना
1.10 दलित साहित्य की प्रामाणिकता
1.11 सामाजिक रूप से दलित चेतना का विकास
1.12 आधुनिक परिदृश्य में दलित विमर्श

द्वितीय अध्याय : समकालीन दलित आत्मकथाएँ **36–84**

2.1 भूमिका
2.2 अपने-अपने पिंजरे : मोहनदास नैमिशराय
2.3 अपने-अपने पिंजरे (भाग-2) मोहनदास नैमिशराय
2.4 जूठन : ओमप्रकाश वाल्मीकि
2.5 तिरस्कृत : सूरजपाल चौहान
2.6 नागफनी : रूपनारायण सोनकर
2.7 मेरा बचपन मेरे कन्धों पर : श्यौराजसिंह बेचैन

2.8 झोपड़ी से राजभवन : माताप्रसाद
2.9 शिकंजे का दर्द : सुशीला टाँकभौरे
2.10 मुर्दहिया : तुलसीराम
2.11 मणिकर्णिका : तुलसीराम

तृतीय अध्याय : समकालीन दलित कहानियाँ **85–135**

3.1 भूमिका
3.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ
3.3 सूरजपाल चौहान की कहानियाँ
3.4 मोहनदास नैमिशराय की कहानियाँ
3.5 जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ
3.6 रमणिका गुप्ता की कहानियाँ
3.7 प्रहलाद चन्द बोस की कहानियाँ
3.8 रूप नारायण सोनकर की कहानियाँ
3.9 शरण कुमार लिम्बाले की कहानियाँ
3.10 शैलेश मटियानी की कहानियाँ
3.11 हरपाल सिंह 'अरूष' की कहानियाँ
3.12 रत्नकुमार साँभरिया की कहानियाँ
3.13 सुशीला टाँकभौरे की कहानियाँ
3.14 अन्य कहानीकारों की कहानियाँ

चतुर्थ अध्याय : समकालीन दलित उपन्यास **136–167**

4.1 भूमिका
4.2 छप्पर : जयप्रकाश कर्दम
4.3 मिट्टी की सौगन्ध : प्रेम कपाड़िया
4.4 जस–तस भई सवेर : सत्य प्रकाश
4.5 मुक्तिपर्व : मोहनदास नैमिशराय
4.6 आज बाजार बन्द है : मोहनदास नैमिशराय
4.7 मिस रमिया : कावेरी
4.8 उधर के लोग : अजय नावरिया
4.9 थमेगा नहीं विद्रोह : उमराव सिंह जाटव
4.10 रेत : भगवान् दास मोरवाल

4.11 बाबल तेरा देश : भगवान् दास मोरवाल
4.12 डंग : रूपनारायण सोनकर
4.13 सुअरदान : रूपनारायण सोनकर
4.14 ढोलन कुंजकली : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

पंचम अध्याय : समकालीन दलित कविताएँ **168–222**

5.1 भूमिका
5.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएँ
5.3 जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ
5.4 श्यौराज सिंह बेचैन की कविताएँ
5.5 सूरजपाल चौहान की कविताएँ
5.6 मोहनदास नैमिशराय की कविताएँ
5.7 सुशीला टाँकभौरे की कविताएँ
5.8 कँवल भारती की कविताएँ
5.9 पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की कविताएँ
5.10 कुसुम वियोगी की कविताएँ
5.11 लक्ष्मीनारायण सुधाकर की कविताएँ
5.12 डॉ. तेजसिंह की कविताएँ
5.13 पूनम तुषामड की कविताएँ
5.14 अन्य कवियों की कविताएँ

षष्ठ अध्याय : समकालीन दलित आलोचना **223–236**

6.1 भूमिका
6.2 हिन्दी दलित आलोचकों की भूमिका
6.3 ओमप्रकाश वाल्मीकि
6.4 डॉ. एन. सिंह
6.5 डॉ. जय प्रकाश कर्दम
6.6 रमणिका गुप्ता
6.7 डॉ. धर्मवीर
6.8 कँवल भारती
6.9 डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
6.10 मोहनदास नैमिशराय

6.11 श्योराज सिंह बेचैन
6.12 सूरजपाल चौहान
6.13 श्री माता प्रसाद
6.14 डॉ. सुशीला टाँकभौरे
6.15 डॉ. दयानन्द बटोही
6.16 डॉ. तेजसिंह
6.17 डॉ. रजतरानी मीनू

सप्तम अध्याय : समकालीन दलित नाटक एवं पत्रकारिता 237–247

7.1 भूमिका
7.2 डॉ. सुशीला टाँकभौरे : नंगा सत्य
7.3 रूपनारायण सोनकर : समाजद्रोही, एक दलित डिप्टी कलेक्टर, छायावती।
7.4 माता प्रसाद : तड़प मुक्ति की
7.5 मनोजर कुमार : बारात नहीं चढ़ेगी
7.6 रत्नकुमार सांभरिया : उजास, विमा
7.7 दलित पत्रकारिता
7.7.1 भूमिका
7.7.2 पत्रकारिता में दलित विमर्श

अष्टम अध्याय : उपसंहार 248–253

शोध–सारांश 254–261

परिशिष्ट 262–271

(1) आधार ग्रन्थ
(2) सहायक ग्रन्थ
(3) पत्र–पत्रिकाएँ
(4) शब्दकोश

प्रकाशित शोध–पत्र की छाया–प्रति

प्रथम अध्याय

दलित साहित्य की अवधारणा

दलित साहित्य की अवधारणा को समझने से पहले 'दलित' शब्द को समझना आवश्यक है। इसके द्वारा दलित साहित्य की अवधारणा स्वत: ही स्पष्ट हो जायेगी।

दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'दल' धातु से हुई है। इसके सन्दर्भ में अनेक शब्दकोशों ने अनेक अर्थ दिये हैं।

1. दल — (अक) विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना।

2. दल — (सक) चूर्ण करना, टुकड़े करना, विदारना।

3. दल — (नृप) सैन्य, लश्कर, पत्र, पत्ती।

'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' में सं. डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने दलित शब्द का अर्थ निम्नवत् स्पष्ट किया है।

दलित — विनष्ट किया हुआ।

दलित — वि (सं.) (स्त्री दलिता)

मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ।

डॉ. कुसुमलता मेघवाल ने 'दलित' की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "दलित वर्ग का सामाजिक सन्दर्भों में अर्थ होगा, वह जाति समुदाय, जो अन्यायपूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है।"[1]

पर 'दलित वर्ग' का प्रयोग, हिन्दू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप से शूद्र माने जाने वाले वर्णों के लिए रूढ़ हो गया है। दलित वर्ग में वे सभी जातियाँ सम्मिलित हैं, जो जातिगत सोपान पर निम्न स्तर हैं और जिन्हें सदियों से दबाकर रखा गया है।

भारतीय समाज में दलित के लिए विभिन्न शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। इनमें शूद्र सर्वाधिक प्रचलित शब्द है, जिसका प्रयोग अधिकांश हिन्दू धर्मशास्त्रों में हुआ है। इसके अतिरिक्त अछूत, अंत्यज, पंचम हरिजन, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग होता रहा है, जो सभी हिन्दू समाज की मानसिकता के परिचायक हैं।

गाँधी जी ने भी अछूतोद्धार आन्दोलन चलाया जिसमें वे एक हद तक सफल भी रहे। लेकिन हिन्दू धर्म में उनकी पूर्ण आस्था थी और वर्ण-व्यवस्था को संसार की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था मानते थे। उन्होंने शूद्र के लिए 'हरिजन' शब्द दिया। डॉ. अम्बेडकर ने इसका विरोध किया कि दक्षिण भारत के मन्दिरों में देवदासियों से उत्पन्न अवैध सन्तानों को 'हरिजन' कहा जाता है। अत: हम स्वयं समझ सकते है कि यह कितना घृणित शब्द है। दलित शब्द का प्रयोग स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने किया था। यह 'डिस्प्रेस्ड क्लास' का हिन्दी पर्याय है।

हरिजन और दलित शब्द की अन्तर्ध्वनि को डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने सही पकड़ा है। वे लिखते हैं—"हरिजन जाति व्यवस्था में निहित ऐतिहासिक अन्याय की चेतना को सवर्ण दृष्टिकोण से व्यक्त करने वाला शब्द है। इसमें एक प्रकार का पश्चाताप का भाव है। दलित करुणा या पश्चाताप को नहीं, बल्कि बेवजह दमन और अपमान के शिकार होने को व्यक्त करता है।"[2]

हमारे विचार से दलित शब्द का अर्थ है, जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो। चाहे वह उत्पीड़न शास्त्र के द्वारा किया गया हो या शस्त्र के द्वारा। कुछ लोग दलित का अर्थ अनुसूचित जातियों तक सीमित करते हैं जबकि शाब्दिक दृष्टि से उसमें भारतीय समाज के स्त्री तथा पिछड़े वर्ग के साथ सवर्ण जातियों के लोग भी आते हैं, जिनका किसी-न-किसी रूप में मानसिक व आर्थिक शोषण किया गया हो। अत: 'दलित' से तात्पर्य हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के चौथे वर्ण शूद्र से है, जिसके अन्तर्गत आने वाली समस्त

जातियाँ इसमें आती है, जिनके लिए बाद में भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियाँ शब्द का प्रयोग किया जाता है।

दलित शब्द का अर्थ मैनेजर पाण्डेय ने इस प्रकार व्यक्त किया है—"जब मैं दलित शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में वे हैं जिन्हें भारतीय वर्ण-व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिन्हें समाज में अछूत माना जाता है।"[3]

दलित शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति समझने के बाद अब दलित साहित्य का अर्थ और उसकी परिभाषा समझना आसान हो जाएगा।

दलित साहित्य का तात्पर्य, वह साहित्य जो दलितों के द्वारा तथा दलितों के उद्‌बोधन हेतु लिखा गया हो। श्री प्रेमकुमार मणि ने दलित साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि—"दलितों के लिए, दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है, यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। सम्पूर्ण विज्ञान उसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का उद्धार इसका इष्ट है। दलित साहित्य वह प्रकाश पुँज है, जो अँधेरे में उतरा है।"[4]

दलित साहित्य की अनेक लेखकों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ—

"दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखता है।"[5] — डॉ. धर्मवीर।

"दलित साहित्य वर्ण-व्यवस्था से पीड़ित समाज की वेदना का शब्द रूप है।"[6]— कंवल भारती।

"दलित का अर्थ, जिसका दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया हो— सामाजिक, आर्थिक और मानसिक धरातल पर। सम्पूर्ण दलित साहित्य ऐसे ही उत्पीड़ित और शोषित लोगों की बेहतरी के लिए दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य है।"[7] —डॉ. एन. सिंह।

"दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति देता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक नकार है। एक विद्रोह है। यह विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।"[8] — डॉ. दयानन्द 'बटोही'

"दलित साहित्य यानि बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों और मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता और बन्धुता का भाव है और वर्ण-व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।"[9]—मोहनदास नैमिशराय।

"दलित साहित्य वह साहित्य है, जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में पिछड़े हुए उत्पीड़ित, अपमानित शोषित जनों की पीड़ा को व्यक्त करता है। दलित साहित्य कठोर अनुभवों पर आधारित साहित्य है। दलित साहित्य में आक्रोश और विद्रोह की भावना प्रमुख है।"[10] — माता प्रसाद।

"दलित साहित्य दलितोत्थान साहित्य, यानी दलितोत्थान हेतु लिखा गया, यह एक ऐसा साहित्य है जो भोगे हुए सच पर आधारित है। जमीन से जुड़े दलित, शोषित, उपेक्षित, सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित है जो दशा और दिशा को इंगित करता है और जिसमें विद्रोह और उद्‌बोधन के साथ संवेदना जागृत करने की ऊर्जा है।"[11] — डॉ. सोहन पाल 'सुमनाक्षर'।

इन सभी परिभाषाओं पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित जातियों से सम्बन्धित लेखकों द्वारा दलित जीवन की विसंगतियों पर लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है जो दलितों की परम्परागत, शोषित मान्यताओं के प्रति विद्रोह का स्वर जाग्रत करने का प्रयास करता है, जिसमें आक्रोश का भाव है, जो विभेद के विरुद्ध संघर्ष की आवाज उठाता है।

वरिष्ठ दलित साहित्यकार श्री ओम प्रकाश वाल्मीकि ने कहा है कि—"दलित साहित्य भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद को नकारता है तथा पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। दलित शब्द उन्हें सामाजिक पहचान देता है, जिसकी पहचान इतिहास के पृष्ठों से सदा के लिए मिटा दी गयी, जिनकी गौरवपूर्ण संस्कृति ऐतिहासिक धरोहर कालचक्र में खो गयी।"[12]

अत: दलित साहित्य समता का साहित्य है जो भारतीय सन्दर्भों में निश्चय की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

1.1 नामकरण

दलित साहित्य इस समय जिन समस्याओं से जूझ रहा है, उनमें से एक समस्या नामकरण की भी है क्योंकि किसी साहित्य की पहचान, उसकी चेतना एवं उद्देश्यों से होती है। नाम एक संज्ञा है, जो उस चेतना का बोध कराती है अत: नामकरण वैसे तो गौण समस्या है फिर भी महत्त्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि सबसे पहले व्यक्ति की दृष्टि नाम पर ही जाती है या यों कहे कि किसी वस्तु का पहला परिचय उसका नाम से होता है।

वैसे 'दलित साहित्य' दलित साहित्यकारों में एक सर्वमान्य नाम है फिर भी कुछ कवि, लेखक दलित साहित्य को अन्य साहित्यिक संज्ञाओं से अभिहित करना चाहते हैं। जैसे—डॉ. प्रेमशंकर हिन्दी के एक प्रतिष्ठित दलित साहित्यकार हैं। वे एक अनियत-कालीन बुलेटिन भी निकालते हैं जिसका नाम 'अम्बेडकरीय कविता' है, जिसमें मूलत: दलित चेतना की और दलित कवियों की कविताएँ छपती हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'नयी कविता : नया मूल्यांकन' में भी इन कविताओं का मूल्यांकन करते हुए उन्हें 'अम्बेडकरीय कविता' ही कहा है। यदि इसी आधार पर दलित साहित्य का विभाजन होता रहा तो पन्त द्वारा लिखी गयी अरविन्दीय दर्शन तथा मार्क्स से प्रभावित हो लिखा विपुल साहित्य इसी आधार पर वर्गीकृत कर दिया जाय तो दलित साहित्य का विघटन होना शुरू हो जायेगा। अत: अम्बेडकरीय कविता या साहित्य एक अटपटा, असंगत और व्यक्तिवादी नाम है जो इस साहित्य को सीमित करता है, जबकि उसके विस्तार की असीम सम्भावनाएँ है।

इसलिए इसके नामकरण पर थोड़ा-सा गम्भीर होकर सोचने की आवश्यकता अनुभव करते हैं।

फिर इस साहित्य का नाम 'दलित साहित्य' ही क्यों रखा जाय? क्योंकि 'दलित' शब्द अपने व्यापक अर्थ में पीड़ित मानवता का प्रतिनिधित्व करता है। विस्तार की दृष्टि से 'दलित साहित्य' भारतीय समाज के उस 'बहुजन' का साहित्य है, जो असमानता पर आधारित अभिजात्यवाद के कलात्मक झूठ का पर्दाफाश करने की क्षमता रखता है।

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी दलित साहित्य के विस्तार को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "भारत के सन्दर्भ में शताब्दियों की पारम्परिक समाज संरचना के अन्तर्गत, ब्राह्मणी, सामन्ती व्यवस्था के द्वारा शब्द के बल पर वेदोपनिषद् के पठन-पाठन से प्रतिबन्धित और

उपनयन संस्कारादि से वंचित बहुजन समुदाय यानि बहिष्कृत एवं तिरस्कृत अनेक जातियों, उपजातियों, कबीलों, जमातों में विभक्त किन्तु शोषण, उत्पीड़न, अपमान की जन्मघूंटी पीने वाले दल विशेष के जनसाधारण ही दलित हैं। आज दलित आन्दोलन, आर्थिक, सांस्कृतिक, शोषण एवं इतिहास की प्रज्ज्वलता का आन्दोलन नहीं है, अपितु वह अस्मितादर्शी मानव की प्रतिष्ठा का और मानव से मानव की मुक्ति का, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व तथा अन्याय पर आधारित सत्यमेव जयते ही बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की वैज्ञानिक सामाजिक संरचना का संरचनात्मक आन्दोलन भी है जिसमें अपना दीपक आप बनो की लोक चेतना के कारण निषेध, विद्रोह और संघर्ष के क्रान्ति मूल्य समाहित हैं और शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो की सामूहिक दलित लोक शक्ति की गतिशीलता भी है।"[13]

इस प्रकार के साहित्य को सर्वप्रथम डॉ. इम्बेडकर ने ही दलित साहित्य कहा था। उसकी चेतना का परिणाम है कि दलित साहित्य महाराष्ट्र में विपुल मात्रा में लिखा गया और अब स्थिति यह है कि दलित साहित्य मराठी साहित्य की मुख्य धारा है। इसलिए कुछ विद्वान् हिन्दी साहित्य पर मराठी दलित साहित्य की नकल होने का आरोप भी लगाते हैं जो सरासर मिथ्या और तथ्यातीत है। इसी से प्रेरित होकर कुछ अतिउत्साही दलित साहित्यकार इस साहित्य के लिए कुछ अन्य नाम प्रचलित करना चाहते हैं, जिससे इस साहित्य का क्षेत्र सिमटकर केवल शूद्रों तथा अम्बेडकर की जाति तक ही रह जाय। अत: इस साहित्य को निर्विवाद रूप से 'दलित साहित्य' ही कहा जाना अभीष्ट और उपयुक्त रहेगा।

इस सन्दर्भ में एक प्रश्न यह और रह जाता है कि क्या गैर-दलित साहित्यकार भी दलित साहित्य लिख सकता है या क्या गैर-दलित साहित्यकारों द्वारा दलित समस्याओं पर लिखा गया साहित्य भी दलित साहित्य कहलाने योग्य होगा। इस मुद्दे पर सभी विद्वान् लगभग एकमत हैं कि दलितों के द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है, क्योंकि यदि कोई गैर दलित लेखक दलित समस्याओं पर लिखता है तो उसमें सहानुभूति होती है, आक्रोश और स्वानुभूति नहीं होती।

इस सन्दर्भ में भी मोहनदास नैमिशराय का कथन दृष्टव्य है—"दूर बैठकर कल्पना करना और उसी आधार पर दलितों की पीड़ा का वर्णन करना, दलित साहित्य की श्रेणी में नहीं आता, क्योंकि यह बिल्कुल वैसा ही होगा जैसे दलित, शोषितों को दूर से फेंककर रोटी दान करना। जबकि दलित वर्ग लेखकों ने जो लिखा उनकी रचनाओं में अथाह पीड़ा रही, आक्रोश ज्वार बार-बार उफनता रहा, इसलिए कि वह सामाजिक विषमता के भुक्तभोगी थे।"[14]

हिन्दू धर्मशास्त्रों पर आस्था रखकर दलित समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। इसके ऐतिहासिक प्रमाण है। इस पर विचार करते हुए डॉ. विमल कीर्ति लिखते हैं कि "जो महात्मा गाँधी और विवेकानन्द हिन्दूवाद से जातिवाद से मुक्त नहीं हुए, जो हिन्दू धर्मशास्त्रों की गुलामी से मुक्त नहीं हुए, वह दलितों की, पिछड़ों की, मुक्ति के आदर्श पुरुष कैसे हो सकते हैं।"[15]

गैर दलित लेखकों के लिए दलितों की यन्त्रणा भयावह एवं रोचक हो सकती है, वे उसका वर्णन किसी दलित लेखक से भी अच्छा कर सकते हैं, लेकिन उसकी प्रामाणिकता सन्देहास्पद है और उससे न किसी दलित का भला होगा और न ही साहित्य का।

कुल मिलाकर दलित साहित्य की अवधारणा को हम श्री रूपचन्द्र गौतम के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि "दलित साहित्य से हमारा तात्पर्य सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में संवैधानिक मूल्यों, स्वतन्त्रता एवं बन्धुता पर आधारित समता के समाज और सत्ता व्यवस्था की निर्मित संरचना के लिए विचार से, संवेदना से, विचार के धरातल पर सचेत एवं सजग साहित्यकारों की संगठित क्रान्ति, चेतना से सृजित अस्मितादर्शी साहित्य से है, जिसमें नैतिकता, चरित्र और राष्ट्रीयता का प्राधान्य है दलित होने की पीड़ा एवं शोषण की प्रथम अनुभूति दलित को ही हो सकती है न कि गैर-दलित को। अत: दलित साहित्य का अधिक प्रचलित अर्थ है वह साहित्य, जो दलितों का दलितों के लिए, दलितों द्वारा रचित है।"[16]

1.2 भारतीय दलित साहित्य की परम्परा

भारतीय संविधान के अनुसार यहाँ किसी जाति, धर्म, लिंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ भेद-भाव नहीं बरता जायेगा, लेकिन भारत में हिन्दू धर्मावलम्बियों की

जनसंख्या अधिक होने के कारण सदा से उनका ही बोलबाला रहा है। अन्य धर्मावलम्बी संवैधानिक समानता के बावजूद, अपने आपको दूसरे दर्जे का नागरिक समझते रहे हैं। अत: भारतीय समाज से हमारा तात्पर्य हिन्दू समाज से है। ज्यादातर छुआछूत की भावना भी हिन्दू समाज में ही है, अन्य धर्मों में नहीं। अत: दलित सन्दर्भों में भारतीय समाज से हमारा मतलब हिन्दू समाज से है।

वस्तुत: इस परम्परा के विरुद्ध सबसे पहले सिद्ध और नाथ कवियों ने आवाज उठाई। इन चौरासी सिद्ध कवियों में तीस शूद्र कवि थे। इसी प्रकार नाथों में भी अनेक शूद्र थे। इसका प्रभाव दलित पर यह पड़ा कि मध्यकाल में निर्गुण शाखा के अनेक कवियों— रैदास, पलटू, दादू, कबीर आदि ने वर्ण–व्यवस्था और जातिवाद पर प्रहार किया।

स्वतन्त्रता पूर्व तक भारत में धर्म की वही भूमिका रही थी जो वर्तमान समय में राजनीति की है। उस समय दलित वर्ग के लोगों के लिए मन्दिर में प्रवेश कर पाना सम्भव नहीं था और उपासना का अधिकार उन्हें नहीं था। इसलिए इन निर्गुण सन्तों ने मन्दिर के अस्तित्व को नकार कर ईश्वर को मन के भीतर ही ढूँढा और पाया। सन्त रैदास ने लिखा–

"का मथुरा का द्वारका का कासी हरद्वार।
रैदास खोजा दिल आपना तऊ मिलिया दिलदार।।"[17]

रैदास दलित चेतना के पहले कवि थे। उन्होंने वर्ण–व्यवस्था और जातिवाद जैसी बुराइयों पर प्रहार किया। वर्ण और अवर्ण पर विचार करने वालों को ललकारते हुए कहा–

"रैदास एक ही बून्द सौ, सब ही भयो वित्थार।
मूरिख है जो करत है, वरन् अवरन विचार।।"[18]

जन्म के आधार पर जातियों में बाँटकर भारतीय समाज में ऊँच–नीच पैदा करने का काम इसी धर्म व्यवस्था ने किया जिसके कारण डॉ. अम्बेडकर को कहना पड़ा कि हिन्दू समाज एक ऐसी बहुमंजिला इमारत है, जिसकी मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाना वर्जित है। इसी सन्दर्भ में रैदास लिखते हैं—

"रैदास एक ही नूर ते जिमि उपज्यो संसार।
ऊँच–नीच किहि विधि भये ब्राह्मण अरू चमार।।"[19]

इसी प्रकार उन्होंने जातिवाद पर भी चोट की है—

"जाति पाँत के फेर मंहि उरझि रहई सब लोग।
मानुषता को खात है, रैदास जात कर रोग।" [20]

इसी व्यवस्था से त्रस्त होकर दलित मध्यकाल में बौद्ध, इस्लाम तथा ईसाई आदि धर्मों की ओर उन्मुख होने लगे थे। इस समय स्वामी दयानन्द ने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' में खण्डन-मण्डन पद्धति से इन धर्मों की विसंगतियों का उल्लेख करके हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया तथा हिन्दू धर्म से विमुख हो रहे दलितों को यज्ञ तथा हवन में भाग लेने, जनेऊ धारण करने, शास्त्रों का अध्ययन करने की आज्ञा प्रदान कर एक बार फिर हिन्दू धर्म के शोषण तन्त्र में जोतकर पुन: यथास्थिति कायम की। इसी प्रकार गाँधी जी द्वारा शूद्र का नया नामकरण किया—'हरिजन' तथा हरिजनोद्धार का नारा देकर उन्हें पुन: हिन्दू धर्म के साथ जोड़ दिया। यदि ये हरिजन, मुसलमान या ईसाई बन जाते तो हिन्दू भारत में अल्पसंख्यक हो जाते। अत: गांधजी को सवर्ण हिन्दुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाने का षड्यन्त्र था। लेकिन इस कारण कुछ मन्दिरों और पाठशालाओं में हरिजनों का प्रवेश खोल दिया गया जिससे हरिजनों में शिक्षा का प्रसार हुआ और उनमें दासता (धर्म और राजनीतिक) से मुक्ति की चेतना उत्पन्न हुई।

दलित समाज को डॉ. अम्बेडकर के रूप में पहली बार एक प्रखर व्यक्तित्व मिला जो इसके लिए ज्योति स्तम्भ साबित हुआ और जिसने युगों से अन्धेरे में भटकते हुए इस वर्ग को राह दिखाई।

अम्बेडकर के द्वारा दलितोद्धार के अनेक कार्य किये गये तथा 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ और अम्बेडकर को संविधान निर्माण का दायित्व सौंपा गया जिसमें समानता को मौलिक अधिकार बनाने के साथ ही दलितों के आरक्षण को उन्होंने संविधान सम्मत बना दिया, जिसके कारण ही दलितों की दशा में आमूलचूल परिवर्तन आया।

1.3 दलित साहित्य आन्दोलन

डॉ. अम्बेडकर के आगमन के साथ ही दलितों में एक बेचैनी-सी उभर आयी थी, जो सम्मान, सत्ता, धन और धरती में अपना हिस्सा चाहते थे। डॉ. अम्बेडकर ने इसी

बेचैनी को वाणी और मुम्बई से 'मूकनायक' (1920) तथा 'बहिष्कृत भारत' (1927) नामक अखबार निकाले, इससे दलितों को अभिव्यक्ति के महत्त्व का पता चला।

आधुनिक काल में सर्वप्रथम श्री कमलेश्वर ने 'सारिका' के दो दलित साहित्य विशेषांक 1975 में सम्पादित कर हिन्दी साहित्यकारों को दलित साहित्य से परिचित करवाया। इसके उपरान्त डॉ. महीप सिंह ने भी संचेतना का एक अंक दलित साहित्य अंक (1980) में सम्पादित किया था जिससे हिन्दी की मुख्य धारा के साहित्यकारों ने इन नयी धारा को आश्चर्य से देखा जबकि इससे पूर्व 'नियोजक-भीम' आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी हिन्दी दलित साहित्य छप रहा था। यहाँ तक स्पष्टत: कोई प्रभावी साहित्य आन्दोलन जैसा दिखाई नहीं दे रहा था लेकिन सन् 1980 के आस-पास हिन्दी में एक प्रकार से दलित साहित्य आन्दोलन की शुरुआत हुई।

इसके उपरान्त हिन्दी साहित्य के इतिहास पर कुछ पुस्तकें लिखी गयीं जैसे— 'स्वतन्त्रता संग्राम में अछूतों का योगदान' (डी.सी. डिंकर) और हिन्दी कविता और उपन्यासों में दलित चेतना की तलाश करने का काम हुआ और कुछ पुस्तकें प्रकाश में आयी। जैसे— 'हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा' (माता प्रसाद) तथा 'हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग' (डॉ. कुसुम मेघवाल)। धीरे-धीरे यह आन्दोलन जोर पकड़ता गया और नागपुर में पहला 'हिन्दी दलित साहित्यकार सम्मेलन' (1993) आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि ने की।

'हंस' और 'जन संस्कृति' मंच के संयुक्त तत्वावधान में दलित प्रकाशन संस्था द्वारा दिल्ली में तथा भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा उज्जैन, सिलोगढ़ा (हि.प्र.) कलकत्ता, हजारीबाग (बिहार) आदि स्थानों पर दलित साहित्यकार सम्मेलन आयोजित किये गये।

इस सन्दर्भ में 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' दिल्ली का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा जो प्रतिवर्ष अखिल भारतीय दलित साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन करती है। इस आन्दोलन की भट्टी में तपकर जो साहित्यकार सामने आये हैं, उनमें पुरानी पीढ़ी के सर्वश्री बिहारी लाल हरित, माता प्रसाद, बाबूलाल सुमन, डॉ. रामशिरोमणि 'होरिल' आदि हैं तथा नयी पीढ़ी में सर्वश्री डॉ. धर्मवीर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. एन. सिंह, कवल

भारती, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह 'बेचैन', डॉ. दयानन्द बटोही आदि समर्पित भाव से रचनारत हैं।

इस आन्दोलन की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस आन्दोलन में दलित महिलाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन लेखिकाओं में डॉ. सुशीला टॉकभौरे, रजत रानी मीनू, डॉ. कुसुम मेघवाल और कावेरी आदि प्रमुख नाम हैं।

1.4 दलित साहित्य का प्रादुर्भाव

अब तक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दलित साहित्य का जन्म उत्पीड़न की कोख से हुआ है। आर्यों के बाद भारत के मूल निवासियों और आर्यों के बीच लम्बे समय तक यहाँ के निवासी संघर्ष करते रहे तथा अपनी पराजय के बाद हाशिये पर आ गये और आर्यों का भारत में वर्चस्व स्थापित हो गया। कालान्तर में ऐसे-ऐसे नियम बनाये गये जिनसे मनुष्य का एक बहुत बड़ा समूह को दस्यु से दास फिर अस्पृश्य बना दिया तथा ब्राह्मण वर्ग ने सारा विशेषाधिकार सुरक्षित कर लिया। इस व्यवस्था का विद्रोह गौतम बुद्ध ने किया। उन्होंने पूजा उपासना का अधिकार शूद्रों को ही नहीं बल्कि स्त्रियों को भी दिया तथा बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से लोगों में ज्ञान की अलख जगायी तथा अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तथा इनके आधार पर बौद्ध साहित्य की रचना की गयी, जिसमें मानव और मानव के बीच जाति, धर्म और वर्ण के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं बरता गया। इसलिए बौद्ध साहित्य दलित साहित्य का प्रेरणा-स्रोत बना। आगे चलकर जब डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया तो पूरा दलित समाज बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुआ।

मराठी में तो कुछ लोगों ने यह आवाज उठाई कि दलित साहित्य को बौद्ध साहित्य ही कहा जाय लेकिन पहचान के संकट ने ऐसा नहीं होने दिया। भगवान् गौतम बुद्ध एवं भगवान् महावीर ने शूद्रों एवं दासों के प्रति मानवीय गरिमा के द्वार सबलतापूर्वक खोल दिये। धम्मपद ने ब्राह्मण वर्गों की जन्मजात उच्चता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्राट् अशोक ने ब्राह्मण को न्याय के समक्ष अन्य वर्गों के साथ समान रूप से प्रस्तुत कर दिया, परन्तु बौद्ध धर्म की महायान शाखा ने जाति व्यवस्था पर कठोरतापूर्वक चोट की।

अधिकांश सिद्ध और नाथ मूलत: बौद्ध थे। इनका विरोध हिन्दू वर्चस्ववादियों से मूलत: साधना पद्धति और उनके विचार-आचार की अतिरेक वाली उस पद्धति से था, जिसने मनुष्यों को अस्पृश्य बना दिया था और मन्दिरों में प्रवेश तथा धर्मग्रन्थों के पठन-पाठन से भी वंचित कर दिया था। श्री माताप्रसाद ने लिखा है कि "आठवीं शताब्दी के मध्यकाल में सहजयान के सिद्ध सम्प्रदाय के आचार्य सरहपा हुए।" ये सिद्धों के गुरु थे। इन्होंने ब्राह्मण का विरोध करते हुए लिखा है—

"ब्राह्मण न जानते भेद, यों ही पढ़े ये चारों वेद।
मट्टी पानी कुश लेई पठन्त, घर बैठे अग्नि होमन्त।।"

इसी प्रकार नाथों के गुरु गोरखनाथ ने शूद्र को पढ़ाने की बात कही है—

"वसैन्दर मुनि मुषि ब्रह्म जो होते शूद्र पढाऊं बानी।
असंवद विधि ब्राह्मण जग निपजा, मैंने जुगति जमाया पानी।"[21]

सिद्ध और नाथों की वाणी का अध्ययन करने के उपरान्त डॉ. प्रेमशंकर ने अपना निष्कर्ष इस प्रकार दिया है—"नाथ सिद्ध कवियों में कई शूद्र नाथ सिद्ध कवि थे। इन्होंने जाति व्यवस्था, ब्राह्मणवादी संस्कृति और साहित्य के विरोध में सशक्त अभिव्यक्ति के द्वारा अपने संघर्ष को जीवन्त रखा है।"[22] बौद्ध, सिद्ध और नाथ साहित्य से होती हुई दलित चेतना की सबल अभिव्यक्ति निर्गुण सन्तों की वाणी में हुई। हिन्दी के लोकगीतों में दलितों ने अपनी पीड़ा को निरन्तर गाया। इन सब सूत्रों से प्रेरणा लेकर हिन्दी दलित कवियों ने काव्य सृजन प्रारम्भ किया। इस विचारधारा को गति देने वाले मध्यकाल के सन्तों में कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना, सहजोबाई आदि ने ईश्वर को अपने मन के अन्दर ही ढूँढ़ा और पाया। यह आकस्मिक नहीं था, बल्कि एक विवशता थी क्योंकि हिन्दुओं ने अपने मन्दिरों में जाने तथा अपने धर्मग्रन्थों को पढ़ना वर्जित कर रखा था। अत: इन्होंने अपने मन को ही मन्दिर माना। रैदास ने कहा—

"का मथुरा का द्वारका, का कासी हरिद्वार।
रैदास खोजा दिल आपना, तऊ मिलिया दिलदार।।"[23]

इसके उपरान्त रैदास ने जन्माधारित वर्ण-व्यवस्था पर चोट की, जो व्यक्ति को जन्म लेते ही उच्च और निम्न बनाती है—

"रैदास जन्म के कारणै होत न कोई नीच।
नर को नीच कारे डारि है, औछेकरन की कीच।।"[24]

आगे चलकर रैदास इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए बतलाते हैं—

"रैदास एक ही बूँद सौ, सब ही भयो वित्थार।
मूरिख है जो करत है, वरन्, अवरन विचार।
रैदास एक ही नूर ते, जिमि उपज्यो संसार।
ऊँच–नीच किहि विथ गये, ब्राह्मण और चमार।।"[25]

दलित सन्तों की वाणी ओजस्वी एवं विरोधपरक थी। धार्मिक जाति व्यवस्था एवं अन्धविश्वासों के प्रति विरोध, सामाजिक असमानता के प्रति नकारात्मक, परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को चुनौती, साहित्यिक मिथक, प्रतीक, छन्द और भाषा के विद्रोह का स्तर इन दलित सन्तों की अभिव्यक्ति का विषय रहा है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान दलित साहित्य में ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह दृष्टिगोचर होता है, वह सन्त साहित्य की निर्गुण धारा की देन है। इसी मार्ग पर चलकर आज का दलित साहित्य अपना विकास कर रहा है।

दलित साहित्य को सबसे अधिक डॉ. अम्बेडकर के जीवन और साहित्य ने प्रभावित किया है। शताब्दियों से अशिक्षा, अज्ञान एवं दरिद्रता के अँधेरे में भटकते हुए इस वर्ग के लिए डॉ. अम्बेडकर एक सूर्य के रूप में उदित हुए, जिसने उन्हें समता, शिक्षा, सम्मान का प्रकाश प्रदान किया। डॉ. अम्बेडकर को अपने बचपन में ही अस्पृश्यता के अभिशाप का आभास हो गया था। डॉ. अम्बेडकर को छात्र जीवन में ऐसे कटु अनुभव हुए जिसके कारण उनके मन में हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के प्रति अपार घृणा पैदा हो गयी थी तथा अधिकतर अम्बेडकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन दलित समाज को अस्पृश्यता के इस अभिशाप से मुक्ति दिलाने में लगा दिया। दलित साहित्य की प्रेरणा का स्रोत वर्तमान काल में तो डॉ. अम्बेडकर का जीवन साहित्य और विचारधारा ही है। सभी भाषाओं के दलित लेखक एकमत इसे स्वीकार करते हैं।

मराठी में दलित चेतना के उद्‌भव को कुछ लोग बुद्धकाल में तलाश करते हैं और कुछ लोग भक्ति साहित्य में और कुछ लोग ज्योतिराव फूले के सामाजिक चिन्तन में। सत्य

यह है कि दलित साहित्य की प्रेरणा के स्रोत डॉ. अम्बेडकर के विचार, विचारधारा और उनकी जीवनदृष्टि में है तथा उनके द्वारा दलित मुक्ति के उद्देश्य से शुरू किये गये मुक्ति आन्दोलन में है। इनकी विचारधारा और जीवन दृष्टि के पीछे भगवान् बुद्ध तथा महात्मा फुले के विचार हैं जिसे उन्होंने विरासत के रूप में पाया।

जिस समय महाराष्ट्र में दलित साहित्य का सृजन हो रहा था उस समय उत्तर भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी इसकी सुगबुगाहट सुनाई देने लगी थी। यह लोकगीतों के रूप में थी तथा इसी ने धीरे-धीरे कविता का रूप ग्रहण कर लिया था। अस्सी के दशक तक आते-आते यह पूरी तरह स्पष्ट हो गयी थी जब लगभग दो दर्जन से भी अधिक कवियों के कविता संग्रह प्रकाशित हुए।

'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' का दिल्ली में तब तक गठन हो चुका था, जिसने अपनी प्रदेश शाखाओं का विस्तार लगभग पूरे देश में कर लिया था। इस संस्था ने अखिल भारतीय दलित साहित्यकार सम्मेलनों का आयोजन कर दलित साहित्य के विस्तार को गति प्रदान की।

बीसवीं सदी का अन्तिम दशक दलित साहित्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि इसी दशक में हिन्दी दलित साहित्य ने अपना विधागत विस्तार किया है। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, निबन्ध, नाटक, आलोचना क्षेत्र में ही नहीं, अनुवाद और शोध के क्षेत्र में भी पर्याप्त लेखन हुआ है। इसकी बढ़ती लोकप्रियता के कारण कुछ ऐसे लोग भी जागे, जिन्होंने यह प्रश्न भी उठाया कि न तो साहित्य दलित होता है और न ही साहित्यकार, दलित की भावना रखकर कोई व्यक्ति अच्छा साहित्य लिख ही नहीं सकता। इसका उत्तर भी दलित साहित्यकारों ने दिया कि 'दलित' शब्द हिन्दुओं की उस कुत्सित मानसिकता का प्रतीक है, जिसके तहत उन्होंने एक पूरे वर्ग का दैहिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक तथा नैतिक उत्पीड़न किया है।

वर्तमान समय में दलित साहित्य भारत की लगभग सभी भाषाओं में लिखा जा रहा है। अब हिन्दी या मराठी का नहीं है, प्रत्युत दलित साहित्य का स्वरूप अखिल भारतीय हो गया है।

1.5 विशेषताएँ

- दलित साहित्य की विशेषताओं पर यदि हम विचार करें तो पाते हैं कि दलित साहित्य समता, स्वतन्त्रता और बन्धुता का पक्षधर है। वह किसी प्रकार के उत्पीड़न का—चाहे वह मानसिक हो, आर्थिक हो, या धार्मिक हो, या सामाजिक हो—घोर विरोधी है।
- दलित साहित्य जातिवाद व्यवस्था का घोर विरोधी है जबकि कुछ साहित्यकार और आलोचक उस पर जातीय वैमनस्य भड़काने और जातिवादी होने का आरोप लगाते हैं। लेकिन समझा जा सकता है कि जिस व्यक्ति के कारण, शताब्दियों तक अपमान की यातना को झेला हो, वह जातिवादी कैसे हो सकता है? जातिवादी वह होगा, जिसे सम्पूर्ण मूर्खता और अज्ञान के बावजूद जाति के कारण ही सम्मान मिला हो। अत: दलित साहित्य जातिवाद के उच्छेद के लिए सर्वात्मना प्रयत्नशील दृष्टिगोचर होता है।
- दलित साहित्य हिन्दू धर्म की समस्त मान्यताओं, भाग्य, भगवान्, पुनर्जन्म, अवतारवाद, आत्मा, परमात्मा, देवी-देवताओं के अस्तित्व को नकारता है क्योंकि इन सभी मान्यताओं के कारण ही हिन्दुओं ने दलितों की शिक्षा तथा उपासना आदि को प्रतिबन्धित कर रखा था।
- दलित साहित्य का मूल प्रेरणास्रोत डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा एवं साहित्य है, लेकिन गौतम बुद्ध, सन्त रैदास और महात्मा फुले भी दलित साहित्य के प्रेरणा-स्रोत हैं, जिन्होंने वर्चस्ववादी हिन्दू व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह किया।
- दलित साहित्य का प्रारम्भ तो लोकगीत और कविता से हुआ लेकिन अब हिन्दी में उपन्यास, कहानी, नाटक, एकाकी, लघुकथा, आलोचना, शोध अनुवाद, इतिहास लेखन, आत्मकथा आदि अनेक विधाओं के रूप में हो रहा है।

1.6 दलित साहित्य का स्वरूप

भारतीय दलित साहित्य का स्वरूप निश्चित करने से पूर्व हमें उन घटकों की मानसिकता को समझना होगा जिसके द्वारा इस साहित्य का निर्माण हुआ।

भारतीय दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर आधारित है। इसके अलावा प्रत्येक भारतीय भाषा ने अपने यहाँ समता के आन्दोलन निर्माण किए हैं। कुछ समाज सुधारकों ने यह काम किया, जैसे—मलयालम साहित्य के श्रेष्ठ समतावादी महापुरुष श्री नारायण गुरु, तमिल साहित्य में ई. रामास्वामी नायकर, कन्नड साहित्य के म. बसवेश्वर। यह भी सही है कि प्रत्येक प्रान्त में ऐसे महापुरुष होंगे ही, ऐसा नहीं। उदाहरण के लिए हिन्दी प्रदेश में कबीर से प्रेरणा ली जाती है। आधुनिक काल में इस प्रकार का विचार रखने वाला कोई महापुरुष यहाँ नहीं हुआ। इस कारण कबीर महात्मा फुले और डॉ. अम्बेडकर के विचारों को आदर्श मानकर ही उनका लेखन चल रहा है। मार्क्स के विचारों को आदर्श मानकर लेखन करने वालों की संख्या भी भारतीय लेखकों में अधिक है। मराठी और हिन्दी के दलित साहित्यकार इन दोनों को एकत्र करने का प्रयास करते हैं। मराठी जैसे ही हिन्दी में कुछ लेखक कवि तथा 'चिंतक' मार्क्स को नकारते हैं और अम्बेडकर को प्रमाण मानते हैं। इसमें छोटा तबका ऐसा भी है जो डॉ. अम्बेडकर और महात्मा बुद्ध के तत्वज्ञान को प्रमाण मानकर लिखता है अर्थात् भारतीय दलित साहित्य की वैचारिक नींव महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा कबीर, महात्मा फुले, कार्ल मार्क्स और डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारों से ही तैयार होती हुई दिखाई देती है।

भारतीय दलित साहित्य में 'आत्मकथा' साहित्य रूप उच्च स्थान लेकर आया है। इसके पहले 'आत्मकथा' को यादों के संग्रह के रूप में देखा जाता था। आत्मकथा समाज जीवन का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इसका एहसास दलित लेखकों ने करा दिया है। साहित्य की विधा के रूप में 'आत्मकथा' एक प्रकार से उपेक्षित ही था। कुछ समीक्षक तो 'कविता' और 'उपन्यास' को ही साहित्य मानते थे। हिन्दी दलित साहित्य की शुरुआत 'जूठन' आत्मकथा से होती है। मराठी आत्मकथा से प्रेरणा लेकर ही अन्य भारतीय भाषाओं में दलित आत्मकथाओं की शुरुआता होती है। इस कारण भारतीय दलित साहित्य में आत्मकथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मराठी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में दलित कविता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण नाम दिखाई नहीं देता। नामदेव ढसाल, दया पॅवार आदि ने अपनी कविता के माध्यम से दलित व्यथाओं को जिस आत्मीयता और तटस्थता से सूक्ष्म दृष्टि से चित्रित किया है, उस स्तर का एक भी कवि भारतीय भाषाओं में नहीं है। हिन्दी, पंजाबी, गुजराती तथा तेलगू की

कविता प्राथमिक स्तर की है। नामदेव ढसाल के बाद शरणकुमार लिम्बाले, त्रयंबक सपकाले, यशवन्त मनोहर, वामन निंबालकर तथा अन्य कवियों ने काव्य विधा को जो उपलब्धि दी है, वैसा अन्य भारतीय भाषा में दिखाई नहीं देता।

इस विषय पर भारतीय स्तर पर एक ही चर्चित उपन्यास है, वह भी अंग्रेजी भाषा में। अरुंधती रॉय का 'The God of small things.' अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यास में दलित भावनाएँ व्यक्त हुई है, लेकिन यह भी गौरव प्राप्त उपन्यास नहीं है। मराठी में इस विषय पर दर्जनों उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। उसमें शरण कुमार लिंबाले का 'हिन्दू' लघु उपन्यास उल्लेखनीय है।

कहानी के क्षेत्र में काफी लेखन भारतीय भाषाओं में हुआ है। बाबूराव बागुल की कहानियों से दौर शुरू होता है। सन् 1980 के बाद प्रत्येक भारतीय भाषा में इस विषय पर लिखी कहानियाँ बेचैन करने वाली है। हिन्दी में मुद्राराक्षस, श्योराज सिंह बेचैन, नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। बाबूराव बागुल इस क्षेत्र के भारतीय स्तर के चर्चित कहानीकार हैं।

भारतीय दलित साहित्य में मराठी साहित्य का अपना महत्त्व यह है कि मराठी के दलित साहित्य को आन्दोलन ने प्रेरणा दी है। आन्दोलन से विकसित हुआ यह साहित्य अश्वेत साहित्य के बाद दूसरा आन्दोलनजन्य साहित्य है। अन्य भारतीय भाषाओं के दलित साहित्य की ऐसी पृष्ठभूमि नहीं है। इस कारण वहाँ वैचारिक गड़बड़ दिखाई देती है। मार्क्सवाद पढ़कर श्रमिकों की व्यथाओं को शब्द रूप देना और प्रत्यक्ष श्रमिक आन्दोलन में सक्रिय रहकर लिखने में गुणात्मक अन्तर होगा।

भारतीय दलित साहित्य में मुख्यत: गाँव के बाहर के जीवन की कथा–व्यथा व्यक्त हुई है। भारतीय समाज के जीवन का एक उपेक्षित यही घटक इन लेखकों का विषय है। यह मानना पड़ेगा कि पारम्परिक साहित्य में जिस तरह दलित जीवन का चित्रण नहीं के बराबर हुआ है उसी तरह से दलित साहित्य में सवर्ण के जीवन का चित्रण थोड़ा–बहुत दिखाई देता है। डॉ. शरण कुमार लिंबाले का 'हिन्दू' उपन्यास इसका अपवाद ही है। इसमें झोपड़पट्टी और गाँव की दलित बस्ती का चित्रण प्रमुखता से हुआ है।

भारतीय दलित साहित्य में स्त्री का चित्रण अधिक नहीं हुआ है। बाबूराव बागुल की कहानियों में तथा दयाशंकर की कुछ कविताओं में स्त्री दिखाई देती है। हिन्दी आत्मकथा, उपन्यास और कहानी में स्त्री अधिक प्रमाण में दिखाई देती है। सवर्ण पुरुष के जाल में फँसी हुई बलात्कृत अप्रमाणिक रूप से उसका चित्रण हुआ है। अन्य भारतीय भाषाओं में स्त्री का चित्रण केवल श्रमिक शोषित के रूप में हुआ है।

लगभग सभी भारतीय भाषाओं में लेखकों ने अपने-अपने प्रदेश की परिनिष्ठित भाषा को नकारते हुए बोलचाल की भाषा में लेखन किया है, अपवाद हिन्दी के लेखक हैं। उन्होंने पूर्णत: हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया है। अलग-अलग पद्धति में उपयोग के कारण भाषा अधिक समृद्ध होती है। अत्यन्त छोटे तबकों में जिस भाषा का उपयोग होता है, उसमें लेखक लिखता है, उससे पाठक भाषा में अटक जाता है। मराठी में जिस पद्धति के प्रयोग हुए हैं, लेखक जो कहता है वह सहजता से पाठक तक पहुँचना चाहिए। किसी भी लेखन की यह पहली शर्त होती है।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य अभी प्राथमिक अवस्था में है। मराठी के कुछ कवि, लेखकों को छोड़ दें तो अन्य भारतीय भाषा में ऐसे कवि, नाटककार दिखाई नहीं देते हैं। इसका विचार भारतीय पर होना चाहिए। दलितों से भी उपेक्षित कुछ समुदाय इस देश में है, यह मानना होगा। आदिवासी, घुमन्तु, अल्पसंख्यक दरिद्र रेखा के नीचे जीने वाले श्रमिक, इन सबके दु:खों को शब्दबद्ध करना, यह साहित्य—पारम्परिक भारतीय साहित्य के सामने आह्वान के रूप में खड़ा है। इसमें जो विद्रोह है वह सकारात्मक रूप में किसी तरह से होता रहेगा, अब यही प्रश्न है।

1.7 दलित साहित्य : उद्देश्य और वैचारिकता

'दलित साहित्य' वह लेखन है, जो वर्ण-व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है। वर्ण-व्यवस्था अर्थात् द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्धभावना। इसके विपरीत मूल्य अर्थात् प्रेम, बन्धुत्व, समता, भ्रातृभावपूर्ण शान्ति और समृद्धि। 'दलित' शब्द से अनेक प्रकार का बोध होता है। जैसे—दु:ख-बोध, अपमान बोध, दैन्य-दासत्व बोध, जाति-वर्ग-बोध, विश्व बन्धुत्व-बोध और क्रान्ति बोध।

एक अर्थ में आज के सामान्य मनुष्य के जीवन और शूद्र-अस्पृश्य के जीवन में दु:ख, दैन्य, अपमान की व्यथा-वेदना भर गयी है। इस दृष्टि से सामान्य मनुष्य, चाहे वह स्पृश्य हो या अस्पृश्य, एक धरातल पर आ गये हैं। किसी हद तक यह काम पूँजीवादी व्यवस्था ने किया है। परिवर्तन दोनों चाहते हैं। पर परिवर्तन करेगा कौन?

स्त्री, शूद्र-अस्पृश्यों को सिर्फ राजनीतिक परिवर्तन पर्याप्त नहीं दिखता। उदाहरण के लिए बरतानवी राज गया और स्वराज आया—प्रजातन्त्र आया। फिर भी अस्पृश्यता है और है आर्थिक तथा मानसिक विषमता।

पुरानी सामन्तवादी अर्थ-व्यवस्था कमजोर हो रही है और पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था प्रबल हो रही है। पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध को जीतकर उसने अपना सामर्थ्य दिखला दिया है फिर भी अस्पृश्यता है, विषमता है।

स्पृश्य और अस्पृश्य दोनों ही तरह के सामान्य जन को एकजुट होकर देश को लोकशाही और भीम-स्मृति (अंबेडकरवाद) के अन्तर्गत लोकशाही समाजवाद की ओर ले जाना चाहिए।

अतीत में जिन लोगों को कभी समाज का शीर्ष स्थान नहीं मिला और जिनकी इतिहास में कोई छोटी-मोटी भूमिका तक नहीं रही, उन्हें उसके प्रति ममत्व कैसे होगा? उसके लिए तो उनके मन में शत्रुत्व ही है, उनके लिए जो कुछ भी है वह वर्तमान ही है, जिसमें लोकतन्त्रात्मक समाजवाद की सम्भावनाएँ निहित है, वर्तमान जिसने सामान्य जनता को संघर्ष के शस्त्र-अस्त्र दिये हैं, जिसने निर्माण और क्रान्ति का विज्ञान दिया है, समाज बदलने में समर्थ नयी उत्पादन-प्रणाली दी है और दिया है, भविष्य में भ्रातृभावपूर्ण सम्पन्न सुखी जीवन का आशावाद।

वर्तमान से अपार प्रेम करने वाला और भविष्य के निर्माण के लिए प्राणपन से जूझने वाला, भारत का सबसे प्रभावी वर्ग सिर्फ दलितों का है।

अत: दलित साहित्य ने उन बहिष्कृत लोगों को अपना नायक बनाया है, जिन्हें सम्पूर्ण वर्ण-व्यवस्था ने अमंगल और अपवित्र माना, पूर्वजन्म का अपराधी कहकर जिनकी निन्दा की गयी, सभी स्मृतिकारों ने जिनके साथ शत्रुत्व बरता और जिन्हें कभी साहित्य में नायक या उपनायक का स्थान नहीं मिला। दलित साहित्य ने इन्हीं बहिस्कृतों

को अपने विचार या रचना का केन्द्र बिन्दु बनाया है क्योंकि सम्यक् परिवर्तन इनका स्वाभाविक कार्य है।

भारतीय विचार, समाज और साहित्य-परम्परा वर्ण-व्यवस्था से सम्बद्ध है। इस परम्परा को दलित साहित्य पूर्णतया नकारता है। वह स्वत: को ज्ञान-विज्ञान और विश्व साहित्य की उस मानववादी क्रान्तिदर्शी परम्परा से जोड़ता है, जिसमें मानव स्वातन्त्र्य के मूल्य पोषित पल्लवित हुए हैं।

दलित साहित्य में भाषिक, प्रान्तिक, राष्ट्रीय दुराभिमान नहीं है। दलित साहित्य तो मनुष्य को सर्वोपरि मानता है अत: मनुष्य की महानता के लिए जो कुछ भी अच्छा हो रहा है, वह सब कुछ दलित साहित्य का है।

हम सामान्य-जन है और हमारा लेखन जन से प्रतिबद्ध है—समांतर साहित्य की यह धारणा दलित साहित्य को अत्यन्त मूल्यवान प्रतीत होती है। कारण, इस देश की संस्कृति और समाज में सामान्य जन के प्रति तिरस्कार है, उसे तुच्छ माना गया है, उसे अपमानित और अवसर-रहित रखने का आग्रह किया है।

शासन सत्ता, धन-सत्ता और धर्म-सत्ता विषमता को पाल रही हो और वामपंथी आन्दोलन संवेदना शून्य दिख रहा हो, तब यह घोषणा करना कि हम सामान्यजन और वामत्व से सम्बन्ध रखते हैं, सचमुच वामत्व है। साधारणतया भारतीय मनुष्य की प्रवृत्ति ऊँची जाति या वर्ण धारण करने की है। इस देश में जातिभेद-ग्रस्त समाज में वर्ग-विमुक्त होने को दलित साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता है। यह प्रवृत्ति समांतर और दलित साहित्य के माध्यम से प्रकट हुई है। यह इसका प्रमाण है कि आधुनिक भारत का नेतृत्व करने और प्रवक्ता बनने का दायित्व साहित्य ने स्वीकार किया है। विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में इस प्रकार के नेतृत्व के अनेक उदाहरण मौजूद है।

1.8 दलित साहित्य के प्रतिमान

मराठी भाषा में सातवें दशक से शुरू हुआ दलित साहित्य अब धीरे-धीरे अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण करने की ओर बढ़ रहा है। मराठी के अतिरिक्त गुजराती, कन्नड, तेलगू, तमिल, मलयालम, बँगला, हिन्दी व पंजाबी में भी दलित साहित्य ने अपनी पहचान स्थापित करने की ओर कदम बढ़ाए हैं। हिन्दी में पिछले करीब एक दशक से शुरू

हुआ दलित साहित्य अपने पूरे विवादों के साथ साहित्यिक परिदृश्य पर एक महत्त्वपूर्ण परिघटना के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

दलित साहित्य के साथ मराठी भाषा में इसके उदय से जो प्रश्न जुड़े हुए हैं वही प्रश्न कमोबेश दूसरी भाषाओं में भी पैदा हुए हैं। जैसे दलित साहित्य का रचयिता कौन? दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी भी प्रश्न उठते हैं और इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मराठी दलित लेखक शरण कुमार लिंबाले की पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' भी प्रकाशित हुई है। लेकिन दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की बात अभी से कोई निश्चित रूप से शायद न ले पाए, क्योंकि उसके लिए जिस सैद्धान्तिक और दार्शनिक गहराई की अपेक्षा है, उसे बनने में शायद काफी समय लग जाए। बावजूद इसके, चर्चा चली है जो स्वाभाविक भी और जरूरी भी।

दलित साहित्य के सन्दर्भ में सर्वाधिक गम्भीर चिन्तन मराठी भाषा में ही हुआ है लेकिन मराठी भाषा में दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, शास्त्र या प्रतिमान सम्बन्धी समस्याओं का न तो कोई समाधान प्रस्तुत किया और न ही इस सन्दर्भ में पर्याप्त लेखन ही हुआ है। मराठी चिन्तकों के चिन्तन से जो कुछ सूत्र मिलते हैं उन्हें एक व्यवस्थित रूप देकर दलित साहित्य के प्रतिमानों पर आरम्भिक चर्चा की जा सकती है।

दलित साहित्य के प्रतिमानों में सबसे पहले उसका आधार देखना जरूरी है। ज्यादातर लेखकों व चिन्तकों में इस बिन्दु पर मतैक्य है कि दलित साहित्य जीवनवादी साहित्य है। वह हवाई या काल्पनिक या वायवी दुनिया का साहित्य न होकर संघर्षशील दलित वर्ग के जीवन के दु:खों, पीड़ाओं व संघर्षों को अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य है। दूसरे शब्दों में दलित साहित्य का आधार जीवन का यथार्थ है।

अत: वैचारिक स्तर पर विश्व साहित्य से संपृक्त होते हुए दलित साहित्य यथार्थवादी साहित्य की कोटि में आएगा। दलित साहित्य का यथार्थवाद आगे किस दशा का होगा यानी आलोचनात्मक या क्रान्तिकारी या दोनों ही? यह विचारणीय हो सकता है। आलोचनात्मक या क्रान्तिकारी चित्रण के प्रसंग में दलित साहित्य दलितों द्वारा या गैर दलितों द्वारा लेखन की समस्या का समाधान भी सम्भव है। गैर दलितों द्वारा दलित जीवन का यथार्थ ज्यादातर आलोचनात्मक दृष्टि से अंकित किया जा सकता है जबकि स्वयं

दलित साहित्यकारों द्वारा दलित जीवन का चित्रण आलोचनात्मक व क्रान्तिकारी दोनों तरह से हो सकता है।

दलित जीवन का यथार्थ कटु, वीभत्स, कष्टदायक व संघर्षरत है अत: लेखक दलित हो या गैर दलित इस जीवन की वेदना या पीड़ा के पक्ष को वह अपेक्षित नहीं कर सकता। लेकिन यह पीड़ादायक यथार्थ क्रान्तिकारी बदलाव द्वारा एक नए यथार्थ के सर्जन की दृष्टि क्रान्तिकारी दलित लेखकों के पास होने की संभावना अधिक है। एक गैर-दलित भी क्रान्तिकारी यथार्थवादी हो सकता है लेकिन इसके लिए उसका जाति स्तर पर गैर जातिवादी या जात-पात रहित दृष्टिसम्पन्न होना ही नहीं, जीवन व्यवहार में भी जात-पाँत विरोधी दलित वर्ण के साथ अभिन्न होना जरूरी है। ऐसे लेखक विरले ही होंगे, लेकिन ऐसे लेखकों का दलित लेखकों को स्वागत करना चाहिए।

दलित साहित्य यदि यथार्थवादी साहित्य की विश्व दृष्टि से स्वयं को जोड़ता है तो जाहिर है कि वैचारिक स्तर पर उसकी प्रगतिशील या मार्क्सवादी दृष्टि सम्पन्न ब्लैक साहित्य व स्त्रीवादी या स्त्री केन्द्रित साहित्य से भी निकटता बढ़ेगी। क्योंकि ये सभी दृष्टिकोण व साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी यथार्थवाद को या कला कला के लिए की बजाए कला जीवन के लिए के सिद्धान्त का प्रतिमान अपने लिए जरूरी मानते हैं।

अत: दलित साहित्य के प्रथम प्रतिमान या मानदण्ड के रूप में दलित साहित्य जीवन के लिए यथार्थवाद आधारित साहित्य लेखन स्त्री जीवन के यथार्थ पर अधिक ध्यान केन्द्रित करेगा, लेकिन उसका मुख्य आधार रहेगा यथार्थवाद ही।

दलित साहित्य के आधार का प्रतिमान स्पष्ट होने के बाद यथार्थ की विश्व दृष्टि का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। जीवन के यथार्थ का एक दलित लेखक किस जीवन दृष्टि से ग्रहण कर, मन में उसका चित्र उतारना व बाद में सृजन के रूप में उसे ढालता है, यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। आरम्भिक दलित लेखकों—अन्ना भाऊ साढे व नारायण सुर्वे आदि की जीवन दृष्टि मार्क्सवाद से प्रभावित-प्रेरित थी।

मध्यकालीन भक्तिधारा के दलित कवियों की जीवनदृष्टि निर्गुणवाद से अधिक प्रभावित थी। समकालीन दलित साहित्य महात्मा फुले, डॉ. अम्बेडकर व पेरियार की जीवन दृष्टि से अधिक प्रभावित हैं। महात्मा बुद्ध के जीवन दर्शन का भी कुछ प्रभाव दलित

साहित्य पर है। कई दलित चिन्तक मार्क्सवादी जीवन दृष्टि से भी प्रभावित है व कई अन्य मार्क्सवाद और अम्बेडकर चिन्तन को मिलाकर अपनी जीवन दृष्टि विकसित करते हैं।

बहुत कम साहित्यिक प्रवृत्तियाँ ऐसी होती हैं, जो किसी विशिष्ट साहित्यिक विधा को जन्म दे या उसे अपनी पहचान का केन्द्र बना दे। दलित साहित्य इस अर्थ में भी विशिष्ट है कि इसने आत्मकथा विधा को साहित्यिक विधा के रूप में विस्तार और निखार दिया है। मराठी भाषा में तो आत्मकथा ने उपन्यास के लगभग बदले रूप में अपनी पहचान स्थापित की। अन्य भारतीय भाषाओं में भी दलित लेखन यद्यपि सभी विधाओं में हो रहा है लेकिन इसकी विशिष्ट पहचान आत्मकथा के रूप में उभर रही है। जैसी हिन्दी में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय व सूरजपाल आदि आत्मकथाएँ, पंजाबी में लालसिंह 'दिल' और प्रेम गोरखी आदि आत्मकथाएँ। यही स्थिति कमोबेश अन्य भाषाओं में है।

दलित साहित्य के सन्दर्भ में इस साहित्य की विशिष्ट पहचान के लिए इसके परीक्षण में जो प्रतिमान अनिवार्यता से उभर कर सामने आयेंगे उसमें—

(1) दलित साहित्य का आधार यथार्थवादी होना।

(2) दलित साहित्य जीवन के लिए या जीवनवादी होना।

(3) आत्मकथा विधा का सृजनात्मक सन्दर्भ में सम्यक् चित्रण कर पाना।

(4) आलोचनात्मक या क्रान्तिकारी विश्व दृष्टि होना।

(5) साहित्यिक गुणवत्ता होना।

1.9 दलित साहित्य में नारी चेतना

"कह देता है किन्तु पुजारी यह तेरा भगवान नहीं है।
दूर नहीं मन्दिर अछूत का और दूर भगवान् कहीं है।।
मैं सुनती हूँ जल उठती है मन में यह विद्रोही ज्वाला।
यह कठोरता ईश्वर को भी जिसने टूक–टूक कर डाला।।
यह निर्मम समाज का बन्धन और अधिक अब सह न सकूँगी।
किन्तु देवता यह न समझना तू मेरा प्यार नहीं है।।"[26]

सुभद्रा कुमार चौहान की कविता 'प्रभु तुम मेरे मन की जानो' की ये पंक्तियाँ अस्पृश्यों की ओर से ईश्वर की ओर फरियाद है। स्पष्ट है कि सवर्ण और दलित दोनों के लिए अलग-अलग नियम है, अलग मन्दिर है और अलग ही ईश्वर भी है।

आखिर दलित कौन? क्या सदियों से शोषित वर्ग का नाम दलित है? सवर्णों के अत्याचारों व जुल्मों के प्रतीक दलित है? पशुओं की तरह जिन्दगी बिताने वाले लोग दलित है? या समाज के निम्नतम पायदान पर दलित हैं, जिनके सामाजिक अधिकारों का हनन सदियों से होता आया है, वह दलित है और उनमें भी सबसे ज्यादा दलित है उनका नारी वर्ग जो ना केवल अन्य वर्णों के अत्याचारों को सहती आई है बल्कि अपने पुरुषों के जुल्मों का शिकार रही है। स्त्री दलित और निर्धनता, कुल मिलाकर स्थिति और भी दयनीय होती जाती है। वैसे तो दलित हमेशा से ही बाकी वर्णों से दूर रहे हैं। समय के साथ समाज को चार वर्णों में बाँट कर निम्नतम पायदान पर खड़े वर्ण को अनेकों विशेषणों से नवाजा गया—कभी चाण्डाल, कभी अवर्ण, कभी म्हार, कभी मलेच्छ शब्दों का इस्तेमाल किया गया। इन्हें अस्पृश्य कह पशुतुल्य जीवन व्यतीत करने को विवश किया गया। मनुष्य होकर भी उनसे घृणित से घृणित कार्य करवाए गये जिनसे आज तक भी उन्हें मुक्ति नहीं मिल पाई है।

वर्ण-व्यवस्था ने जहाँ ब्राह्मण को स्थापित किया वहीं दलित समाज को तोड़ कर ही रख दिया। पहले तो वर्ण-व्यवस्था के सबसे नीचे पायदान पर दलित और उस पर दलितों में स्त्री, जो जाति, धर्म, वर्ण से भी परे पुरुषों से भी नीचे के पायदान पर स्थापित कर दी गई। दलित स्त्रियाँ सवर्णों की दासी थी, जिनसे जैसा चाहे काम लिया जाता था। वैसे तो वे एक सभ्य समाज का हिस्सा थी लेकिन घण्टों और कार्य की कठिनता को ना देखते हुए उनसे बेगार लिया जाता। वे समाज में बिल्कुल हाशिए पर खड़ी थी। ना तो उन्हें शिक्षा का अधिकार था और ना ही अपनी मर्जी से जिन्दगी जीने का। मनुस्मृति ने तो दलितों व स्त्रियों के लिए ज्ञान के द्वार बन्द ही कर दिये थे। वेद-मन्त्रों के उच्चारण करने या सुनने मात्र से ही जीभ काटने और कान में पिघला सीसा उड़ेलने की कड़ी सजा का प्रावधान था। सदियों से उन्हें समाज में दुत्कारा जाता रहा है। उनकी परछाई से भी लोग भागते रहे हैं। काम करवा कर रोटी भी हाथ में देकर फेंक कर दी जाती रही है ताकि दलितों के हाथ से उनका हाथ छू ना जाए। सदियों तक अपने सिर पर मैला ढोते आए हैं।

उनके हाथों पर या गले में काली डोरी बाँधकर उन्हें समाज से अलग होने का एहसास बाकी वर्ण लगातार दिलाते रहे। कभी उन्हें कमर में झाड़ू बाँधकर चलना पड़ता तो कभी थूकने के लिए मिट्टी का बर्तन साथ में लेकर चलना पड़ता था। अनेक किताबें भरी पड़ी है जहाँ भारत के अलग-अलग राज्यों में दलितों के साथ अलग-अलग प्रकार का बर्ताव किया जा रहा है। दलितों के लिए कुल मिलाकर जिन्दगी जीना एक जंग के समान होती है।

इस दयनीय स्थिति की तरफ अनेक व्यक्तियों, जैसे—डॉ. अम्बेडकर से लेकर गाँधी तक और ज्योतिबा फुले से विवेकानन्द तक बहुत-से समाज सुधारकों का ध्यान गया। सभी ने बाकी समाज का ध्यान इस ओर खींचने की कोशिश की। इस सन्दर्भ में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था—"दलितों, तुम विद्रोह करो। तुम्हारे पास खोने के लिए गुलामी के सिवाय कुछ नहीं है पर पाने के लिए आजादी है।"

स्पष्ट है वे दलितों को इस अपमानजनक स्थिति से उबारना चाहते थे। उन्होंने दलितों को उनके अधिकार दिलाने का रास्ता दिखाया। जैसे—छुआछूत को कानूनी तौर पर समाप्त किया जाए। आम लोगों के लिए मिलने-जुलने के स्थलों पर भेद-भाव बरतने पर कानूनी कार्यवाही की जाये। किसी भी आधार पर समाज में किसी भी वर्ण को कोई विशेषाधिकार ना देने की बात संविधान में लिखी गई। इसी प्रकार महात्मा फुले ने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना कर दलित स्त्री-पुरुषों के लिए कई उल्लेखनीय कार्य किए।

अनेक समाज सुधारकों ने दलित स्त्रियों के जीवन में रोशनी करने के लिए अधिकारों के साथ-साथ उनके शिक्षित होने पर भी बल दिया। स्त्री शिक्षा को खासतौर पर प्रचारित किया गया। यह माना गया कि दलित महिलाओं में शैक्षिक विकास की कमी है। प्राइमरी विद्यालयों से ही दलित बालिकाओं के विद्यालय छोड़ने का प्रतिशत भी काफी ज्यादा है। ज्यादातर दलित बालिकाएँ उच्च शिक्षा तक पहुँच ही नहीं पाती। इसलिए उनको शिक्षित करने के उद्देश्य से आरक्षण के साथ-साथ नये विद्यालय भी खोले गये। स्वयं डॉ. अम्बेडकर यह मानते थे कि शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य की जानी चाहिए। पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी शिक्षा दी जानी चाहिए। वे मानते थे कि यदि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर उन्नति कर लेगी तो बच्चे भी शिक्षित हो पायेंगे और इस प्रकार पूरा परिवार शिक्षित होगा। शिक्षा का व्यापक प्रसार ही दलितों का उद्धार करेगा।

कागजों में अनेक योजनाएँ बनाई जाती है। भारत को आजाद हुए 70 साल हो गये। भारत सरकार ने दलितों की जाति व्यवस्था का सरलीकरण करके अनुसूचित नाम दे डाला, क्या नाम बदलने से स्थिति में परिवर्तन आया? आज किसी भी दैनिक अखबार के मुख–पृष्ठ की खबर होती है कि एक दलित स्त्री को वस्त्रहीन करके घुमाया गया। शायद कोई भी अपराध इतना भयानक नहीं होता जिसकी यह सजा दी जाये। क्या स्त्री का स्त्री होना और इस पर दलित होना ही उसका सबसे बड़ा अपराध है। एक दलित स्त्री से सिर्फ इसलिए बलात्कार किया जाता है क्योंकि उसे मना करने का हक ही नहीं है। गैरकानूनी होते हुए भी उसे सिर पर मैला ढोना पड़ता है। वैसे तो पितृसत्तात्मक समाज में सवर्ण या अवर्ण का कोई महत्त्व नहीं है लेकिन दलित महिला पर हिंसा का कोई ओर–छोर नहीं है।

घर के खूँटे से बँधी अशिक्षित दलित नारी काम भी करेगी और मार भी खायेगी। मलिन बस्तियों में अँधेरे में नशे में चूर स्वयं उनके पतियों से पिटती दलित महिलाएँ इस बात की प्रतीक हैं कि घरेलू हिंसा कानून का होना उनके लिए कोई मान्यता नहीं रखता। आरक्षित सिटों पर नौकरी तो मिल जाती है लेकिन कार्यस्थल पर भी उन्हें अलग नजरों से ही देखा जाता है।

शिक्षा की कमी के कारण आज भी वे दूसरे या तीसरे दर्जे के कार्य में संलग्न है। संवैधानिक प्रावधानों से ऐसा लगता है कि छुआछूत समाप्त हो गई है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी दलित स्त्रियाँ अपने पारम्परिक पेशे में संलग्न है। दूसरी ओर राजनीति में दलितों को एक वस्तु बनाकर रख दिया है, दलित स्त्रियों को शोषण को जिन विशिष्ट रूपों में झेलना पड़ रहा है उनके प्रति आधुनिक स्त्री आन्दोलन भी उदासीन ही है। सामाजिक व पारिवारिक हिंसा के साथ–साथ दलित स्त्री राजनीतिक हिंसा की भी शिकार है। महिला सशक्तीकरण के तमाम नारों के बावजूद स्त्री–पुरुष अनुपात में कोई खास सुधार नहीं आया है जिसका परिणाम है स्त्रियों पर हिंसा बढ़ती ही जा रही है। उल्लेखनीय है कि कीर्ति के आसमान पर अवश्य ही कुछ दलित महिलाओं को देखा जा सकता है लेकिन यह नाम उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। आवश्यकता है कि समाज की मानसिकता में बदलाव हो। सरकारी तन्त्र थोड़ा और तेजी से कार्य करे, दलित स्त्रियों को अभी ऐसी अनेक सुबह देखनी होगी, जिन्हें पार करके यह वास्तविकता में भारत के स्वतन्त्र होने का एहसास कर पायेगी।

1.10 दलित साहित्य की प्रामाणिकता

जीवन सतत् परिवर्तनशील है। परिवर्तन शाश्वत नियम है। जो जड़ है या हो चुका है या कर दिया गया है वह मृत है या मृतप्राय: है। यह स्थिति सम्पूर्ण जीव-जगत् पर जागू होती है तब साहित्य जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इसीका प्रतिबिम्बन प्रतिफलन है वह इससे अछूता कैसे रह सकता है? कुछ विद्वानों का मानना है कि साहित्य कैसा भी हो दक्षिणपंथी अथवा वामपंथी, निग्रो अथवा श्वेत, सवर्ण अथवा दलित, उसकी प्रारम्भिक शर्त उसके साहित्य होने में है। उन मूलभूत अर्हताओं को पूरा करने के पश्चात् ही वह साहित्य की श्रेणी में आता है।

वर्तमान में दलित साहित्यकारों ने इन परम्परावादी प्रतिमानों की चूलें हिला दी हैं। वे इन प्रतिमानों को नकारते हुए नए प्रतिमान स्थापित करना चाहते हैं। भाषा, कथ्य, संवेदना के स्तर पर वे विद्रोह का बिगुल बजाते हैं इसीलिए उनके साहित्य पर गाली साहित्य का आरोप भी लगा जिसका समुचित उत्तर दलित साहित्यकारों ने दिया। इस सन्दर्भ में मूर्धन्य साहित्यकार भीष्म साहनी के अनुसार, "इसमें सन्देह नहीं कि इन्सान जहाँ सहता है वहाँ वह विद्रोह भी करता है। दोनों प्रवृत्तियाँ इन्सान के स्वभाव में पाई जाती है, पर विद्रोह की आवाज रचना में खपकर आए तो वह विश्वसनीय होती है, खपकर न आए तो आरोपित होती है, बनावटी हो जाती है।"[27] वास्तव में यही रचना के रचना होने की भी शर्त है, अन्यथा वह नारेबाजी या प्रचार-साहित्य हो जाता है।

अनुभूति की प्रामाणिकता के सन्दर्भ में वे एक जगह लिखते है—"मेरी नजर में उसी रचना में खरापन होगा, जिसके सृजन में लेखक का समूचा सर्जनात्मक व्यक्तिगत यानि उसका संवेदन, उसकी कल्पना, उसका चिन्तन और उसकी दृष्टि सक्रिय होगी। पर जहाँ तक लेखक के सृजन का सवाल है, किसी सीमा तक ही इन अपेक्षाओं की उपयोगिता रहती है क्योंकि मूलत: लेखक का संवेदन ही उसे रास्ता सुझाता है। लेखक का सृजनात्मक व्यक्तित्व इन अपेक्षाओं से नहीं बनता, वह उसके अपने संस्कारों, अनुभवों, चिन्तन, पठन-पाठन और उसकी सूझ से बनता है। हाँ, जिस माहौल में वह जीता है और साँस लेता है, उस माहौल के प्रति वह निश्चिय ही उत्तरोत्तर सचेत हो जाता है।"[28]

उपर्युक्त कथन में हम पाते हैं कि प्रधान तत्त्व संवेदना तथा वह माहौल है जिसमें लेखक जीता है और साँस लेता है तथा गौण तत्त्व के रूप में चिन्तन, पठन-पाठन और उसकी सूझ है। इस अर्थ में दलित साहित्यकारों का यह दावा है कि वे ही आधिकारिक एवं प्रामाणिक अनुभूति की अभिव्यक्ति कर सकते हैं, कुछ सीमा तक औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय यह मानते हैं कि जब तक अपने बारे में लिखे हुए दलितों के साहित्य का पर्याप्त विकास नहीं होता तब तक गैरदलितों द्वारा दलितों के बारे में लिखे गए साहित्य को भले ही दलित साहित्य कहा जाये, लेकिन सच्चा दलित साहित्य वही होगा जो दलितों के बारे में स्वयं दलित लिखेंगे।

जब अपने समुदाय के जीवन के यथार्थ और अनुभवों के बारे में कोई दलित लिखता है, तब उसकी दृष्टि में जो आग, चित्रों में जो आभा और भाषा में जो ऊर्जा होती है, वह गैर-दलितों द्वारा दलितों के बारे में लिखे गये साहित्य में नहीं होती। दलित जीवन के अनुभव के कुछ ऐसे पक्ष होते हैं, जो जाति सापेक्ष होते हैं और केवल उन्हीं के द्वारा अनुभूत किए जा सकते हैं। ऐसे अनुभवों का प्रामाणिक चित्रण कोई गैर दलित लेखक वैसे नहीं कर सकता, जैसे स्त्री-जीवन के अनेक स्त्रियोचित अनुभवों की अभिव्यक्ति के प्रसंग में है।

ज्योतिबा फुले का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि "गुलामी की यातना जो सहता है वही जानता है, और जानता है वही, पूरा सच कह सकता ह।। सचमुच राख ही जानती है, जलने का अनुभव, कोई और नहीं।"[29]

तेजसिंह ने अपने लेख 'हिन्दी उपन्यास : दलित विमर्श का पुराख्यान' में प्रामाणिकता तथा अन्य प्रश्नों पर गम्भीर विमर्श किया है। उनके अनुसार "इधर जब से हिन्दी क्षेत्र में दलित साहित्य की चर्चा प्रारम्भ हुई है, तभी से हिन्दी साहित्य में दलित चेतना या दलित विमर्श के नाम पर गैर दलितों द्वारा शोधकार्य के साथ-साथ काफी संख्या में आलोचनात्मक लेखन होने लगा है। ज्यादातर ऐसा शोध-लेखन दलित साहित्य को दिग्भ्रमित करने के लिए किया जा रहा है। गैर दलित इसी इरादे से हिन्दी साहित्य में दलित चेतना के नाम पर दलित विमर्श कर रहे हैं ताकि दलित साहित्य में उनकी चोर दरवाजे से घुसपैठ हो जाए।"

दलित साहित्य का वैचारिक प्रस्थान बिन्दु अम्बेडकर दर्शन है, जिसको दलित साहित्यकार 'मानवता' के प्रति शपथ के रूप में लेता है जबकि परम्परावादी सवर्णों को यही भय सालता रहता है कि यदि दलितों को भी यथोचित सम्मान दिया जायेगा तो धर्म की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायेगी। उन मानव धर्मशास्त्रों की क्या गति होगी जो उनके अमानवीय शोषण की पैरवी करते हैं? उस वर्ण-व्यवस्था का क्या होगा जिसके फलस्वरूप हिन्दु धर्म (ब्राह्मण धर्म) का अस्तित्व है। दलित साहित्यकार, इसलिए उन सभी लेखकों को नये सिरे से खारिज करता है जो सोच में अम्बेडकर नहीं है। गाँधीजी के दर्शन से प्रभावित लेखकों को वह पूरी तरह अस्वीकार नहीं करता है किन्तु वह यह मानता है कि यह अनुकम्पावश लिखा साहित्य है। यह अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा सामाजिक और सर्वाधिक 'हम भी लिखेंगे' की भावना के दबावों का परिणाम है।

वाल्मीकि जी के अनुसार, "गैरदलित जो भी दलितों के बारे में लिखता है, उसकी प्रामाणिकता इसलिए संदिग्ध होती है कि दलितों के जीवन के बारे में गैर-दलित सिर्फ उतना ही जानते हैं जितना उसका सम्पर्क श्रम से सम्बन्धित होता है। उनके अन्तर्भाव, उनकी सोच, उनकी मान्यताएँ, जीवन मूल्य या उससे जुड़ी हुई अन्य चीजों को गैर दलितों के पास जानने का कोई साधन नहीं है। यदि उन्होंने कोशिश भी की है इन चीजों पर लिखने की तो वो सब सुनी-सुनाई या मनगढन्त है, चूँकि दलितों से उनके सामाजिक रिश्ते सिर्फ उपयोग तक है। इसलिए गैर-दलित दलितों के घरों में होने वाले संघर्षों को तो जानते ही नहीं। यदि ऐसा न होता तो हिन्दी साहित्य में दलितों के चित्रण को लेकर सवाल ही नहीं उठते।"[30]

1.11 सामाजिक रूप से दलित चेतना का विकास

किसी भी समाज में विकास बिना प्रतिरोध के सम्भव नहीं है। स्थापित मूल्य समर्थित व्यवस्था अपने को कायम रखने के लिए यह हर संभव प्रयास करती है और नवचेतना सम्पन्न वर्ग नई मूल्य व्यवस्था के स्थापन के लिए पुरानी मूल्य व्यवस्था का प्रतिरोध करता है इसलिए शंकर गुहा नियोगी ने कहा था कि "ध्वंस और निर्माण की प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती है, बिना पुराना टुटे नए का निर्माण नहीं किया जा सकता।" लेकिन क्या यह प्रतिरोध की चेतना अचानक कहीं आकाश से टपक पड़ती है या जमीन

के गर्भ से अवतरित हो जाती है। चूँकि हमेशा से ही स्थापित मूल्य व्यवस्था के भीतर ही प्रतिरोध करने वाला वर्ग विद्यमान रहता है, अगर हम भारतीय समाज, सत्ता, संस्कृति पर काबिज ब्राह्मण वर्ण हाशिये पर रहे, शूद्र और स्त्री के सम्बन्ध में बात करें तो दोनों वर्ग साहित्य समाज के इतिहास में मौजूद रहे हैं। दोनों का ही सम्बन्ध समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण रहा है और दोनों ही उत्पादन प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। लेकिन दोनों की समाज में स्थिति क्या है? दोनों एक-दूसरे के प्रति सोच और समझ क्या है? होना तो यह चाहिए था कि दोनों उत्पीड़ित समुदाय को एक-दूसरे की मुक्ति के साधनों और प्रक्रियाओं में अपना सकारात्मक सहयोग देते। लेकिन इसे विडम्बना ही मानिए कि ऐसा नहीं हो पाया।

बौद्ध धर्म तत्कालीन समय के वैदिक या कहें कि ब्राह्मण धर्म की कुरीतियों, वर्चस्ववादिता, अन्याय के विरुद्ध पैदा हुआ एक लोकधर्म था। इसे और ठीक प्रकार से समझने के लिए हम रामधारी सिंह 'दिनकर' के कथन को यहाँ उद्धृत कर अपनी बात को आगे बढ़ायेंगे। दिनकर के द्वारा रचित 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक अपनी पुस्तक में कहते हैं—बुद्ध के समय से ही भारत में संस्कृति की दो धाराएँ बहुत ही स्पष्ट रही हैं। एक धारा वह है जो वर्णाश्रम धर्म को अक्षुण्ण रखना चाहती है, जिसका विश्वास वेदों, पुराणों, स्मृतियों और धर्मशास्त्रों में है और धर्म के स्मृति रूपों में श्रद्धा रखती है, मन्दिर, मूर्ति, तीर्थ और व्रत में विश्वास करती है। इस धारा के आचार्य मनु, शंकर तथा उनके कवि कालिदास, जयदेव, विद्यापति और तुलसीदास हैं। दूसरी धारा वह है जो बुद्ध के कमण्डल से निकलकर बौद्ध आचार्यों से होकर सरहपा, नाहपा आदि सिद्धों में पहुँची और उनके कवि कबीर, नायक दादू हैं।

भारतीय इतिहास की छठी शताब्दी ई. पू. को देखा जाए तो ये काल वह था जिसमें भारतीय दर्शन, समाज, संस्कृति और जीवन पद्धति को सीधे प्रभावित किया। इस युग को दार्शनिक चिन्तन के युग के रूप में भी पहचाना जाना चाहिए। इसी युग में बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ था। इसके बारे में बताते हुए भारत की प्रमुख इतिहासकार रोमिला थापर का मानना है कि "भारत में जन्मे किसी भी अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति ने विश्व का बलात् इतना अधिक ध्यान आकृष्ट नहीं किया है, जितना बुद्ध ने किया है। इसका एक कारण यह भी

हो सकता है कि बुद्ध ने अपने समय के तेजी से बदलते समाज का विश्लेषण करने तथा मनुष्य–जाति के लिए एक स्थायी समाज–दर्शन प्रदान करने का अत्यन्त गहन और व्यापक प्रयास किया था। बौद्ध धर्म ने एक वैकल्पिक समाज का भी खाका खड़ा कर दिया था। उसने उस समय अपनी जड़ जमाती श्रेणी बद्ध असमानतावादी विचारधारा और व्यवहारों से भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित समाज को संगठित करने की संभावना खड़ी कर दी थी।"[31]

भारतीय समाज में समाज सुधार का सूत्रपात गौतम बुद्ध ने ही किया था इसलिए रौमिला थापर जैसी महत्त्वपूर्ण और गम्भीर इतिहासकार को यह कहना पड़ा कि उन्होंने नए समाज का एक वैकल्पिक ढाँचा तैयार किया था, किसके लिए तैयार किया था यह पूरी तरह से स्पष्ट है। इसे हम जयशंकर प्रसाद के नाटक चन्द्रगुप्त में आए कथन से और अधिक स्पष्ट करना चाहेंगे। चूँकि जयशंकर प्रसाद के बारे में प्राय: यह माना गया है कि उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से इतिहास के गम्भीर प्रश्नों को साहित्य में पिरोने का कार्य किया है। वे हिन्दू संस्कृति और ब्राह्मण धर्म व्याख्याता है।

बौद्ध दर्शन या धर्म ने दलितों में नई प्रकार की चेतना का संचार किया। हालाँकि इससे उनकी जिन्दगी में कोई बड़ा गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया था लेकिन धीरे–धीरे उनमें कर्मकाण्डों के प्रति मोहभंग अवश्य हुआ था। सर्वप्रथम किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिए विचार का बदलना अनिवार्य होता है।

1.12 आधुनिक परिदृश्य में दलित विमर्श

आज का समकालीन परिदृश्य भारी उथल–पुथल और गम्भीर बहस–मुबाहिसें की प्रक्रिया से गुजर रहा है। राजनीति में मार्क्सवादी सत्ता को पूरी दुनिया से पूँजीवादी सत्ता ने अपदस्थ कर दिया था। वही समाज में नस्ल, जाति, लैंगिक और वर्गीय आधार पर अन्याय और दमन बढ़ा है। मार्क्सवाद ने पूरी दुनिया के सामने एक मानवीय समाज बनाने की प्रक्रिया को शुरू करके आम आदमी की सत्ता को प्रतिष्ठित किया था। उसे उच्च वर्ग ने ढहा दिया और बेहतर समाज बनाने की प्रक्रिया अवरुद्ध हो गई है। आम आदमी, श्रम करने वाले इंसान के हाथों में ताकत आते–आते चली गई। यह एक सपने का अन्त था। यह उस हकीकत का अन्त था जो अभी एक रूप लेने में लगी थी। इससे न सिर्फ आम

आदमी के सपने का अन्त हुआ बल्कि पहली बार दुनिया के पैमाने पर बेहतर समाज के निर्माण की दिशा भी अवरुद्ध हुई। यह श्रम करने वालों के लिए बहुत बड़ी असफलता थी तो परजीवी वर्ग के लिए एक बड़ी विजय। यह वैचारिक स्तर पर भी मार्क्सवाद का ढहना ऐतिहासिक–सामाजिक विचार की भी पराजय थी।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में जहाँ समाज प्रमुख था, मनुष्य का विकास प्रमुख था उसके स्थान पर अब व्यक्ति प्रमुख हो गया और यह व्यक्ति आम इन्सान नहीं था बल्कि यह उच्चवर्गीय व्यक्ति था जो पूरी उत्पादन प्रक्रिया और मुनाफे का अकेला स्वामी था। पूँजीवाद ने श्रम के स्थान पर पूँजी की सत्ता को कायम किया। सामाजिक हितों के स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थ हावी हो गए। दुनिया में न्याय की जगह दमन–शोषण का सिलसिला शुरू हुआ। अब पूरी दुनिया के सामने विश्वग्राम की परिकल्पना पेश की गई। नई तकनीकों, अन्वेषणों, खोजों का इस्तेमाल जहाँ समाज को बेहतर और इन्सान को सभ्य व मानवीय बनाने के लिए होना था वहाँ इसी खुली अर्थव्यवस्था वाली विश्वग्रामीय अवधारणा ने उसे स्वार्थी बना दिया। यह नए सत्ता विमर्श की शुरुआत थी।

इस सत्ता विमर्श की शुरुआत में सबसे पहले दुनिया को बेहतर बनाने वाली सैद्धान्तिकी पर ही हमले हुए। विचारधारा और इतिहास के अन्त के नाम पर परिवर्तन विचारधारा और दमन के खिलाफ, मुक्ति के संघर्षों के इतिहास को ही भुला देने की उद्घोषणाएँ की जाने लगीं। दूसरी तरफ विश्वग्राम की लोक लुभावन अवधारणा ने अन्याय की नई किस्मों, सत्ता संस्थानों को जन्म दिया।

बदलते हुए इस वैश्विक परिदृश्य का प्रभाव भारत में दलित आदिवासी, स्त्री और श्रमिक समुदाय पर सबसे अधिक पड़ता हुआ दिखाई देता है।

वैश्विक शक्तियों के दबाव एवं अपने वर्गीय आर्थिक हितों का ध्यान रखते हुए ऐसी नीतियों का निर्धारण किया गया जिससे समाज के दबे–कुचले समुदाय की हालत जोकि पहले से ही बदतर थी वह और भी ज्यादा बदतर होने लगी। दलित समुदाय सवर्ण समाज के द्वारा सदियों से दमन का शिकार होता आ रहा था, उसे अब आधुनिक समय में मुक्ति मिलने वाली नहीं दिखाई देती। डॉ. अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ एक साथ आन्दोलन चलाने की जो बात की थी वह आज और भी ज्यादा

प्रासंगिक होकर सामने आई। जिस धर्म को सामाजिक विकास में बाधा मानते हुए कार्ल मार्क्स ने उसे अफीम कहा था उसी धर्म को डॉ. अम्बेडकर ने भी दलित समुदाय के लिए दमनकारी माना। उन्होंने न केवल इसे दमनकारी माना बल्कि हिन्दू एवं ब्राह्मण धर्म को भारत के लिए अप्रासंगिक सिद्ध किया। वैश्विक स्तर पर बेहतर समाज की परिकल्पना मार्क्सवाद ने सामने रखी, वही कार्य भारत के स्तर पर अम्बेडकर ने किया।

भारत में मार्क्सवाद की रूपरेखा उसी रूप में नहीं रखी जा सकती थी जैसी यूरोप में। चूँकि यूरोप में भारत की तरह जाति प्रथा नहीं थी वहाँ वर्ग विद्यमान थे। यानी समाज का आधार वर्ग था, समाज वर्गों में बँटा था जबकि भारतीय समाज जातियों में बँटा है।

दलित मुक्ति का प्रश्न भारतीय सामाजिक परिवर्तन की दिशा और प्रक्रिया के लिए अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। भारत में समाज परिवर्तन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाली शक्तियों ने दलित मुक्ति के प्रश्न को अपने एजेण्डे में बहुत बाद में शामिल किया। इस पर बहुत विस्तार से बात की जा सकती है कि ऐसा क्यों हुआ था लेकिन यहाँ उस पर बात करना हमारे इस विषय से सम्बन्धित कार्य नहीं है और न ही यहाँ उसका उचित सन्दर्भ ही है। पर हम यह कहना चाहते हैं कि जाति का सवाल भारतीय समाज को बदलने की चाह रखने वालों की दृष्टि में एक अहम सवाल नहीं बन पाया। वर्गहीन समाज की परिकल्पना की तरफ ही उनका ध्यान गया।

भारत के सन्दर्भ में जाति उन्हें उतनी मुख्य नहीं लगती थी जितना वर्गीय शोषण और साम्प्रदायिक उन्माद जबकि आजादी के आन्दोलन के समय से ही डॉ. अम्बेडकर ने जाति मुक्ति के प्रयास तेज कर दिये।

दलित वैचारिकी सामाजिक परिवर्तन के कार्यभारों, सवालों और मुद्दों पर ही अपनी समझ नहीं रखती बल्कि वह आर्थिक प्रश्नों पर भी अपने विचार व्यक्त करती है। जाति मुक्त समाज के साथ-साथ वर्गविहीन समाज का सपना भी दलित वैचारिकी में शामिल है। डॉ. अम्बेडकर इस बारे में स्पष्ट कहते हैं कि "जब तक वर्गविहीन समाज की स्थापना नहीं हो जाती, तब तक स्वतन्त्रता का महत्त्व नहीं है।"[32]

सन्दर्भ

1. हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग — डॉ. कुसुम लता मेघवाल, पृ. 1
2. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा — माता प्रसाद, पृ. 3 (पर उद्धृत)
3. राख ही जानती है जलने का अनुभव (साक्षात्कार) डॉ. मैनेजर पाण्डेय, दलित चेतना : सोच, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 3
4. दलित साहित्य : एक परिचय (लेख) प्रेम कुमार मणि, वर्तमान साहित्य, मासिक, गाजियाबाद, जनवरी (1993), पृ. 48
5. दलित साहित्य की परिभाषा : समग्रता और पूर्णता की ओर (लेख) — डॉ. धर्मवीर, दलित साहित्य 1999 सं. जयप्रकाश कर्दम, पृ. 39
6. दलित कविता का अर्थ (लेख) : कंवल भारती, दलित साहित्य : चिन्तन के विविध आयाम, सं. डॉ. एन. सिंह, पृ. 97
7. हिन्दी साहित्य का बासीपन दूर कर रहा है दलित साहित्य (साक्षात्कार) डॉ. एन. सिंह, सुमनलिपि, मासिक, बम्बई, अक्टूबर-नवम्बर, 1993, पृ. 35
8. साहित्य में दलित चेतना (लेख) डॉ. दयानन्द बटोही, पश्यन्ती, त्रैमासिक, अप्रैल-जून, 1998, पृ. 129
9. हिन्दी दलित कविता : नये सन्दर्भ — डॉ. टी.पी. राही, पृ. 14
10. दलित साहित्य — माता प्रसाद, पृ. 3
11. दलित साहित्य : क्रान्ति व विद्रोह का शाश्वत साहित्य (लेख) डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, शिखर की ओर : सं. - डॉ. एन. सिंह, पृ. 301
12. दलित साहित्य और सामाजिक सन्दर्भ (लेख) ओमप्रकाश वाल्मीकि, शिखर की ओर, सं. डॉ. एन. सिंह, पृ. 406
13. सुमनलिपि, मासिक, बम्बई, फरवरी-मार्च, 1994, पृ. 24
14. भारत में दलित लेखकों की संघर्ष यात्रा (लेख) : मोहनदास नैमिशराय, भीम चेतना, स्मारिका, 14 अप्रैल, 1994, प्र.सं., तारा परमार, उज्जैन, पृ. 23
15. वक्त की बात : सम्पादकीय : डॉ. विमलकीर्ति, अगुत्तर, त्रैमासिक, नागपुर, अप्रैल-जून, 1994, पृ.5
16. हिन्दी में दलित साहित्य के बदलते तेवर (लेख) : रूपचन्द गौतम, समकालीन भारतीय साहित्य, त्रैमासिक, दिल्ली, जनवरी-मार्च, 1995, पृ. 194
17. सन्त कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेश, सं. डॉ. एन. सिंह (वाणी खण्ड), पृ. 30 साखी सं. 19
18. वही, पृ. 28 साखी सं. 86
19. वही, पृ. 29, साखी सं. 89
20. वही, पृ. 33 साखी सं. 155
21. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा : माता प्रसाद, पृ. 36

22. दलित सन्दर्भ : संस्कृति एवं साहित्य की सबल अभिव्यक्ति (लेख) डॉ. प्रेमशंकर, प्रकाशक, त्रैमासिक, मंसूरी, जनवरी-मार्च, 1997 वाल्यूम-II, नं. 1, पृ. 206
23. सन्त कवि रैदास, मूल्यांकन और प्रदेश : डॉ. एन. सिंह, साखी संख्या 109, पृ. 30
24. वही, साखी संख्या 107, पृ. 33
25. वही, साखी संख्या, 86-89
26. दलित स्त्री तक से अब तक (लेख) — डॉ. राखी चौहान, अपेक्षा, संयुक्तांक, जनवरी-जून, 2014, पृ. 134
27. भीष्म साहनी : कसौटी, अंक 1, पृ. 13
28. वही।
29. प्रो. मैनेजर पाण्डेय : दलित चेतना साहित्य, नवलेखन प्रकाशन, पृ. 4
30. कल के लिए, दिसम्बर, 1998, पृ. 18
31. प्राचीन भारत — रोमिला थापर का लेख, संस्करण 2002, पृ. 35
32. बाबा साहेब ने कहा था, सम्पादक : मोहनदास नैमिशराय, ए. आर. अकेला, पृ. 47

❑❑❑

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

द्वितीय अध्याय

समकालीन दलित आत्मकथाएँ

2.1 भूमिका

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में हिन्दी में दलित विमर्श का उदय होता है। दलित चेतना और संवेदना हिन्दी साहित्य में बहुत पुरानी है। मगर एक आन्दोलन के रूप में दलित साहित्य सिर्फ ढाई दशक पुराना है। दलित लेखन के प्रारम्भ में दलित आत्मकथाएँ सर्वाधिक चर्चित रही हैं। आत्मकथा में व्यक्ति के साथ समाज व परिवेश को भी समेटने की प्रवृत्ति होती है। वर्तमान में अतीतकी अनेक स्मृतियों का समावेश इसमें होता है। इस अकाल्पनिक विधा में जीवन के खट्टे-मिट्ठे अनुभवों का इतिहास छिपा रहता है।

दलित आत्मकथाओं में उत्पीड़न की अनन्त गाथाएँ भरी पड़ी हैं। विद्रोह और आक्रोश का स्वर व्यवस्था के प्रति देख सकते हैं। स्वाभिमान को जगाने के साथ सामाजिक विसंगतियों को उभारना भी दलित आत्मकथा का उद्देश्य है। दलित जीवन की जय-पराजय, आशा-आशंकाएँ, संघर्ष, संत्रास तथा घुटन इसके केन्द्र में है। इसमें कल्पना की बजाय यथार्थ, स्वप्न की बजाए आकांक्षा, महामानव के बजाए उत्पीड़ित मनुष्य को प्रथमिक मानने वाले अम्बेडकरवादी आत्मवृत्त स्वाभाविक रूप से शास्त्रीय भाषा के स्थान पर जिन्दगी की भाषा का पक्ष लेते हैं। दलित लेखन की सबसे चर्चित विधा आत्मवृत्त है। इसकी शुरुआत डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आत्मकथ्य 'मेरा जीवन' से मानी जा सकती है। यह आत्मकथ्य 'जनता' पत्र के 6 नवम्बर, 1954 अंक में छपा था। इसमें डॉ. अम्बेडकर ने 'मेरा जीवन' नाम से एक सम्पूर्ण आत्मवृत्त लिखने की योजना का जिक्र किया था। उन्हीं के शब्दों में, "सभी स्मृतियों को समेटकर एक आत्मकथा लिखने का मेरा विचार है। समग्र आत्मकथा न लिखूँ तो कम-से-कम 'मेरा बचपन' नाम से एक

पुस्तक जरूर लिखूँगा।"[1] लेकिन सन् 1956 में डॉ. अम्बेडकर की मृत्यु हो जाने के कारण आत्मकथा लिखने की उनकी योजना साकार न हो पाई। दलित आत्मकथाएँ दलितों की जिन्दगी के प्रामाणिक दस्तावेज हैं। वे दलितों पर किए गए दीर्घकालीन अन्याय की साक्षी भी हैं। इन आत्मवृत्तों ने साहित्य की प्रकृति, उसका तेवर, उसका मिजाज बदलने का काम किया है। दलितों की जिन्दगी के सभी आयाम सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक इन आत्मकथाओं में देखे जा सकते हैं। साथ ही दलित जातियों के भीतर मौजूद जातिवाद भी पहचाना जा सकता है, जो निम्न आत्मकथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

2.2 अपने–अपने पिंजरे : मोहनदास नैमिशराय

मोहदनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' एक संवेदनशील युवक की आत्मकथा है जिसका जन्म उत्तर प्रदेश की उपेक्षित चमार जाति में हुआ। उन्होंने अपनी पढ़ाई प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर ही पूरी की तथा एक प्रतिबद्धता के तहत प्राप्त सरकारी नौकरी को छोड़कर समाज सेवा के लिए आगे आये तथा समाज की उन्नति हेतु, उन पर होने वाले अन्यायों को स्वर देने हेतु, उन्हें संगठित कर सामाजिक न्याय दिलाने के लिए जीवन पर्यन्त कार्यरत रहने का संकल्प लिया। मोहनदास नैमिशराय भी अन्य पढ़े–लिखे दलितों की तरह सरकारी नौकरी प्राप्त कर मध्यमवर्गीय जीवन जी सकते थे। परन्तु उन्होंने जो संकल्प लिया उसके साथ अन्त तक खड़े रहे। आत्मकथा के पहले भाग की शुरुआत मेरठ शहर के वर्णन से होती है जिसमें मेरठ शहर का इतिहास और संस्कृति का वर्णन लेखक ने प्रस्तुत किया है। जन्म के कुछ समय बाद ही माँ गुजर जाती है। सौतेली माँ आने से नैमिशराय के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इसका कारण था संयुक्त परिवार तथा ताऊ और ताई इन दोनों के प्रति स्नेह और वात्सल्य। मोहनदास का इस समय का जीवन इस देश के शहरों में जीने वाले निम्न–मध्यवर्ग की तरह है। यहाँ धन का अभाव है, दरिद्रता है पर जाति यहाँ बहुत बड़ी बाधा बनकर नहीं खड़ी होती है। इसके साथ ही यह भी सही है कि इस बस्ती से बाहर उनकी कोई स्वतन्त्र पहचान नहीं होती। वहाँ 'दलित' है, इसका पता चलने पर उपेक्षा और अपमान है ही। इस बस्ती में दलितों द्वारा भैंस और गाय का मांस खाना आम बात थी। इस बस्ती में दलितों की विभिन्न जातियों के परिवार हैं तथा इसके दरिद्रावस्था में जीने वाले

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

श्रमिक मुसलमान परिवार भी हैं। इस बस्ती के दर्जनों चरित्रों को उन्होंने पूरी तटस्थता के साथ उभारा है। एक नूर मोहम्मद कसाई जिसकी नजर में "जानवर और औरतों में इनके लिए कोई फर्क न था। एक को काटते थे, दूसरे को पीटते थे।"[2] सवर्णों के सम्बन्ध वे एक स्थान पर लिखते हैं "वे अपनी आदतों के गुलाम थे और हम उनके गुलाम।"[3]

इस बस्ती का बड़ा ही यथार्थ चित्रण इस आत्मकथा की उपलब्धि है। यह बस्ती प्रातिनिधिक बन जाती है। इस देश के किसी नगर, महानगर, शहर या कस्बे की ऐसी बस्ती जहाँ उपेक्षित जाति के श्रमिक छोटे-छोटे मकानों में बड़ी मुश्किल से जीते हैं। इनमें से अधिकांश दलित जाति के हैं।

नेमिशराय जी का जन्म सन् 1948 में हुआ। आयु के 7-8वें वर्ष में (1956) उन्होंने डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जी का नाम सुना। 1995 में उनकी यह आत्मकथा प्रकाशित होती है। मतलब आयु के 46वें वर्ष में। कहा जाए कि प्रौढ़ावस्था में उन्होंने यह आत्मकथा लिखी है। परिणामस्वरूप इस आत्मकथा में गंभीरता है, आत्मपरीक्षण की वृत्ति है तथा घटनाओं और व्यक्तियों को उनके सन्दर्भों के साथ समझ लेने की परिपक्व दृष्टि भी। इस आत्मकथा की एक विशेषता यह है कि इसमें दलित जीवन के साथ गरीब मुसलमानों के जीवन का भी चित्रण हुआ है। विशेषकर साम्प्रदायिक दंगों में गरीबों की, श्रमिकों की जो भयानक अवस्था होती है उसका सूक्ष्म रेखांकन इस आत्मकथा की उपलब्धि है। विशेषत: कर्फ्यू घोषित हो जाने के बाद श्रमिक और गरीबों को किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है इसका यथार्थ चित्रण किया गया है। कर्फ्यू का प्रसंग भी इस प्रकार है—

"तैन्नै बतलाया नईं, आज इस्कूल में पढ़ाई क्यों नहीं हुई?"

मैंने कहा—"सब मास्टर तो आज मुसलमानों को बस मारने-काटने की बात कर रहे थे?"

"क्या!" चमड़ा काटते हुए बा के हाथ की राँपी चलते-चलते रुक गई थी।

अब मेरा सवाल था—"बा, ये मुसलमानों को क्यों मारते हैं?"

"क्योंकि वे हिन्दू हैं?" बा का उत्तर था।

"और हम कौन हैं?" मेरा अगला सवाल था।

"हम चमार हैं!" बा बोला।

"पर क्या चमार हिन्दू नहीं होते?" मैंने फिर पूछा था।

बा ने जवाब देने से पूर्व पलभर मेरी ओर देखा था, फिर कहा—"चमार चमार होते हैं, न हिन्दू न मुसलमान!"[4]

अनपढ़ परन्तु अनुभवी बा (लेखक के ताऊ) के इस जवाब से बालक नैमिशराय के मन में अनेक सवाल पैदा होते हैं। उन सवालों में एक सवाल यह भी था अगर हम न हिन्दू हैं और न मुसलमान तो फिर हम हैं क्या? चमार कौन होते हैं? इस सवाल के जवाब की खोज में लेखक बाद के जीवन में संघर्षमय मुद्रा धारण करने लगता है। यहीं से जाति को लेकर उसके मन में अनेक सवाल उठने लगते हैं। "आदमी जब पैदा होता है, उसकी जाति लिखाई जाती है और मरने पर भी। यही जाति पहले सरकारी रजिस्टर में दर्ज होती है या लोगों के दिलों में। इनका सबका विश्लेषण करने की न समझ थी, न उम्र।"[5]

इसी समय नैमिशराय के परिवार में एक और घटना घटित होती है। इनके बड़े भाई नपुंसक हैं—इसका पता परिवारवालों को उनके विवाह के बाद लग जाता है। उस बस्ती की जीवन शैली के अनुसार वह नपुंसक है कि नहीं इसकी जाँच-पड़ताल हेतु डॉक्टर या वैद्य के पास जाने की अपेक्षा उसे वेश्या के यहाँ भेज दिया जाता है और इसकी चर्चा भी घर पर खुलकर की जाती है। इस कच्ची उम्र में नैमिशराय 'रंडी' का अर्थ जानने लगते हैं और एक बार तो वे अपने बड़े भाई को ढूँढ़ने के लिए रंडी की कोठी पर भी जाते हैं। नपुंसक भाई की पत्नी का भी इसमें चित्रण बड़े ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। अन्त में उसकी भाभी मैके चली जाती है। पति नपुंसक हैं—यह मालूम होते हुए भी वह न कभी गलत रास्ते पर गयी और न उसने कभी अपना गुस्सा परिवार के अन्य सदस्यों पर उतारा। इस छोटे देवर के प्रति उसके मन में अपार ममता थी। सास-बहू के सम्बन्ध तो माँ-बेटी की तरह थे। ऐसा एक स्थान पर नैमिशराय लिखते हैं। इस स्त्री के प्रति पाठकों के मन में आदर की भावना पैदा हो जाती है। अन्ततः उसके मैके वाले उसे वापस ले जाते हैं। बाद में उसका दूसरा विवाह करा देते हैं। बावजूद इसके इस स्त्री के मन में इस परिवार के प्रति कहीं पर भी कोई कटु भावना नहीं है। 12-15 वर्ष की अवस्था से ही नैमिशराय जी

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

के मन में भिन्न लिंगी के प्रति आकर्षण शुरू हो जाता है, जो बहुत स्वाभाविक है। इस बस्ती में हम उम्र के लड़के-लड़कियों के बीच बातचीत एक स्वाभाविक बात मानी जाती थी। इसी कारण आरम्भ में उसके मन में सुभद्रा के प्रति आकर्षण था। बाद में जाकर रसवन्ती नामक लड़की के प्रति। ये लड़कियाँ भी जाति से दलित और श्रमिक परिवार से है। परन्तु यहाँ भी श्रेष्ठ-कनिष्ठता की भावना है ही। रसवन्ती का विवाह कहीं और जगह तय हो जाता है हालाँकि इन दोनों के सम्बन्ध काफी गहरे हो रहे थे। अचानक उसी समय रसवंती उसके जीवन से दूर निकल जाती है जिसके कारण वह खुद को बेहद अकेला महसूस करने लगता है। उसके प्रति सहज स्नेह जतानेवाली, ममत्व और वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति भाभी भी अपने मैके हमेशा के लिए चली गई थी। अब रसवंती को भी परिस्थितियों ने छीन लिया। भाई अपनी-अपनी पढ़ाई में लगे थे। इस समय की अपनी मानसिकता का चित्रण लेखक ने इन शब्दों में किया है—"मैं अपने आप से बिछुड़ता जा रहा था। अपना ही शहर बेगाना-सा लगने लगा, मेरे लिए वह शहर जैसे पिंजरा बन गया था।"[6]

अन्ततः वह मुम्बई के लिए पलायन कर जाता है। लेखक ने मुम्बई में गुजरे समय एवं वहाँ की स्थिति का चित्रण भी अपनी आत्मकथा में किया है। "मुम्बई में भूख थी, गरीबी थी और बेरोजगारी थी, लेकिन आदमी-आदमी के बीच जातियों की दीवारें न थीं। कभी किसी ने जाति न पूछी थी, न ही धर्म।"[7] मुम्बई में ही उसके चाचाजी रहते थे। उनको रोज नई-नई जगह पर ले जाते थे। एक बार वे एक ईसाई परिवार में ले गए, जो शराब बेचने का काम करते थे। सूजी नामक ईसाई लड़की लेखक की ओर आकर्षित हो जाती है।

जब लेखक फिर से मेरठ वापस निकलने लगता है तब वह बहुत उदास हो जाता है। वह कहता है—"इधर हम पिंजरे में बंद होने की माफिक फड़फड़ाता है। यह पिंजरा तोड़कर किधर जाये?"[8] सूजी अपने पिंजरे में बंद, आत्मकथाकार अपने एक पिंजरे को तोड़कर बाहर आया है तो रसवंती दूसरे पिंजरे में बंद कर दी गई है। इसमें लेखक सचमुच उस पिंजरे को तोड़कर सदा के लिए आजाद हो सका है? नहीं, उसे फिर मेरठ वापस जाना पड़ता है, अपने पुराने पिंजरे में। यहाँ तक विवरण आत्मकथा के भाग-1 में उल्लेखित है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

2.3 अपने–अपने पिंजरे (भाग–2) : मोहनदास नैमिशराय

ठीक पाँच साल बाद सन् 2000 में आत्मकथा का दूसरा भाग प्रकाशित होता है। इसमें लेखक अकेलेपन के कारण तथा साथ ही मुम्बई के आकर्षण के कारण वह मुम्बई भाग जाता है। वहाँ जाने के कुछ समय पश्चात् घरवालों के द्वारा लेखक को बुलाने के लिए पत्र लिखे जाते हैं। इसी आग्रह के साथ वह वापस मेरठ के लिए आ जाता है लेकिन "शरीर मेरठ में था, और मन मुम्बई में।"[9] मेरठ में वही अपनी बस्ती और ढेर सारे हम लोगों के दु:ख। यहाँ आने के बाद लेखक की आगे की पढ़ाई शुरू होती है। मेरठ के ही एक कॉलेज में एडमीशन ले लेता है। सन् 1970 के दशक में उच्च शिक्षा संस्थानों में दलितों के प्रति किस प्रकार के उद्‌गार निकाले जाते थे, वे वहाँ देखने को मिलते हैं।

इस बीच लेखक को एक अलग प्रकार के अनुभव का एहसास होता है, जहाँ पर सवर्णों द्वारा दलितों पर किए गए अत्याचार तथा अनेक प्रकार अपमानित करने के तरीकों द्वारा लेखक का मन उद्वेलित हो जाता है। इस संवेदनशील युवक को यह समझ में नहीं आता था कि हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया जा रहा है, सवर्ण जाति के लोग बेईमानी से जी रहे हैं। "हम गरीब जरूर थे, पर हमने न देश बेचा था, न अपना जमीर। न हम डंडीमार थे और न ही सूदखोर!"[10] कॉलेज का विद्यार्थी होने के नाते जाति द्वेष का एहसास उसे अधिक हो रहा था। उसे लगता था कि "हिन्दू समाज में आदमी की कीमत उसकी जात से ही आंकी जाती है। हमें विशेष तौर पर चमार–चूहड़े नाम से सम्बोधित किया जाता है पर उनके सम्बोधन के तरीके और घृणास्पद हुआ करते थे।"[11]

बी.पी. मौर्य को सुनते समय लेखक को डॉ. बाबा साहब का एक वाक्य याद आया है, 'गुलामों को गुलामी का एहसास करा दो वे विद्रोह कर बैठेंगे।' बी.पी. मौर्य दलितों को जगाने का काम करते हैं लेकिन लोग अपनी परम्पराओं के बन्धन को तोड़ना नहीं चाहते हैं। "दलितों में कुलदेवता और गौत्र देवता उभरने लगे थे। वे अपने बाप–दादाओं की छोड़ी हुई लकीरें पीटने में लगे थे। उस लकीर को मिटाकर नई लकीर खींचने का साहस बहुत कम लोगों में था।"[12] इस उदाहरण से स्पष्ट है कि नैमिशराय दलित प्रश्न की ओर कितनी तटस्थता और निर्ममता से देखते हैं।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

इसी समय वे होमगार्ड का प्रशिक्षण हेतु पहली बार लखनऊ जाते हैं। दलित दस्तकार का जो भयंकर आर्थिक शोषण हो रहा था उसे वे न केवल देख रहे थे अपितु तीव्रता के साथ महसूस भी कर रहे थे। "दलित जाति के दस्तकार बड़ी लगन और मेहनत से फैंसी (सजावटी) चप्पल, सैण्डल बनाया करते थे। बाजार में इनकी खूब माँग थी। इन्हीं को बेचकर न जाने कितने लाला बनिए करोड़पति बन गए। पर दस्तकारों में उस समय लखपति भी कोई न बन पाया।"[13] एक तरफ वे शोषण को देख रहे थे तो दूसरी तरफ दलितों के मध्य जातीय ऊँच-नीच की वृत्ति से परेशान थे। उन्हें लगता था कि ये सभी जातियाँ एक होकर अन्याय का विरोध करें लेकिन स्थिति कुछ और थी। "दलितों के भीतर की जाति तथा उपजातियों की अनगिनत सुरंगे थी, जो कभी-कभी दलित अस्मिता और पहचान को बाँटती तथा तोड़ती थीं। हालाँकि एक सुरंग से दूसरी सुरंग में जाने के रास्ते बन्द थे। जातियों की रचना प्रक्रिया में उलझाव ही अधिक थे।"[14] इस जातीय ऊँच-नीच से व्यथित लेखक ने यहाँ स्पष्ट किया है कि "उत्तर प्रदेश में चमार, रविदास, जैसवार, अन्तवैदी, कुरील, धुसिया, जाटव, दोहरे, अहरवार, गुलिया, रैदासी, संखवार—ये सभी एक जाति परिवार की विभिन्न शाखाएँ थीं। आजादी से पहले और बाद में भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इन लोगों को 'जाटव' नाम से संगठित किया था। अपने को क्षत्रिय वंश से जोड़कर कुछ अपने नाम के सामने 'सिंह' लगाने लगे। इनमें से कुछ अपने नाम के आगे पिप्पल, कर्दम, केल, खेल, निम, पिपरिया लिखने लगे।"[15] बावजूद इसके "दलितों में ही 'जाटव' और 'वाल्मीकि' जातियों के बीच संवाद का अभाव तो था ही। आपस में घृणा और तनाव का वातावरण भी रहता था।"[16]

इन दोनों समुदायों के व्यवसाय, खान-पान, रहन-सहन में अन्तर है। एक सुअर खाते हैं दूसरे सुअर देखना भी पसन्द नहीं करते। वाल्मीकि समाज के लोगों की आर्थिक स्थिति कमजोर तथा जाटव की माली हालत लगभग ठीक-ठाक थी। इस आत्मकथा में चमार जाति के बारे में उनमें स्थित उपजातियों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसीलिए यह आत्मकथा एक सामाजिक दस्तावेज के रूप में पहचानी जाती है।

मोहनदास नैमिशराय की रुचि पत्रकारिता में रही, जिसकी वे 'समता शक्ति' साप्ताहिक के माध्यम से शुरुआत करते हैं। लेकिन आर्थिक परेशानी की वजह से वे यह कार्य नहीं कर पाते हैं लेकिन कुछ समय बाद एम्लायमेंट एक्सचेंज में बाबू के रूप में

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

नियुक्त हो जाते हैं। इस समय के दौरान प्राप्त अनुभवों को भी वे संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत करते हैं जिसमें एक ऐसे युवक की तस्वीर सामने आती है जो चरित्र सम्पन्न है, ईमानदार है। यहाँ रिश्वत के अनेक अवसर हैं परन्तु इन सबसे वह दूर रहता है। यहाँ भी उसे उसके दलित होने का एहसास बार-बार करा दिया जाता है। उसे लगता है कि "हम जातियों की विषमता को तोड़ नहीं पाए, बल्कि अपनी जाति के बीच अपने आपको मजबूत और सुरक्षित समझने लगे हैं।"[17] इन्हीं दिनों लेखक को फिल्म देखने का शौक हो जाता है। ऐसी ही किसी फिल्म को वे देखने गए। टिकट नहीं मिला, पर एक उच्च मध्यवर्ग स्त्री उन्हें थिएटर में ले जाती है और बाद में अपने आलीशान घर ले जाकर इन्हें भोगती है। इनके जीवन में संभोग का यह पहला अनुभव था। "वैसे भी किसी औरत के साथ सहवास का यह पहला अवसर था।"[18] इस प्रसंग का आत्मकथा में कोई औचित्य नहीं है। इस समय के दौरान लेखक अनेक नौकरियों को छोड़ता चला आता तथा अन्त में वामसेफ के सम्पर्क में आ जाता है। उन्हें लगा कि अब उन्हें उनकी इच्छानुसार काम मिला है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़े रहने की उनकी इच्छा थी उनके अनुसार यह कार्य था। यहीं पर उनका सम्पर्क कांशीराम और मायावती से हो जाता है। नेताओं, कार्यकर्त्ताओं तथा सवर्णों को नजदीक से देखने का मौका उन्हें यहाँ मिल जाता है। जब जाकर उनको इस गन्दी राजनीति का अनुभव होता है। इसके बाद दलित आन्दोलन अब उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग-सा बन जाता है।

दो भागों में विभक्त यह आत्मकथा वास्तव में उत्तर भारत के दलित आन्दोलन को संक्षेप में प्रस्तुत करती है तथा इस आत्मकथा में निम्न मध्यवर्गीय दलित जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस आत्मकथा की उपलब्धि यह है कि यहाँ दलितों की अंधश्रद्धा पर, लकीर के फकीर बनने की उनकी वृत्ति पर तथा उपजातियों में बँटकर जीने की उनकी वृत्ति पर खरी-खरी टिप्पणी की गई है। यह आत्मकथा एक ओर सवर्णों को दलितों की वास्तविकता से परिचय करा देती है तो दूसरी ओर दलितों को सारे मतभेद भूलकर विषम समाज के खिलाफ संगठित होने हेतु प्रेरित करती है। यह आत्मकथा एक समय का सामाजिक दस्तावेज है और उसी तरह एक संवेदनशील भारतीय व्यक्ति की इस विषम समाज रचना के प्रति छटपटाहट भी है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

2.4 जूठन : ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित आत्मकथा 'जूठन' का पहला संस्करण 1997 में तथा पहली आवृत्ति 1999 में निकलती है। हिन्दी साहित्य के दलित आत्मकथाकारों में ओकप्रकाश वाल्मीकि का प्रमुख स्थान है। 'जूठन' आत्मकथा को जितनी प्रशंसा और प्रतिष्ठा साहित्य के क्षेत्र में मिली उतनी अन्य आत्मकथाओं को नहीं। जूठन आत्मकथा दलितों तथा पिछड़ी जातियों का सशक्त दस्तावेज है। आत्मकथाकार जब समाज में व्याप्त विषमताओं के द्वारा प्रताड़ित व अपमानित हो जाता है तब उसकी अभिव्यक्ति किसी-न-किसी रूप में जरूर होती है। यह आत्मकथा भी इस बात का अपवाद नहीं है। 'जूठन' आत्मकथा में दलित-जीवन की आत्मपीड़ा का दंश बार-बार मुखरित हुआ है। जूठन को पढ़ते समय सांसे थम जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है, दिमाग की नसें तन जाती है तथा इसमें वर्णित वेदना हमारे अन्तर्मन को झकझोरती है। दहकते अंगारों में झोंक देना, लोहे के गर्म सलाखों से दागना, जिस्म को धीरे-धीरे आरी से रेतना या शेल से बदल को बींधना या फिर नदी-नाले, कुए तालाब में डुबो-डुबोकर मारने में जिस तरह की पीड़ा का एहसास होगा उसी का नाम है 'जूठन'। हिन्दू धर्म में वर्ण-व्यवस्था द्वारा दिए हुए घाव और निर्ममता का 'जूठन' सबूत है। अनेक दर्दभरी पीड़ाओं को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भोगा तथा उनके ताप में तपकर और खुद निचौड़कर ही दलित साहित्य का सृजन किया है।

अत: आत्माभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम दलित आत्मकथाएँ ही हो सकती हैं। दलित आत्मकथाएँ मनोरंजन, शाब्दिक आडम्बर, भौतिक सुख प्राप्ति से अनुप्रेरित नहीं है, बल्कि इसमें भारतीय समाज की सच्चाई, हिन्दू वर्ण-व्यवस्था की सडान्ध का स्वतन्त्र वर्णन इसमें विवेचित है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' ने हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था की परतों को जन मानस के सामने खोलकर रख दिया है। भारतीय समाज, संस्कृति तथा शिक्षा व शिक्षक की विकृत मानसिकता को परत-दर-परत प्याज के छिलके की तरह खोल दिया है। आजादी के नशे में चूर, जश्न मनाने वालों के लिए 'जूठन' से अच्छा 'तोहफा' और क्या हो सकता है?

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

गाँधी के बारे में वाल्मीकि लिखते हैं, "अम्बेडकर को पढ़ लेने के बाद यह बात समझ में आ गयी थी कि गाँधी ने 'हरिजन' नाम देकर अछूतों को राष्ट्रीय धारा में नहीं जोड़ा, बल्कि हिन्दुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाया। उनके हितों की रक्षा की।"[19]

जूठन पूरी शिक्षा पद्धति और शिक्षकों की घिनौनी मानसिकता को उजागर करती है। गुरु शिष्य की जो पवित्र छवि हमें दी गई है या जिस छवि का निर्माण किया गया है, वह बाहर से देखने पर बहुत सुहावनी, निर्दोष और प्रशंसनीय लग सकती है लेकिन गुरु शिष्य के इस पवित्र रिश्ते को वही जानता है, जो इन गुरुओं के पास से गुजरा हो। इतिहास इसका कोई आँकड़ा नहीं दे सकता कि अब तक कितने एकलव्यो का अंगूठा काटा गया होगा।

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा था, वह अभी मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ-बहन की गालियाँ देते थे। सुन्दर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे बाहितापन करते थे।"[20] चौथी कक्षा के छात्र ओमप्रकाश को हेडमास्टर पैतृक धन्धे का एहसास कराता है। पढ़ने-पढ़ाने की बजाए उसे स्कूल का कमरा, बरामदा और मैदान में झाड़ू लगाने का आदेश देता है। यह क्रिया दूसरे दिन भी दोहराई जाती है। तीसरे दिन बालक ओमप्रकाश पढ़ने हेतु कक्षा में जैसे ही बैठता है—हैडमास्टर दहाड़ता है, "अबे ओ चूहड़े के, मादरचोद कहाँ घुस गया ... अपनी माँ ...।"[21] दहाड़ सुनकर वह बालक थर-थर काँपने लगता है। आगे की घटना स्वयं उन्हीं के शब्दों में—"हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकी उंगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था, जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले, जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू ... नहीं तो गांड में मिर्ची डालके स्कूल के बाहर काढ़ (निकाल) दूँगा।"[22]

यह घटना व्यवस्था के प्रति मन में गहरी वितृष्णा और घृणा पैदा करती है तथा आमूल परिवर्तन के लिए उत्प्रेरित करती है। जिस व्यवस्था में आज अन्याय और अनेक प्रकार की विद्रूपता विद्यमान है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जिस स्कूल और कॉलेज में पढ़ने जाते हैं, उन्हें 'अबे चूहड़ें का' कितना भी पढ़ लियो रहेगा तो चूहड़ा ही। कहकर उसकी

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

हैसियत बता दी जाती है। जब कभी भी वे शिक्षक से किसी समस्या पर बात करने जाते हैं, तो सबसे पहले उन्हें 'भंगी' होने का एहसास कराया जाता है। प्रैक्टिकल के लिए जब वे लैब जाते तो अध्यापक किसी-न-किसी बहाने उन्हें कोई काम सौंपकर बाहर भेज देते हैं, अध्यापकों का लक्ष्य बारहवीं में फेल करना था। आखिरकार प्रैक्टिकल में फेल करके बारहवीं में ही उन्हें रोक लिया गया। एक चूहड़े घर जन्म लेकर वे सवर्णों से बेहतर कैसे हो सकते थे?

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने दर्द और टीस का बयान करते हुए कहते हैं—"ऐसे ही आदर्श शिक्षकों से पाला पड़ा था उस समय बचपन से किशोर अवस्था की ओर बढ़ते हुए। जब व्यक्तित्व का निर्माण हो रहा होता है, तब ऐसे दहशत भरे माहौल में जीना पड़ा। इस पीड़ा का एहसास उन्हें कैसे होगा, जिन्होंने घृणा और द्वेष की बारीक सुईयों का दर्द अपनी त्वचा पर कभी महसूस नहीं किया? अपमान जिन्हें भोगना नहीं पड़ा? वे अपमान बोध को कैसे जान पायेंगे? रेतीले ढूह की तरह सपनों के बिखर जाने की आवाज नहीं होती, भीतर तक हिला देने वाली सर्द लकीर खिंच जाती है, जिस्म के आर-पार ... कभी-कभी लगता है जैसे क्रूर और आदिम सभ्यता में साँस लेकर पले बढ़े हैं।"[23]

हालाँकि इसी सड़ी हुई व्यवस्था के बीच कुछ संवेदनशील लोग भी है जो दलितों की वेदनाओं को समझते हैं, जिसमें बदलाव की आशा की जा सकती है। ऐसे लोगों को वाल्मीकि जी ने 'जूठन' में बड़े आदर के साथ याद किया है। स्कूली समय के दो व्यक्ति बाबूराम त्यागी और चमन लाल त्यागी का सहयोग और प्यार इन्हें संबल देता है तथा जिसके कारण लेखक आक्रोश और आत्मीयता के मध्य सन्तुलन स्थापित कर पाता है, जिससे उन्हें यह सन्देश मिलता है कि भविष्य में दो से बढ़कर हजारों लोग मिलकर समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व जैसी भावनाओं को प्रचारित-प्रसारित कर व्यवस्था में बदलाव ला सकते हैं।

इस व्यवस्था में विद्यमान धार्मिक कर्मकाण्ड और गढ़ी हुई ऐतिहासिकता पर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जब-जब अध्यापकों से प्रश्न करने की कोशिश की तब-तब उन्हें मार खानी पड़ी। परीक्षा में अंक तो कम मिले ही साथ-साथ सवर्ण सहपाठियों एवं अध्यापकों द्वारा पीड़ित करने वाले शब्द भी मिले—"देखो चूहड़े को, बामन बन रहा है।"[24]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अनेक प्रकार की प्रताड़नाओं के बावजूद वाल्मीकि के बाल मन में अपनी चेतना बार-बार अध्यापकों से सवाल करने के लिए प्रेरित करती है—"अश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का माण्ड। फिर किसी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया? किसी महाकवि ने हमारे जीवन पर एक शब्द क्यों नहीं लिखा? ... मास्टर चीख उठे थे, घोर कलियुग आ गया है ... जो एक अछूत जबान जोरी कर रहा है।"[25]

उस मास्टर ने बालक ओमप्रकाश को मुर्गा बना दिया तथा शीशम की एक लम्बी छड़ी मंगाई और फिर—"चूहड़े के, तू द्रोणाचार्य से अपनी बराबरी करे है ... ले तेरे ऊपर मैं महाकाव्य लिखूँगा ... उसने मेरी पीठ पर सटाक-सटाक छड़ी से महाकाव्य रच दिया था। वह महाकाव्य आज भी मेरी पीठ पर अंकित है। भूख और असहाय जीवन के घृणित पलों में सामन्ती सोच का यह महाकाव्य मेरी पीठ पर ही नहीं, मेरे मस्तिष्क के रेशे-रेशे पर अंकित है।"[26]

शिक्षा तन्त्र में विद्यमान वर्ण-व्यवस्था की ठोकरों से ओमप्रकाश वाल्मीकि बार-बार आहत होते हैं, उनकी पीड़ा से कराहते भी हैं, लेकिन टूटते नहीं, बल्कि चेतना का वेगमयी प्रवाह निरन्तर बढ़ता जाता है, जो हर दलित और दलित चेतना के लिए स्पृहणीय है। हिन्दू धर्म द्वारा दी गई पीड़ा से इनका मन बार-बार तरह-तरह के सवाल पैदा करता है—"मैं हिन्दू भी तो नहीं हूँ। यदि हिन्दू होता तो हिन्दू मुझसे इतनी घृणा, इतना भेद-भाव क्यों करते? बात-बात पर जातीय बोध की हीनता से मुझे क्यों भरते? जातीय श्रेष्ठता-भाव अभिमान बनकर कमजोर को ही क्यों मारता है? क्यों दलितों के प्रति हिन्दू इतना निर्मम और क्रूर है?"[27]

निश्चित तौर पर सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन में मुख्य लड़ाई श्रेणीबद्धता, वर्चस्व और शोषकों से जरूर है, परन्तु दलितों को उन विभेदकारी सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के प्रति भी सचेत रहना पड़ेगा, जिन्हें दलित समाज ने आत्मसात कर लिया है या आत्मसात करा दिया गया है। आत्मसात करा दी गई मूल्य सरणियों के बावजूद भी दलित के अन्दर चेतना का बीज मरा नहीं है, बल्कि सुषुप्तावस्था में पड़ा है, बस उसे उत्प्रेरित करने की आवश्यकता है। अपमान की वेदना और हक-चिन्ता उसे जगा सकती

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

है। वाल्मीकि जी के पिताजी इस चेतना के अप्रतिम उदाहरण हैं। पढ़-लिखकर 'जाति' सुधारनी है। हालाँकि यह और बात है कि पढ़-लिखकर ऊँचे ओहदे पर पहुँचने के बाद भी भुगतभोगी वर्ग की जाति का दंश बेधता रहता है, डंक मारता है। फिर भी यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि ओमप्रकाशजी की पढ़ाई में बाधक हेडमास्टर रूपी निष्ठुर व्यवस्था के सामने भी जरूरत पड़ने पर इनके पिताजी दहाड़ते हैं। हार नहीं मानते। बच्चे की पढ़ाई के लिए वे सब कुछ करते हैं, जो चेतनाशील व्यक्ति को करना चाहिए।

वाल्मीकि जी पहली बार गाँव से दूर पढ़ाई के लिए जा रहे होते हैं, तो उनके पिताजी स्मरण कराते हैं—"बेटे! तू एक गरीब चूहड़े का बेटा है ... इसे हमेशा याद रखियो ..."[28] यह वाक्य उन्हें दलित समाज के प्रति कर्त्तव्य-बोध का एहसास कराता है।

वाल्मीकि की माँ के अन्दर आत्मसम्मान और हक के लिए उपजा स्वाभाविक आक्रोश नारी चेतना का अद्‌भुत उदाहरण है। सुखदेव त्यागी की लड़की की शादी में वाल्मीकि जी की माँ ने काम के बदले खाना माँगा, तो सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की ओर संकेत कर कहा था—"टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है ... ऊपर से जातकों (बच्चों) के लिए खाना माँग रही है? अपनी औकात में रह चूहड़ी! उठा टोकरा और दरवाजे से चलती बन।"[29] इन वाक्यों ने उसके दिलोदिमाग को बरछी की तरह छलनी कर दिया था। उन्होंने वहीं टोकरा बिखेर दिया था और सख्त लहजे में सुखदेव सिंह से कहा था, "इसे उठाके अपने घर में धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देणा...।"[30]

ओमप्रकाश वाल्मीकि बताते हैं कि उस दिन से आक्रोश और बदलाव की चिंगारी फूट पड़ी थी। जूठन का सिलसिला बंद हो रहा था। जिस दिन दलित स्त्रियों में चेतना आ गई, उस दिन 'व्यवस्था' की चूलें हिल जाएगी। वर्ण-व्यवस्था की दूह ढहकर भरभराकर गिर जाएगी। 'जूठन' इस बात को रेखांकित करती है कि दलित स्त्रियों को तिहरी लड़ाई लड़नी है—पुरुष सत्ता, वर्ण-व्यवस्था और आर्थिक-तन्त्र, इन तीनों के खिलाफ। लड़ाई बहुत लम्बी है। इसके लिए धैर्य और साहस की आवश्यकता है। बस एक बार संगठित होकर आवाज उठाने की जररूत है। शिक्षा, आत्मनिर्भरता और एकजुटता से ही इसको हासिल किया जा सकता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

'जूठन' में अभिव्यक्त ओमप्रकाश वाल्मीकि के बालपन के दरकने की अनुगूंज अन्तस को हिलाकर रख देती है। चाचा की हिदायत और अपनी इच्छा के विरुद्ध मरे हुए बैल की छुरी से खाल उतारते हुए उनके भीतर बहुत कुछ था, जो टूट रहा था। सूअर के बच्चे को छुरी से वध करते हुए ओमप्रकाश जी का बालपन पीड़ा और ग्लानि के भँवर में उलझ गया था, उन्हें लगा था जैसे दिमाग की नसें फट जाएंगी। यही है महान हिन्दू संस्कृति, जिसने सब कुछ तो छीना ही है, नन्हा खिलखिलाता बचपन भी छिन लिया है। उसकी मासूमियत छीनी है। यह 'व्यवस्था' कितनी बेरहम और जालिम है, इससे बड़ी मिसाल और क्या हो सकती है?

'जूठन' ने प्रेम की सारी परिभाषाओं एवं उसके अर्थों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। दो युवा मनों में उपजे प्रेम के टूटते तार ने नस-नस में समाई जाति-व्यवस्था को बड़ी तल्खी से उजागर किया है। प्रेमी-प्रेमिका के बीच जाति आते ही सब-कुछ बिखर जाता है, जिसे दो जवांदिल भविष्य के लिए संजोकर रखते हैं। इस व्यवस्था में मानव की स्वाभाविक मनोवृत्तियाँ दफन कर दी जाती हैं और सारी स्वतन्त्रता छीन ली जाती है, यह अकारण नहीं है कि शिकार दलित और स्त्री ही होते हैं।

इन अर्थों में दोनों पर्यायवाची से लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे सवर्ण घरों में स्त्रियों को घर की चहारदिवारी में बन्द करके जातिगत मानसिकता से संस्कारित किया जाता है। महाराष्ट्र के कुलकर्णी (ब्राह्मण) परिवार की लड़की सविता को उसके माँ-बाप ने क्या बचपन से यही सिखाया और बताया था कि एस.सी. अनकल्चर्ड (असभ्य) होते हैं, गन्दे रहते हैं, एस.सी. से घृणा करो। कुलकर्णी खानदान की बेटी सविता ओमप्रकाश वाल्मीकि की ओर इसलिए आकृष्ट हुई थी कि वे एस.सी. हो ही नहीं सकते। इतने सभ्य और सुशील तो सिर्फ ब्राह्मण ही होते हैं। ब्राह्मणवादी संस्कृति ने सदियों तक रिसने वाले दर्द ही तो दिया है, जिसका भुक्तभोगी पूरा दलित समाज है। इस सभ्यता ने न जाने कितने ओमप्रकाशों और सविताओं को दफन किया है। इस पथराई, जड़ीभूत संवेदना को जगाने की ओर 'जूठन' संकेत करती है। दिलोदिमाग पर छाई हुई भीरूता और आतंक को मिटाने के लिए एक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन की आवश्यकता हेतु 'जूठन' प्रेरित करती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

'जूठन' में ओमप्रकाश की संवेदना हाहाकार कर उठी है। यह आत्मकथा दलित साहित्य की अनोखी भेंट है, इसने हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति की असलितय को एक-एक कर उघाड़ा है। शिक्षा तन्त्र के तन्तुओं को उधेड़कर 'भारत महान' की पोल खेलकर रख दी है। हिन्दू अभिजात्यता एवं परम्परागत साहित्य को कटघरे में खड़ा करके उसे बेनकाब किया है 'जूठन' ने। 'जूठन' की प्रामाणिकता पर किन्हें सन्देह हो सकता है? ओमप्रकाश वाल्मीकि पर ढाए गए जुल्म हर दलित को, हर पीड़ित वर्ग और संवेदनशील व्यक्ति को सच्ची लगेगी। उन्हें लेखक का दर्द बिल्कुल अपना-सा लगेगा। इसलिए 'जूठन' का दर्द मर्मान्तक आत्माभिव्यक्ति का माध्यम है।

'जूठन' में दु:ख-दर्द, पीड़ा और कराह का संसार पसरा पड़ा है। इन्हीं वेदनामयी टीसों के बीच ओमप्रकाश वाल्मीकि पलते-बढ़ते, जीते और साँस लेते हैं। 'जूठन' में एक तरफ यातनामयी चीखें हैं तो दूसरी तरफ इनसे होड़ लेने की चेतना और अद्भुत साहस भी व्याप्त है, जो हर दलित और पीड़ित वर्ग को उठ खड़े होने की प्रेरणा देता है। जूठन के टुकड़ों पर जिन्दा रखने वाली हिन्दू व्यवस्था को वाल्मीकि जी की मनुष्यता से सबक लेनी चाहिए। मन में आक्रोश और अपमान की धधकती ज्वाला के बीच भी उनकी मनुष्यता कहीं खोती नहीं है, बल्कि और निखरती है।

इस प्रकार दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि की इस आत्मकथा में उनकी शिक्षा तथा दलित लेखक के वास्तविक जीवन की पीड़ा, सदियों से चली आ रही शोषण व अत्याचार की गूँज, वेदना तथा टीस समाज में किस तरह से व्यक्त होती है, यह इस आत्मकथा के शैक्षणिक और सामाजिक सन्दर्भ में देखा जा सकता है।

2.5 तिरस्कृत : सूरजपाल चौहान

'तिरस्कृत' समकालीन हिन्दी दलित साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुके सूरजपाल चौहान की आत्मकथा है। 'तिरस्कृत' का प्रकाशन (2002) से पूर्व सूरजपाल चौहान के कई आत्मकथांश 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'हंस', 'युद्धरत आम आदमी', 'वर्तमान साहित्य' आदि राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में छप चुके थे। उनके पढ़ने के बाद कुछ पाठकों ने इनकी सराहना की थी तो, कुछ ने नाक-भौंह सिकौड़ी।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सूरजपाल चौहान का सम्बन्ध भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे नीची या दलितों में दलित समझे जाने वाली भंगी जाति से था। दलितों में भी दलित होने के कारण इनका शोषण और जातियों की तुलना में बड़े पैमाने पर हुआ था। दलितों में मौजूद जातिवाद के अलावा 'तिरस्कृत' में दलित समाज की अनेक विसंगतियों पर भी प्रकाश डाला गया है इसलिए यह आत्मकथा एक ओर जहाँ जाति आधारित परम्परागत हिन्दू समाज की आलोचना प्रस्तुत करती है वहीं दलित साहित्य के सन्दर्भ में आत्म आलोचना भी है। इस आत्मकथा में भंगी जाति की कथा-व्यथा कही गई है। ठीक इसी प्रकार ऐसी उपक्षित जाति में जन्मे व्यक्ति को, जो सबकी ओर से तिरस्कृत है, अनेक प्रकार के आर्थिक संकटों तथा अपमानों को सहते हुए मंजित की ओर बढ़ना पड़ता है।

लेखक सूरजपाल चौहान की चेतना की निर्माण भूमि मुख्य रूप से दिल्ली शहर रहा क्योंकि बचपन में ही अपना गाँव छोड़ पिता के साथ दिल्ली आ गये थे तथा वहाँ पर झुग्गियों की बस्ती तथा नेशनल स्टेडियम की सीढ़ियों व बंद पड़े पाखानों तक ही सीमित थे। वह एक सफाई कर्मचारी के बेटे की हैसियत से दिल्ली आया था।

लेखक की माँ बेगार के रूप में ठाकुरों के मुहल्ले में सफाई का काम करती है। एक बार वह बीमार पड़ जाती है तो परिस्थितिवश लेखक को सफाई के लिए ठाकुरों के मोहल्ले में जाना पड़ता है तब लेखक उस समय बड़े मैदान में झाड़ू लगाता है तो उसकी कमर में दर्द होने लगता है। नाक, कान, सिर मिट्टी से अट जाते हैं तब लेखक सोचता है कि शायद माँ इस तरह रोजाना पीड़ाओं को झेलने के कारण ही बीमार होती होगी। उन्हीं दिनों बालक सूरजपाल को एक और नया अनुभव मिला—जूठन संकेलने का। लेखक की माँ अपने इस बालक को 7-8 वर्ष का हो जाने पर जूठन संकेलने के लिए उपयुक्त समझती है। बालक सूरजपाल भी मन-ही-मन खुश था अपने इन नए अनुभवों से पूर्व। बाराती जा रहे थे, लेखक और उसकी माँ चौखट से बाहर खड़े उनकी ओर ललचाई दृष्टि से देख रहे थे। जूठन उठाने वाले की नजर ठीक उस कुत्ते की तरह होती है जो उसके समानान्तर उसका प्रतिद्वन्द्वी बनकर खड़ा होता है। एक आदमी खाना खाकर जूठी पत्तल उनकी ओर फेंकता है, जिस पर लेखक की माँ और एक कुत्ता एक साथ झपटते हैं। यह दृश्य भारतीय संस्कृति द्वारा प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था पर घोर प्रहार है। ऐसी संस्कृति जो आदमी के स्वाभिमान का हनन कर उसे पशुओं की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देती है,

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

इसका मुख्य कारण गरीबी तथा जाति आधारित वर्ण-व्यवस्था है। लेखक ने ठीक ही कहा है कि, "जब रूखे-सूखे निवालों के भी लाले हों और आदमी-आदमी के हाथों नारकीय जीवन जीने को विवश हो तब वह स्वयं में और पशुओं में अन्तर नहीं कर पाता।"[31] भूख और गरीबी जैसी यातनाएँ सहने का स्तर लोगों के लिए कल्पनीय हो सकता है लेकिन यह भी भंगी जाति का यथार्थ है इसलिए लेखक ने कहा है कि, "जब-जब बसीठों (सवर्ण) के घरों में शादी-ब्याह का कार्यक्रम होता, हमारे भंगी मौहल्ले में त्यौहार जैसा माहौल उत्पन्न हो जाता था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे हमारे मोहल्ले में ही किसी के यहाँ ब्याह-बारात हो।"[32] एक रोटी पाने के लिए बालक सूरजपाल लालायित रहता है लेकिन आधी रोटी हाथ लगती है। उस दिन की उस गेहूँ की आधी रोटी का स्वाद लेखक को आज भी याद है।

"वाह, वह गेहूँ के आटे की बनी रोटी कितनी स्वादिष्ट थी। बिना सब्जी के भी वह कितनी मीठी लग रही थी।"[33] जिसे भूख और गरीबी का एहसास न हो वह गेहूँ की रोटी के इस मीठेपन को महसूस क्या करेगा? इस प्रकार के प्रसंग जो किसी भी दलित पाठक की चेतना को झकझोर कर उसे अपनी अतीत में झाँकने को मजबूर करते हैं।

लेखक के ताऊ सरूपा की बेटी रूमाली की शादी का दिन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह प्रसंग एक ओर दलित समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, कुसंस्कृति को बताते हुए उसकी आलोचना करता है, वहीं दूसरी ओर शोषित, वंचित जीवन जी रहे दलित बच्चों की नियति व उसके कारकों से भी पाठकों को परिचित कराता है। शादी के दिन दावत के लिए सुअर मारा जाना था। सुअर मारने का कार्यक्रम एक स्वयंवर के समान था। राजा जनक की भाँति ताऊ सरूपा पहले उद्घोषणा करते हैं, फिर उपस्थित लोगों को उकसाते व धिक्कारते हैं, "शरम नाय आवत, कहूँ जाय कै चुल्लू भर पानी में डूब मरो। इतने-इतने बलशाली पट्ठे खड़े देख रहे हैं और एक सुअर नाय पकड़ो जातु। धिक्कार है तुम्हारे भंगी होने पर।"[34] यह सुनकर कुछ भंगियों के बाजू फड़क उठे, जिनमें से एक ने थोड़ी ही देर में सुअर को धर दबोचा। यहाँ पर जोशिली प्रतिक्रिया इस बात की ओर इशारा करती है कि जन्माधारित कर्म निर्धारण करने वाली वर्णाश्रम धर्म वाली सामन्ती हिन्दू समाज व्यवस्था का धीरे-धीरे जातियों ने भी आत्मसातीकरण कर लिया है, तभी तो एक कार्य को एक जाति की अस्मिता के साथ जोड़कर देखा गया है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

भारतीय समाज कुरीतियों के लिए कुख्यात रहा है। अशिक्षा होने की वजह से समाज भी अधिकांश कुरीतियाँ दलित समाज में विद्यमान हैं। प्रथा के अनुसार रूमाली की शादी में उसके माथे पर भी सुअर के खून का टीका लगाया गया था।

लेखक की माँ के बीमार होने पर भी उसे इलाज के लिए डॉक्टर की बजाय भक्तावल शुरू करवा देते हैं। विभिन्न जानवरों व दारू की भेटों से युक्त 'ढोंग प्रक्रिया' शुरू हो जाती है, बीमारी दूर करने के लिए। यह प्रक्रिया तब तक जारी रखी जाती है जब तक 'भंगी भक्त सूअर के मांस के साथ लेखक की माँ के शेष बचे जीवन को लील नहीं जाते।' आज भी दलित समाज में ऐसे मौकों पर झाड़-फूँक को ही वरीयता दी जाती है।

सूअर को मारने के बाद उसकी दुनाई (भुनाई) और कटनई हुई है। बच्चों को तिक्के (सूअर की चर्बीयुक्त खाल के टुकड़े) पकड़ा दिए गए, जिन्हें बच्चे चाव से चबाते रहे तथा कटनई के बाद निकली पेशाब की थैली (यूरिन ब्लैडर) बच्चों की तरफ उछाली जाती है। लेखक उसे लपक लेता है लेकिन इस प्रक्रिया में उसका शरीर उसमें भरे शराब से भीग जाता है। इस यूरिन ब्लैडर से लेखक तीन-चार दिन तक फूँकना फूलाता रहता है। लेखक ने पूरी बेबाकी साथ ऐसे प्रसंगों को पाठकों के समक्ष रखा है। लेखक ने कहीं भी अपने समाज को सभ्य या श्रेष्ठ बताने की कोशिश नहीं की है। जैसा है, वैसा ही चित्रित कर दिया। सचमुच वाल्मीकि समुदाय का जितना जीवन्त और आत्मीय वर्णन 'तिरस्कृत' में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। "एक ओर जहाँ वे उस गन्दगी, उस जीवन की विडम्बनाओं का करूण वर्णन करते हैं, वहीं उसमें गुजारे गए अपने बचपन को भी बड़े लगाव और बिना लाग-लपेट के प्रस्तुत करते हैं।"[35]

दलित लेखन में तीन ऐसी जगहों को निशाना बनाया गया है जहाँ दलितों के साथ भेद-भाव सबसे ज्यादा होता हैं—गाँव, स्कूल और कार्यालय। दलित्तेर साहित्य में इन स्थानों की छवि काफी सकारात्मक है तथा दलितों को एक नये दृष्टिकोण से देखा गया है जिसमें दलित आत्मकथाओं के माध्यम से इसकी पुष्टि होती है। गाँव में होने वाले जातिगत भेद-भाव से सम्बन्धित कई प्रसंग 'तिरस्कृत' में मौजूद हैं। एक बार लेखक जब ठाकुर वीरू के साथ खेलता हुआ पाया जाता है तो लेखक और वीरू दोनों की पिटाई होती है तथा वीरू को पानी के छीटों द्वारा 'पवित्र' भी किया जाता है। इस प्रक्रिया में वीरू का

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

कहना महत्त्वपूर्ण है—"मों पै पानी क्यों डारि रहे हो?"[36] यानी वह नहीं जानता कि वह 'अपवित्र' हो चुका है! लगता है वीरू का बालपन तब तक जातिगत भेद-भाव से अपरिचित था तभी तो वह एक भंगी के लड़के के साथ खेलता है और बाद में अपने बाप से छींटे देने की वजह पूछता है। दरअसल जातिवाद एक मानसिकता है जो जन्म से नहीं, माहौल के अनुसार व्यक्ति के मन में स्थान बनाती है।

अपने गाँव के सवर्णों की पोल खोलते वक्त लेखक भगवन्ती ठकुराइन को नहीं भूलते हैं। लेखक के अनुसार वह ठकुराइन अन्य दलितों से छूत बरतती है लेकिन लेखक के चाचा गुलफान के साथ अरहर के खेत में उलझी पड़ी रहती है। एक दिन लेखक उन दोनों को आपत्तिजनक अवस्था में देख लेता है तो वह अपनी पोल खुलने के भय से लेखक से अस्पृश्यता का व्यवहार बन्द कर देती है।

लेखक ने इस प्रसंग को स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की जटिलता की दृष्टि से देखने की बजाए सिर्फ दलित नजरिए से देखा है। 'तिरस्कृत' का खचेरा प्रसंग, जहाँ एक ओर दलितों द्वारा कम लाभ के लिए व्यवस्था के आत्मसातीकरण को उजागर कर उसकी आलोचना करता है, वहीं दूसरी ओर सवर्णों द्वारा दलितों को आपस में लड़ाकर उन्हें कमजोर बनाए रखने तथा इस कार्य में पुलिस-प्रशासन द्वारा उनकी मदद की पोल खोलता है। दलितों द्वारा किए गए प्रतिरोध की झलक भी इस प्रसंग में देखी जा सकती है। गाँव के जाटव बेगार की कुप्रथा के प्रति अपना प्रतिरोध व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने मरे जानवरों को उठाना बन्द कर दिया था क्योंकि इसके लिए उन्हें बहुत संघर्ष करना पड़ता था। जब जाटवों ने मरे जानवर उठाना बन्द कर दिया तो सवर्णों द्वारा इस काम के भंगियों को राजी कर लिया कैसे? "दो रोटी और एक सेर भर अतिरिक्त अनाज देकर। गाँव के भंगी फूले नहीं समाये थे उस दिन। जाटव कल्लन चाचा ने गाँव के भंगियों को बहुत समझाया था कि मरे जानवर उठाने को तैयार न हो। लेकिन गाँव के भंगी नहीं माने।"[37]

असल में चमारों में शिक्षा आदि के कारण अपनी स्थिति के प्रति जागरूकता पहले आनी शुरू हो गई थी और भंगी उनके साथ मिल जाते तो वे सवर्णों से एक मुकम्मल लड़ाई लड़ सकते थे, लेकिन उनकी लड़ाई को कमजोर करने के लिए सवर्णों ने

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

दलितों को परस्पर फूट डालकर भड़काते रहते थे तथा उनमें कभी भी एकता स्थापित न हो, इसी प्रयास में लगे रहते थे।

गाँव के इस घुटन भरे माहौल को छोड़कर लेखक अपने पिता के साथ दिल्ली आ जाता है। शहर में रहने के कारण लेखक को अपने व्यक्तित्व निर्माण का अवसर मिलता है। यहाँ पर गरीबों का शोषण पूँजीवादियों द्वारा कियाजाता है लेकिन उन्हें गाँव के सामन्ती शोषण से मुक्ति मिलजाती है। पूँजीवाद मूलत: श्रम का शोषण करता है, जबकि सामन्ती शोषण में मानसिक गुलामी की दासता सहन करनी पड़ती है। इस सन्दर्भ में लेखक कहता है कि 'शहर आना मेरे भविष्य के लिए अच्छा ही रहा' इसी कारण 'तिरस्कृत' के कुछ समीक्षकों ने इसे लेखक के जीवन में आया 'टर्निंग प्वाइन्ट' कहा है।

जीवन बीमा निगम के खजांची पी. कुमार की लेखक को पढ़ाने के लिए लेखक के पिता को सलाह—"पाँच रुपये कमाने के चक्कर में बच्चे का जीवन बर्बाद मत करो, इसे खूब पढ़ाओ-लिखाओ...।"[38] नौकरी लग जाने के उपरान्त लेखक ने अपनी आत्मकथा में दो मुद्दों पर विचार किया। कार्यालय तथा अन्य स्थानों पर जातिगत भेद-भाव व अपमान द्वारा सवर्णों व 'ऊँची जाति के दलितों' द्वारा मिले दंश, दूसरे, अपने परिवार व नाते-रिश्तेदारों की हरकतों से मिला दु:ख और अपमान। यहीं से लेखक के मन में दलित समाज के सन्दर्भ में आत्मालोचना की प्रक्रिया भी शुरू होती है।

कार्यालय में लेखक की कार्य कुशलता व कुशल व्यवहार से सभी सहकर्मी प्रभावित होते हैं लेकिन उसकी जाति का पता लगते ही उनका व्यवहार परिवर्तित हो जाता है तथा उनकी द्वेष भावना यहाँ तक बढ़ जाती है कि लेखक का ट्रांसफर ही करवा देते हैं। लेखक को इस बात से आघात पहुँचता ही है लेकिन सबसे ज्यादा आघात पहुँचता है ऑफिस के साथी सरदार एन.एस. उप्पल की कृतघ्नता और दलितों के प्रति उसके घृणित नजरिए से। वह लेखक के सामने ही दलितों के बारे में कहता है, "ऐ साले चूहड़े चमार किन्ने गन्दे होंदे हन, मैंने तो आसे दिन जाना यार ... बिना नाहे-धोए साले आ जांदे हन वोट पाण नू ... चूहड़े तो चूहड़े ही होंदे हन।"[39] यह उसी सरदार एन.एस. उप्पल का कथन है जिसे 84 के दंगों में एक चूहड़े यानी लेखक तथा उसके साथियों ने दंगों से

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

बचाया था। वही उप्पल अपनी कृतघ्नता का परिचय देते हुए सीधे कहता है, "हो तू कौन होन्दा है बचान वाला, बचान वाला तो रब होन्दा है।"[40]

उन्होंने स्वीकार किया है कि उनके लेखन में बदलाव प्रसिद्ध दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि से मिलने के बाद आया। इससे पहले वे 'शिवस्तुति' तथा भजन आदि लिखा करते थे। इससे पता चलता है कि किस तरह वर्चस्व की विचारधारा अपने शोषण के शिकारों से भी समर्थन हासिल करती है केवल दलित हो जाने भर से दलित चेतना प्राप्त नहीं होती बल्कि उसे उचित ढंग से अपने संस्कारों के खिलाफ लड़ते हुए अर्जित करना पड़ता है। इस प्रसंग पर बजरंग बिहारी तिवारी की टिप्पणी बिल्कुल सही है कि, "शिवस्तुति से सामाजिक परिवर्तन के अम्बेडकर-दर्शन की यात्रा कठिन आत्मसंघर्ष से गुजरी होगी। दलित चिन्तन के लिए आत्मसंघर्ष कर यह प्रक्रिया मूल्यवान है। दुर्भाग्य से लेखक अपनी आत्मकथा में इस प्रक्रिया पर चलाऊ टिप्पणी करके रह जाता है। अपने आत्मसंघर्ष का अपेक्षाकृत विस्तृत, अन्तरंग और ब्यौरेवार चित्र नहीं खींचता। वह ऐसा करता तो आत्मकथा की सार्थकता और विश्वसनीयता में इजाफा ही होता।"[41]

नौकरी लगने के बाद आत्मकथा में जिस पर लेखक की नजर सबसे ज्यादा टिकी, वह है—दलितों में पनप रहा जातिवाद तथा अन्य विसंगतियाँ। इन्हीं से लेखक को सर्वाधिक मानसिक आघात पहुँचता है। लेखक विवाह के बारे में यह बात स्वीकार करता है कि "दलित समाज में वैसे तो अनेक कुरीतियाँ हैं लेकिन जो सबसे भयंकर और गंभीर बुराई है कि इस समाज में बच्चों की शादी-ब्याह गुड्डा-गुड़िया का खेल समझकर बचपन में ही कर दिया जाता है जिसके कारण वे संग्राम में पिछड़ जाते हैं।"[42] क्योंकि विवाह वास्तव में जीवन का सबसे अहम मोड़ होता है, विवाह के समय ही आदमी के जीवन की दिशा लगभग तय हो जाती है। लेखक का विवाह बचपन में होने से तो बच गया लेकिन उसकी बेरोजगारी में उसका विवाह हो गया जिसके कारण उन्हें जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा आर्थिक परिस्थितियों की वजह से पिता से खटपट तथा इन सबसे मुक्ति के लिए कई बार आत्महत्या तक की सोच ली।

आर्थिक रूप से अलाभदायक पेशों से विद्रोह किया और दूसरे क्षेत्रों में चले गए। अन्य जातियों से तुलना करते हुए सूरजपाल चौहान भंगी जाति के बारे में लिखते हैं—

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

"दूसरी जाति के लोग अनपढ़ होते हुए भी सफाई कर्मचारी का काम नहीं करते। वे कोई दूसरा धन्धा करके अपना पेट भर लेते हैं, लेकिन भंगी जाति के पढ़े-लिखे लोग थोड़ी-सी परेशानी सामने आते ही झाड़ू लगाना स्वीकार कर लेते हैं। बचपन से ही उनके मन में यह बात बैठा दी जाती है कि यदि कोई दूसरा काम नहीं मिला तो क्या है, झाड़ू लगाने का काम तो मिल ही जाएगा। मेरे समाज के लोग इस काम को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान बैठे हैं। उनमें आत्मसम्मान की कमी है।"[43] इस तरह देखा जाए तो जन्म आधारित पेशों का यह 'आरक्षण' वास्तव में उनके लिए अभिशाप की तरह है क्योंकि "ऐसी स्थिति में यह जन्मसिद्ध अधिकार जन्मसिद्ध कर्त्तव्य में बदल जाता है।"[44]

लेखक दलितों में आत्मसम्मान की कमी का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि बी.ए. करने के बाद जब वे स्वयं बेरोजगार थे और नौकरी की तलाश में चिन्तित थे तो कई नाते-रिश्तेदारों ने उसे सफाई कर्मचारी का काम करने तक की सलाह दे दी। लेखक दलित समाज के ऐसे लोगों के बारे में बताना चाहते हैं जो सरकारी कार्यालयों में अधिकारी बनकर भी झुग्गी बस्तियों में रह रहे हैं। ऐसी घटना का वर्णन करते हुए लेखक बताते हैं कि भोलाराम नाम का एक व्यक्ति जो दिल्ली में पर्सनल मैनेजर के पद पर कार्यरत है वे लेखक को अपने घर बुलाते हैं। लेखक उनके घर जाकर जो देखता है, वह स्वयं लेखक के शब्दों में, "उस समय वह महोदय दारू पीकर टुल थे। पूरा घर अस्त-व्यस्त पड़ा था। घर की खिड़की-दरवाजों पर लटके पर्दे मैल से इतने कीचर हो गये थे कि उनका असली रंग तक नहीं पहचाना जा सकता था। दारू पीकर उसने मांस भी खाया था - चूसी हड्डियों के टुकड़े मेज पर और कुछ फर्श पर बिखरे पड़े थे। घर के बाहर चारों ओर सुअर ढों-ढों करते घूम रहे थे।"[45] लेखक ने इस प्रसंग में उन व्यक्तियों का वर्णन किया है जो अधिकारी तो बन गये, लेकिन उन्होंने अपनी आदतें और रहन-सहन का तरीका नहीं बदला। शिक्षा और सुविधा पा लेने के बाद भी उनके अन्दर न तो मनुष्य होने की चेतना है और न ही अपनी गरिमा का बोध।

जिस बेबाकी के साथ सूरजपाल चौहान ने अपनी आत्मकथा में दलित समाज की विसंगतियों को रखा है, वह अन्यत्र मिलना मुश्किल है। उन्हें यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि, "देश के तथाकथित सवर्ण तो हमेशा से हमसे घृणा करते आ रहे हैं, पर हम दलित भी आपस में घृणा फैलाने में कम नहीं रहे हैं ... हम पढ़े-लिखे दलितों ने

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अपने समाज की गाँठें सुलझाने में कोई कमी नहीं दिखाई है। सभी अपने-अपने स्वार्थों को पूरा करने में मग्न दिखाई दे रहे हैं ... जातपाँत के विरोध में बोलते अवश्य हैं लेकिन भीतर से उसी अवस्था को अपनाए हुए हैं।"[46]

इस आत्मकथा का महत्त्व इसलिए नहीं है कि इसमें दलितों, उनके संघर्ष और उनकी एकता को गौरवान्वित किया गया है बल्कि इसके ठीक विपरीत वह दलित एकता के सामने मौजूद समस्याओं को रखने के कारण 'तिरस्कृत' की आलोचना भी काफी हुई है लेकिन इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि एकता निर्मित करने की राह में मौजूद समस्याओं की पहचान करना भी उतना ही जरूरी होता है जितना कि स्वयं एकता निर्मित करना। अगर अपने समाज में अन्तर्विरोध है तो उन पर बात न करना शुतुरमुर्ग की तरह रेत में अपनी गर्दन छुपाकर यह महसूस करना कि दुश्मन की निगाह से हम बचे हुए हैं।

"अगर अन्तर्विरोध है तो दुश्मन उसका फायदा उठाने की कोशिश जरूर करेगा। दुश्मन की इस कोशिश को नाकाम करने का बस एक ही रास्ता है—इन अन्तर्विरोधों को खुले में लाया जाए और ईमानदारी से उनको हल करने का प्रयास किया जाए।"[47]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'तिरस्कृत' का महत्त्व सवालों का गंभीर जवाब देने की दृष्टि से उतना नहीं है जितना कि स्वयं गंभीर सवाल उठाने के कारण है। अपने इसी मौलिक योगदान के कारण 'तिरस्कृत' समकालीन हिन्दी दलित साहित्य में मील के पत्थर की हैसियत रखती है।

2.6 नागफनी : रूपनारायण सोनकर

अन्य दलित आत्मकथाकारों की तरह रूपनारायण सोनकर की यह आत्मकथा एक प्रकार से आत्मावलोचन न होकर एक नाटकीय रूपान्तरण है। वैसे भी रूपनारायण सोनकर मूलत: नाटककार ही थे तथा अपनी आत्मकथा की शुरुआत भी एक नाट्य प्रसंग से करते हैं। भारत में कुछ अवसरों पर अनेक कर्मकाण्ड किए जाते हैं उनमें से एक कर्मकाण्ड उनके गाँव में सम्पन्न होता है। इसमें लोहे की छड़ें गरम करके दोनों गालों को चिरकर आर-पार निकाला जाता है, न खून बहता और न जख्म। इसे 'सांग निकालना' कहते हैं। बचपन में सोनकर ने अपने गालों से इन छड़ों को आर-पार निकाला था।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

इस प्रकार का सांग रचने वाले ज्यादातर लोगों में दलित या पिछड़ी जाति के लोग आते थे। सांग के अवसर पर सवर्ण स्त्रियाँ अपने सिर पर पानी से भरा कलश लेकर मन्दिर की ओर निकलती हैं। एक सवर्ण स्त्री के थकने पर एक दलित स्त्री अपने सिर पर कलश धारण कर चलने लगती है तब ब्राह्मण उसकी पिटाई करते हैं, इसका दर्दनाक चित्रण इसमें किया गया है।

बचपन से ही सोनकर अन्याय-अत्याचार के खिलाफ सक्रिय रहे हैं। अपने विद्रोही स्वभाव के कारण वे सवर्णों के सम्मुख चुनौतियाँ खड़ी कर देते हैं। सभी दलितों को संगठित कर सनातनियों के खिलाफ वे मोर्चा बाँधते हैं। इसमें उन्हें सफलता इसलिए मिल जाती है क्योंकि इनके गाँव के यादव और कुर्मी—जो सवर्ण अथवा पिछड़े हैं—उन्हें निरन्तर सहायता करते रहते हैं। सोनकर यह भी कबूल करते हैं कि इन यादवों और कुर्मियों के कारण ही उनकी जान बची है अन्यथा सवर्ण ब्राह्मण तो उन्हें कब के मार दिए होते।

सोनकर अपनी किशोरावस्था में बहुत अच्छे कुस्ती खेलने वाले थे। एक बार की स्पर्धा में वे एक सवर्ण को कुश्ती में हरा देते हैं। परिणामस्वरूप उनकी पिटाई होती है अर्थात् उसका बदला भी वे ले लेते हैं।

एक दिन खेत पर काम करते समय उन्हें अत्यधिक प्यास लगती है। इस कारण वे किसी सवर्ण के कुएँ से पानी निकालकर पीता है तो एक लोटे पानी के कारण सवर्णों ने उनका दो लौटे खून बहाया।

एक बार सोनकर के घर पर कुछ मेहमान आये थे। उन्हें सोनकर ने चारपाई पर बिठा दिया। वहाँ से गाँव का सनातनी ब्राह्मण जा रहा था। दलितों को चारपाई पर बैठा देखकर वह आग-बबूला हो गया। सोनकर को तो उसने पीटा ही साथ में रिश्तेदारों का अपमान भी किया। इस प्रसंग को लेकर वे लिखते हैं—"ये ब्राह्मण घिसी-पीटी परम्पराओं, अप्रजातान्त्रिक मर्यादाओं को बनाये रखने वाले, इन्सान को इन्सान न समझने वाले, नरपिशाच हिटलर की आनुवंशिक उच्चता के विचार को मानने वाले ऐसे जल्लाद थे, जो एक नौजवान को फाँसी पर चढ़ाना चाहते थे, जिसने कोई अपराध नहीं किया था।"[48]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सोनकर की आक्रामक वृत्ति से, उसके विद्रोही स्वभाव से गाँव के ब्राह्मण क्रोधित हैं, वे सभी दलितों से इसका बदला लेना चाहते हैं। इसी कारण वे एक फैसला लेते हैं कि दलित अब ब्राह्मणों के खेतों पर से जा नहीं सकते हैं। रास्ता तो एक ही था जो कि ब्राह्मण भी खटिकों के खेतों से जाता था। अत: ब्राह्मणों ने अपना फैसला वापस ले लिया। ब्राह्मणों की प्रत्येक शरारत का उत्तर उससे अधिक शरारत के साथ सोनकर देते हैं अर्थात् इस काम में उन्हें यादवों और कुर्मियों का पूर्ण सहयोग मिलता रहता था।

गाँव का सूदखोर ब्राह्मण शिवदत्त मिश्र किसी को डेढ़ पसेरी धान उधार के रूप में देता है और इस डेढ़ पसेरी धान के एवेज में 12 मन धान उठा ले जाता है और वह भी ब्याज के रूप में। यह प्रसंग प्रेमचन्द जी की कहानी 'सवा सेर गेहूँ' की याद दिलाता है। मतलब एक ओर दलित के रूप में गाली-गलौज और दूसरी ओर भयंकर ऐसा आर्थिक शोषण।

सोनकर जी के एक भाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. हो जाते हैं। गाँव के ब्राह्मण उनकी इस उच्च शिक्षा से चिढ़ जाते हैं तथा उसका अपमान करने की सोचते हैं। जब वे इलाहाबाद से गाँव आते हैं तो पड़ोस का एक ब्राह्मण उसे आदेश देता है कि 'कण्डों को टाकरी में भरकर घर के बरामदे में जमा कर दे।' यह ब्राह्मण का आदेश है, करना ही होगा। भाई यह करने से मना करता है, तब उस पर जोर जबरदस्ती की जाती है। अन्ततः मजबूरी में वह यह करता है। लेखक के शब्दों में उस दिन विश्वविद्यालय की डिग्री रो पड़ी होगी। इस पूरी घटना को लेकर सोनकर जी जो निष्कर्ष निकालते हैं, वह तार्किक नहीं है—"जब-जब धरती पर इस तरह के अत्याचार हुए हैं, तब-तब यह प्रकृति, कोई अदृश्य शक्ति, उनके घमण्ड, गरूर तथा उनके तथाकथित साम्राज्य को दीमक की तरह खोखला करती है। अपमान सहने वाले लोग अपमान करने वाले लोगों से बहुत आगे निकल जाते हैं। उन अत्याचारियों का तथाकथित साम्राज्य भी धराशायी होता रहा है। एक दिन वे तड़पते, भीख माँगते नजर आते रहे हैं।"[49]

यह परिच्छेद भाग्यवाद, दैववाद की ओर ले जाने वाला है। अत्याचारी अत्याचार करते हैं, कभी तो इसका फल उन्हें मिलता ही है, प्रकृति अथवा अज्ञात शक्ति इस दुष्कर्म का उनसे बदला लेती है—यह आशय सम्पूर्ण दलित सोच के खिलाफ जाता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अत्याचारियों का विरोध करने की जरूरत नहीं, प्रकृति बदला लेती है, इस प्रकार की विचारधारा ने तो यहाँ के लोगों को निष्क्रिय बना दिया है।

होली के अवसर पर गाँव के सवर्ण विशेषत: ब्राह्मण दलित स्त्रियों को लेकर अश्लील फब्तियाँ कसते थे। उन्हें लेकर अश्लील नारेबाजी करते थे। वर्षों से यह चल रहा था। दलित पुरुष इसे चुपचाप सुनते थे लेकिन एक वर्ष सोनकर ब्राह्मणों को उनकी तर्ज पर जवाब देते हैं। जैसे ब्राह्मण अश्लील हरकतें करते हैं तो सोनकर अपने दलित युवाओं के साथ ब्राह्मण स्त्रियों को लेकर नारेबाजी करते हैं। परिणामस्वरूप लड़ाई-झगड़ा होता है तथा उसके बाद गाँव के बड़े-बूढ़े इकट्ठे हो जाते हैं और उन्हें यह गन्दी परम्परा बन्द करनी पड़ती है क्योंकि सोनकर ईंटा का जवाब पत्थर से देने के लिए दलितों को तैयार कर चुके थे। वे इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "अमेरिका द्वारा नागासाकी और हिरोशिमा में गिराए गए बमों का दुष्प्रभाव इतना भयंकर नहीं था, जितना प्रभाव इन सामाजिक बमों का दलितों पर पड़ा।"[50]

एक सन्दर्भ के रूप में परिश्रमी और कंजूस हफीज मियाँ को भी यहाँ पेश किया गया है। ठीक उसी प्रकार गुंदा महतो नामक एक कंजूस के जीवन का वर्णन यहाँ किया गया है—"परिश्रमी लोग बहुत कम बीमार रहते हैं। कामचोर लोग ज्यादा बीमार रहते हैं। उनके कारण देश भी बीमार रहता है। हफीज मियाँ जैसे लोग जिस देश में रहते हैं, वह देश बहुत ही स्वस्थ रहता है।"[51] यह निष्कर्ष जिस प्रकार हास्यास्पद हैं, उसी प्रकार बचकाना भी लगता है।

इसी प्रकार वे एक जगह पर लिखते हैं कि, "अन्त में अच्छे कार्य की जीत है। अच्छे कार्यों से ही इस ब्रह्माण्ड का संचालन होता है।"[52] इन वाक्यों को पढ़ते समय लगता है कि हम हिन्दू पौराणिक कहानी के बाद का निष्कर्ष पढ़ रहे हैं या कि किसी दलित की आत्मकथा।

इन प्रसंगों के अलावा और भी अनेक प्रसंग इस आत्मकथा में जो लेखक की अन्धश्रद्धा को, भाग्यवादी वृत्ति को उजागर करते हैं। जैसे—"चारपाई के ऊपर एक काला सर्प चढ़कर मेरे सिर के नजदीक से गया, इससे मैं भाग्यशाली हो जाऊँगा।"[53]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

प्रस्तुत आत्मकथा की भूमिका प्रो. कालीचरण स्नेही जी ने लिखी है। इस भूमिका में जिस प्रकार की प्रशंसा की गई है, वह काफी विवादास्पद है। इस आत्मकथा को क्रान्तिकारी कहना बहुत आसान है, परन्तु प्रमाणित करना बहुत कठिन है। स्नेही का यह वक्तव्य कि 'नागफनी' "ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' शरण कुमार लिंबाले की 'अक्कारमाशी', दया पंवार की 'बलूत', सूरज पाल चौहान की 'तिरस्कृत' से बहुत आगे निकल जाती है।"[54] वास्तव में यह वक्तव्य भी सम्बन्धित आत्मकथाओं पर अन्याय करने वाला है।

2.7 मेरा बचपन मेरे कन्धों पर : श्यौराज सिंह बेचैन

12 प्रकरणों में फैली यह आत्मकथा अपने आप में अद्वितीय स्थान रखती है। यह न केवल हिन्दी की आत्मकथा बल्कि भारतीय भाषाओं में लिखी आत्मकथाओं में विशिष्ट है। सम्भवत: भारतीय भाषा साहित्य में लिखी यह पहली आत्मकथा है जिसमें पढ़ाई के लिए उत्साहित एक दलित लड़के की संघर्ष कथा को, उसकी यातना को पूरे सन्दर्भों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इससे पहले की जितनी भी आत्मकथा प्रकाशित हुई उनमें आर्थिक संघर्ष की कथा उत्कट रूप में व्यक्त नहीं हुई। मोहनदास की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में वह संघर्ष कुछ मात्रा में है। परन्तु इस आत्मकथा में अनेक सन्दर्भ हैं। ये दलित हैं। छह वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हो गई है। माँ पुनर्विवाह कर दूसरे गाँव में चली गई है। इस प्रकार एक दलित, गरीब तथा सभी ओर से नकारे गये परन्तु पढ़ाई के प्रति विलक्षण आकर्षण रखने वाले एक संवेदनशील लड़के की आत्मकथा है। उसे छह वर्ष की आयु ही में रोटी के लिए श्रम करना पड़ रहा है। बाल-मजदूर के रूप में काम करते समय उन्हें जो भी अनुभव आते हैं, उसे पूरी तटस्थता के साथ रखने का प्रयत्न यहाँ हुआ है। इस पूरी आत्मकथा का कालखण्ड मात्र दस-बारह वर्षों का है। छह वर्ष की आयु से लेकर मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण होने तक। यह समय ज्यादातर बालकों के खेलने-कूदने, मटरगस्ती आदि के लिए होता है लेकिन श्योराज सिंह बेचैन ने प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए केवल रोटी के लिए भटकते रहे।

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के मदरौली नामक गाँव में होता है तथा जाति से चमार थे तथा पिता की मौत के साथ ही इनके जीवन में संकटों की शुरुआत होती है तथा इनके

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

दूसरे पिता का नाम रामलाल था परन्तु छह माह बाद ही उनसे सम्बन्ध टूट जाते हैं तथा माँ का तीसरा विवाह पाली नामक गाँव के भिखारी लाल के साथ हो जाता है। इसी घटना के साथ इस आत्मकथा का प्रहला प्रकरण समाप्त हो जाता है।

प्रकरण दो में माँ के साथ भिखारी लाल के घर पाली में आते हैं। पूरी आत्मकथा में इस भिखारी लाल का चरित्र अनेक प्रसंगों के माध्यम से उभारा गया है। भिखारी लाल काम तो बहुत करता है लेकिन छोटी-छोटी बातों को लेकर इसकी माँ से झगड़ता है। पहली पत्नी की सन्तान तथा दूसरी पत्नी की सन्तान में वह पक्षपात करता है। बचपन में एक दिन भूख से परेशान होकर ढड़ायन के बीज उबाल कर खाने से विषबाधा हो जाती है। भूख से आदमी कितना परेशान हो जाता है, इसका रोंगटे खड़े होने वाला चित्रण इस आत्मकथा की उपलब्धि है। वास्तव में इस आत्मकथा के केन्द्र में 'भूख' ही है। भूख के कारण श्यौराज जी को क्या-क्या करना पड़ता है इसका मर्मस्पर्शी चित्रण इसमें किया गया है। 'रोटी' और 'मजदूरी' के बीच 'जाति' दीवार बनकर खड़ी हो जाती है, जाति के कारण रोटी और दूर जाने लगती है। जाति के कारण भूख की तीव्रता अथवा 'भूख' के बीच की दूरी अधिक बढ़ने लगती है।

प्रकरण तीन के अन्दर इनकी माँ ने रिश्ता तोड़ दिया है और अब वह भिखारी की बहू बनकर पाली में रह रही है। उनके साथ पहले पति से हुए बच्चे भी हैं अर्थात् श्यौराज, उसका भाई और बहन। गाँवों में उस समय दलितों की स्थिति भयावह है। गाँव के सवर्ण महाजन उनका भयावह आर्थिक शोषण करते रहते हैं। वे लिखते हैं कि, "जातिभेद के साथ-साथ अर्थभेद की खाई गहरी होती जा रही है। वह भी समतामूलक संविधान लागू हो जाने के उपरान्त। विज्ञान, तकनीक और लोकशाही के इस युग में, 20वीं शती के उत्तरार्द्ध में हमारे परिवार आज भी 16वीं सदी का जीवन ढो रहे हैं।"[55] तो दूसरी तरफ दलित और सवर्ण अपनी जाति या उपजाति की संकुचितता से बाहर आने को तैयार नहीं है। श्यौराज जी चमार जाति से सम्बन्धित हैं। परन्तु इन चमारों में कई उपजातियाँ हैं। "दंगइया, चर्म शोधक, या चर्मकार और भट्टे पर जाने वाले जाटव भूमिहीन थे। जो थोड़ी-बहुत जमीन के मालिक थे, वे न चमड़े का काम करते थे, न भट्टों पर जाते थे, सिर्फ खेती और मजदूरी करते थे। यहाँ भी चमारों के दो मोहल्ले थे। आज भी अलग ही हैं। इनके अलग-अलग कुएँ थे। बारातें भी अलग-अलग ठहरती थी। इनमें परस्पर खान-पान नहीं होता था। गैर

दलितों की दृष्टि से ये सब चमार थे।"[56] पाली में ही श्यौराज की शिक्षा आरम्भ होती है लेकिन पिता के द्वारा पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता तथा एक बार तो उसकी पुस्तक तक जला दी जाती है। बचपन से श्यौराज की पढ़ने की लत थी। इस लत के कारण वह घर से एक रुपया चुराता है तथा इसका परिणाम उसकी माँ की पिटाई से निकलता है। पिटाई के दौरान वह बेहोश तक हो जाती है। इस घटना को श्यौराज चुपचाप देखता रहता है तथा अपने अपराध की सजा माँ को मिलती देख उसे बहुत दु:ख होता है तथा अपने अपराध को माँ के सम्मुख कबूलने की उनकी इच्छा कभी पूरी नहीं होती है। इस घटना के कारण उनकी पढ़ाई छूट जाती है तथा उनको ईंट भट्टों पर मजदूरी के लिए भेज दिया जाता है। इस प्रकारण में वे लिखते हैं—"ज्यों-ज्यों स्वतन्त्रता की उम्र बढ़ रही है दलितों का दायित्व, दरिद्रता और सवर्णों की समृद्धि, सवर्णता और जातीय विद्वेष की भावना बढ़ती जा रही है।"[57]

प्रकरण चार में अपने पुरखों का परिचय बतलाया गया है। वे मुर्दा मवेशी उठाने का काम करते थे। इन पर पिता के स्नेह की छाया थी। वे जूते बनाते थे। छुआछूत और श्रेष्ठता-कनिष्ठता की भावना वहाँ भी मौजूद थी। बचपन में श्यौराज के एक भंगीन की रोटी खाने के कारण उनकी पिटाई हो जाती है।

प्रकरण 5 में बहन माया के विवाह का वर्णन है। बहन माया की शादी के बाद लेखक अपने आपको अकेला महसूस करते हैं—"मेरे पिता नहीं है। माँ भी मेरे पास नहीं रहेगी। वह पाली चली जाएगी। मेरे साथ एक बहन थी वह भी जा रही है। मेरा आत्मीय कौन रहेगा यहाँ? मेरा हृदय अपने अकेले होने की आशंका से डर गया था।"[58]

बहन की शादी के बाद उसके जीजा जी बीमार पड़ जाते हैं, उन्हें स्वस्थ करने हेतु अन्धश्रद्धा के अनेक उपचार किए जाते हैं। इसी दौरान कम आयु में श्यौराज जी गठिया की बीमारी से परेशान हो जाते हैं। जीजाजी को इलाज के लिए दिल्ली में भरती करवाया जाता है लेकिन फायदा नहीं होता है तथा कुछ दिनों बाद उसके जीजाजी गुजर जाते हैं। उसकी बहन कम आयु में ही विधवा हो जाती है। दिल्ली जैसी जगह पर जीजाजी का अन्तिम संस्कार कैसे किया जाय? इसके लिए अन्ततः चन्दा इकट्ठा कर कफन खरीदते हैं। इस परिवार को सतत् त्रासदियों का शिकार होना पड़ता है। इधर श्यौराज की गठिया की बीमारी, विधवा बहन, माँ की सतत् मार-पीट। चाचा अन्धे। इन दिनों श्यौराज का मजाक उड़ाते हुए

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

उसके मित्र कहते हैं, "अब नाइ ठीक रहेगी। जो खानदार ही ऐसो है। जाने काई अन्धे, कोई लंगड़ो ही होत है। सही सलामत होत ही कौन है? और जो होत है सो मरिजातु है।"[59]

रोजगार की तलाश में छोटा श्यौराज माँ के साथ बाजपुर निकल जाता है। यहाँ सरदारों की खेती है। भरपूर काम उपलब्ध है। खाना ठीक मिलता है। मजदूरी भी। एक दिन श्यौराज की इच्छा तालाब में तैरने की होती है जिसमें संयोगवश ही मृत्यु से बच पाते हैं। यहाँ पर इन्हें एक बार साँप ने काटा, एक बार डूबते-डूबते बचे। इसी कारण माँ बाजपुर छोड़ना चाहती है। एक दिन वे बाजपुर से निकल जाते हैं, लेकिन पाँच साल बाद काम की तलाश में वापस बाजपुर आ जाते हैं। वहाँ पर वे ईंट थापने के काम पर लग जाते हैं।

प्रकरण 7 में भूख से परेशान होकर एक दिन श्यौराज दो रोटी भर की चोरी करते पकड़े जाते हैं। तब उनकी आयु 8 साल की थी। यहाँ से ईंट थापने के लिए बुआ के पति अपने गाँव ले जाते हैं। रोटी के लिए मजदूरी और मजदूरी के लिए दर-दर भटकना यह इस आयु के श्यौराज की नियति थी। मजदूरी के लिए वे रामपुर भी गये। उनके अंधे ताऊ की पत्नी ताई उनके लिए अन्धेरे में लौटती रोशनी थी। अन्धे ताऊ को छोड़कर एक दिन ताई भी निकल जाती है।

प्रकरण 8 में वे अपने ताऊ के साथ बीते दिनों को याद करते हैं। ताऊ अन्धे जरूर थे लेकिन काम के पक्के थे। उन दिनों वहाँ पर गन्ने की खेती होती थी जिसके कार्य में वे लगे रहते थे लेकिन उनको मिलता बहुत कम था, "कभी सेर आधा सेर अन्न, कभी दो वक्त की रोटी तो कभी जीवन की लदोई।"[60] इसी दौरान काम करते वक्त इनके ताऊ के कपड़े जल जाते हैं, जिसका वर्णन श्यौराज जी ने 'मेरे पूर्वज' नामक अपनी एक कविता में किया है।

प्रकरण 9 में दिल्ली का वर्णन किया है। यहाँ पर वे अपने मौसाजी देवीदास के साथ काम की तलाश में आते हैं। इस आत्मकथा में जितने भी रिश्तेदार आये हैं उनमें देवीदास जी बेहद समझदार, संवेदनशील और श्यौराज के प्रतिआत्मीयता रखने वाले अपवादात्मक व्यक्ति है। यहाँ आने के बाद ही श्यौराज जी के जीवन में दूसरा मोड़ आता है। श्यौराज जी के शब्दों में, "दिल्ली जैसी बड़ी दुनिया में उनके ये छोटे कदम थे।" वे लिखते हैं कि हम दलितों के पास विरासत में सिवा हाथ-पाँव के जमीन जायदाद कुछ भी

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

नहीं है अर्थात् हाथ-पाँव के सिवा बुद्धि तथा प्रतिभा भी उन्हें विरासत में मिली है। इसी बुद्धि और प्रतिभा से वे समस्याओं का सामना कर सके। दिल्ली में रहकर वे मजदूरी करने लगते हैं लेकिन कुछ दिन बाद ही कार्य को छोड़ देते हैं तथा अखबार डालने का काम करते हैं। लेकिन इसमें ज्यादा परेशानी होने पर कॉलोनी में जाकर नींबू बेचने का कार्य करते हैं। दिन में नींबू बेचना और फिर स्कूल जाना। इस प्रकार इनकी रुकी पढ़ाई फिर से शुरू होती है। नींबू बेचते समय वे अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं। वे एक स्थान लिखते हैं—"आजाद देश की सरकारों ने मेरे जैसे लावारिसों के लिए कौन-से स्कूल खोले थे, जहाँ पढ़ाई होती, काम होते और छात्र-जीवन में रोटी की अतिरिक्त चिन्ता न होती।"[61] इनकी ईमानदारी से प्रभावित होकर दिल्ली का एक पंजाबी परिवार इन्हें गोद लेकर इनकी पूरी पढ़ाई कराने का प्रस्ताव इनकी माँ के सामने रखते हैं परन्तु इनकी माँ इसके लिए राजी नहीं होती है।

दिल्ली से फिर नदरौली लौटने के कारण इनकी पढ़ाई फिर से छूट जाती है। इस बार बहन के गाँव मिर्जापुर जाते समय रात में बस के अन्दर उन्हें बहुत बुरा अनुभव होता है। अपनी बुद्धिमत्ता के कारण इस संकट से बाहर निकलते हैं। फिर कुछ समय बाद काम की तलाश में दिल्ली वापस आ जाते हैं।

यहाँ पर इन्हें एक होटल में काम मिलता है। वहाँ पर वे अपने अन्धे ताऊ के साथ रहते हैं। दोनों मिलकर मेहनत-मजदूरी करते हैं। एक बार तो वह बैंड वाले के गिरोह में बाजा बजाने का काम भी करते हैं। यहाँ फुटपाथ पर रहते हैं, वहीं सोते हैं। एक दिन इस फुटपाथ से भी विदाई हो जाती है।

एक बार उन्हें स्कूल भवन निर्माण में मजदूरी करने ले जाया जाता है। वहाँ पर वे अपनी कविता सुनाते हैं। इस कविता के कारण उनके जीवन में तीसरा मोड़ आ जाता है। यहीं से इनकी पढ़ाई की व्यवस्था हो जाती है। यहीं पर प्रेमपाल यादव नामक शिक्षक थे, जो इनकी पढ़ाई की व्यवस्था करवाते हैं। उनकी शर्त यह थी कि वह उनके खेत पर और घर पर काम करें और उन्हीं के स्कूल में पढ़ाई करें। प्रेमपाल जी भले ही आर्यसमाजी आदर्शवादी थे लेकिन व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त धूर्त, कंजूस और शोषक भी थे। श्यौराज से भरपूर काम करवाते हैं तथा रोज स्कूल जाने नहीं देते। उनकी शिष्यवृत्ति भी

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अपनी जेब में डालते हैं। एक लम्बी अवधि के बाद श्यौराज छठी कक्षा में प्रवेश लेते हैं। एक दिन स्कूल में उसकी कविता सुनने के बाद कविता को पहला पुरुस्कार दिया जाता है तथा इनको लगभग 40 रुपये इनाम में मिलते हैं।

प्रकरण दस में श्यौराज अपने दूर के एक मौसेरे भाई नत्थुलाल का परिचय कराते हैं। ये नत्थूलाल जी भी भयंकर प्रतिकूल परिस्थितियों में एम.बी.बी.एस. की पढ़ाई कर रहे हैं तथा इनकी सहायता भी करते हैं। इन्हीं के कारण श्यौराज जी का परिचय वाम विचारधारा से हो जाता है। 1976-77 में श्यौराज जी नौवीं कक्षा में प्रवेश लेते हैं। यहीं वे स्पष्ट करते हैं कि स्कूल में दलित छात्रों की छात्रवृत्ति का तमाशा कैसे चलता है। यहाँ पर प्रेमपाल सिंह यादव साल में एक बार इनसे छात्रवृत्ति का फार्म भरवा लेते हैं तथा सभी शिक्षक प्रधानाचार्य दलित छात्रों की छात्रवृत्ति को खा जाते हैं। प्रेमपाल सिंह दुनिया को बतला रहे हैं कि मैं एक प्रतिभाशाली दलित बालक की पढ़ाई करवा रहा हूँ तो दूसरी तरफ उनसे दिन-भर मेहनत-मजदूरी करवा के ऊपर से अभिभावक की भूमिका निभाकर उनकी छात्रवृत्ति डकार रहा है। एक और मानवीयता का भी अनुभव है। मास्साब के विवाह के समय का यह प्रसंग है। बऊ श्यौराज को पत्तले बिछाने के लिए कहते हैं। एक चमार के हाथों पत्तले बिछाई जा रही हैं, इसे देख कुछ सवर्ण संतप्त हुए। तब बऊ ने इन सवर्णों को कहा कि, "तू खाई तो खा। नाईं तो अपने घर जा। ज्यादा पण्डिताई दिखानी होइ तो अपने घर दिखाइये। सोराज मेरो बेटो जैसौ है। मैं नहीं मानती तुम्हारी छआछूत।"[62] पूरी आत्मकथा में यही प्रसंग अपवाद रूप में है जहाँ एक अशिक्षित स्त्री सवर्णों को चुनौती देती खड़ी है। वैसे मास्साब भी कभी भी उसके दलितत्व को लेकर कोई टिप्पणी नहीं करते।

मैट्रिक कक्षा में आने के बाद वे पड़ोस के एक गाँव में रहते हैं। दिन-भर मजदूरी और रात को पढ़ाई। यहाँ इनके बुआ की एक पड़ोसन थी सुन्दरिया। वह श्यौराज को बहुत चाहती थी। इसका पति महिने-महिने घर से दूर रहता था। यह श्यौराज से आयु में काफी बड़ी थी। परन्तु शारीरिक भूख के कारण वह श्यौराज को अधिक निकट कर रही थी। श्यौराज को पहला स्त्री सुख का अनुभव इससे ही होता है। वह भी स्पर्श-आलिंगन तक ही सीमित था।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अन्ततः कठोर परिश्रम के कारण श्यौराज दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण हो ही जाता है। इस समय इनकी आयु 18 वर्ष की थी अर्थात् 12 वर्ष तक उन्होंने जो यातना भोगी है, जो विभिन्न काम किए हैं, जिन सैंकड़ों लोगों के सम्पर्क में आए हैं वह सब कुछ विलक्षण यातनामय है।

इस आत्मकथा को पढ़ने के बाद यह मालूम होता है कि वास्तव में यह आत्मकथा देश की विषम समाज व्यवस्था पर तथा यहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर अनेक प्रश्नचिह्न लगाती है। यह आत्मकथा एक दलित व्यक्ति की ही नहीं इस देश के उन तमाम श्रमिक बालकों की आत्मकथा है जो रोटी के लिए तरस रहे हैं तथा मेहनत-मजदूरी करके पेट की अग्नि को शान्त करते हैं तथा इस आत्मकथा में एक ऐसा बालक जो मजदूरी करके अपने भीतर अनेक सपनों को संजोते हुए पूरी जद्दोजहद के साथ मेहनत-मजदूरी करता है और अपने सपने को पूर्ण करने के लिए प्रयत्नशील भी।

2.8 झोपड़ी से राजभवन : माताप्रसाद

'झोपड़ी से राजभवन' दलित साहित्यकार एवं राजनेता माताप्रसाद की आत्मकथा है। यह आत्मकथा अन्य आत्मकथाओं से हटकर है क्योंकि इसमें साहित्यकार के साथ-साथ एक राजनेता का व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है। माताप्रसाद जी के पाँच भाई और दो बहनें थीं। लेखक के पिताजी चमड़े का व्यवसाय करते थे। इसी से घर-परिवार का खर्चा चलता था। इसी अभावग्रस्त माहौल में लेखक का बचपन गुजरा। इसके बारे में लेखक लिखते हैं, "मछली शहर कस्बे के क़ाजियाना मोहल्ले की दलित बस्ती के पश्चिमी किनारे पर जिस छोटे-से घर में मेरा परिवार रहता था वह भूमि पड़ोस के एक पठान की थी। इसमें एक छोटा कच्ची दीवार का खपरैल का कमरा और उसके सामने एक बड़ा छप्पर का ओसारा था। माँ कमरे के भीतर ही चूल्हे पर लकड़ी से ही खाना बनाती थी। ओसारे में ही सभी भाई-बहिन एक चारपाई पर तीन-तीन लोग सोते थे। एक फर्लांग दूर दक्षिण तलिया के किनारे सभी टट्टी-फरागत जाते थे। कुछ दूर से कुएँ से मिट्टी के घड़े में पानी रस्सी से खींचकर माँ या बड़े भाई लाते थे। कुएँ पर ही हम लोग नहाते थे। घर में माँ चार बजे सवेरे ही उठकर चक्की चलाकर आटा पिसती, बरतन-घर द्वार साफ करती।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सभी को बासी जौ या मक्के की रोटी, कड़वा तेल नमक रखकर दिया जाता। उसे खाकर मैं पढ़ने जाता। दोपहर को खाना नहीं बनता, मकई का दाना या महुआ भूनकर दिया जाता था। कभी-कभी गुड़ भी मिलता था। शाम को जौ की रोटी या मक्के की रोटी बनती थी। सब्जी कभी नहीं बनती थी। दाल-चावल हर रोज दुकान से खरीदकर आता था।"[63]

माता प्रसाद की शिक्षा का प्रारम्भ मोहल्ले में ही 'बब्बा' नामक व्यक्ति से हुआ, लेकिन आठ दिन में ही 'बब्बा' के इलाहाबाद चले जाने से उनकी पढ़ाई भी बन्द हो गई। इसके बाद मछली शहर कस्बे के उमराना मोहल्ले में मुँशी माता प्रसाद नामक व्यक्ति ने एक अछूत लोअर प्रायमरी स्कूल खोला जिसमें लेखक का घर का नाम 'मितईराम' लिखा गया। यहीं से नौ वर्ष की आयु से उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। दो साल पढ़ने के बाद मछली शहर में प्राइमरी स्कूल में उनका दाखिला हुआ। इनको ओमप्रकाश एवं सूरजपाल चौहान की तर द्रोणाचार्य जैसे गुरुओं से पाला नहीं पड़ा तथा स्कूली जीवन में ज्यादा छुआछूत का सामना भी नहीं करना पड़ा था। इनका विवाह भी बचपन में ही हो गया था जिसके परिणामों का खुलासा भी लेखक अपनी आत्मकथा में किया है। "कक्षा पाँच में पढ़ते समय ही मेरा गौना लगभग चौदह वर्ष में ही हो गया था। परिवार में माता-पिता के अलावा मेरे बड़े भाई की पत्नी तथा मेरे दूसरे भाई थे। मेरे बड़े भाई राजगिरी करते थे। मैं कोई कमाई नहीं करता था, इसलिए मेरी भाभी इसका गुस्सा मेरी पत्नी पर उतारती थीं। वह कहती थी कि तुम्हारे मर्द तो कुछ नहीं कर रहे हैं इसलिए तुम्हें उनके बदले में काम करना पड़ेगा। उन्हें घरेलू काम खाना बनाना, दरवाजे व घर की सफाई के साथ ही चार बजे प्रात: उठकर चक्की पिसाई, पशुओं के लिए नाद में पानी भरने, गोबर उठाने, उपला थापने, घास छीलने का काम तो करना ही पड़ता था, कभी-कभी दूसरे के खेतों में मजदूरी करने भी जाती थी। कभी घर पर ही मकान बनाने के लिए मिट्टी की ढुलाई, पुरवट हंकाई, खेत में पानी सिंचाई, जेठ की दोपहरी में गन्ने की गुड़ाई करनी पड़ती। चैती फसल की कटाई, रबी की फसल की ढुलाई, चेती की दवाई, मक्के निराई-गुड़ाई सभी काम करने में आगे रहती थी। पढ़ने के कारण मैं इन कामों को कम ही करता। हाँ, कभी-कभी माँ भी ताना मारती थी कि पढ़-लिखकर मुँशी, दरोगा, होगा तो अपने लिए कि दूसरे के लिए। श्रीमती जी कुछ न बोलती। जो मिलता खा लेती, जो काम होता, खुशी से करती।"[64]

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

माताप्रसाद जी की सफलता में बड़ा योगदान उनकी पत्नी का रहा। उनकी सहनशीलता और उदारता की हद थी। वह स्वयं आधा पेट भोजन पर भी सन्तुष्ट हो जाती थी लेकिन अपने दुध मुँहे बेटे के दूध के लिएभी उन्होंने कभी शिकायत नहीं की। वे अपने बेटे को कुनकुने पानी में रूई भिगोकर पिलाती थी। इसके बारे में एक जगह लेखक लिखते हैं—"श्रीमती जी ने मेरे लिए जो त्याग किया, कष्ट उठाया है, वह अविस्मरणीय है।"[65]

अपनी प्राईमरी शिक्षा के बाद लेखक ने मिडिल स्कूल में अंग्रेजी पढ़नी चाही लेकिन उम्र अधिक व हॉस्टल की मेस में छुआछूत होने के कारण वे नहीं कर पाये और उर्दू मिडिल से अपनी शिक्षा पूरी की। इसके बाद शिक्षक पद के लिए आवश्यक नार्मल ट्रेनिंग स्कूल में एडमिलन लिया। छात्राध्यापक के रूप में रहने के साथ-साथ कोविंद की परीक्षा पास की।

बढ़ती उम्र के साथ लेखक को जातीयता के अनेक कटु अनुभव भी भोगने पड़े, जिसके बारे में लेखक लिखते हैं—"हमें वहाँ पढ़ते हुए दो ही हफ्ते हुए थे कि एक दिन जब स्कूल के हैडमास्टर शिवशंकर सिंह नहीं थे, पास के गाँव गोधूपुर के एक तिवारी आए, उन्होंने मुँशी लक्षिमनराम से कहा कि 'चमार' होकर तुमने हमारे ब्राह्मण लड़के को क्यों मारा? यह कहकर उन्होंने मुँशी जी के गाल पर एक झापड़ लगा दिया। हम सभी लड़के चुप होकर देखते रहे। मुँशी जी भी कुछ नहीं बोले। दूसरे दिन हैडमास्टर शिवशंकर सिंह आए तो उन्होंने पंडित जी के प्रति बड़ी नाराजगी प्रकट की। इसके बाद मुँशी जी अपना ट्रांसफर वहाँ से कराकर चले गये। इसका प्रभाव मुझ पर पड़ा कि ब्राह्मण कोई ऐसी जाति है जिसे गलती करने पर भी दण्डित नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों के प्रति मेरी धारण उस समय अच्छी नहीं रही।"[66]

लेखक ने सवर्णों के द्वारा की गई छुआछूत का वर्णन तो किया है साथ ही दलितों के अन्दर विद्यमान जाति अहम की भावना का जिक्र भी ईमानदारी के साथ स्पष्ट किया है। "कभी-कभी जाति के भीतर ही कुछ लोग भेद-भाव करते हैं। इसे देखकर बड़ा दु:ख होता। एक बार शाहगंज के पास ताखा गाँव में अपनी जाति की बस्ती में गया। मैं विधायक था। उस बस्ती के लोग कबीरपंथी थे। मेरे पहुँचने पर सब लोगों ने मुझे बैठाया, फिर पानी पीने के इन्तजाम के समय पूछा कि आप भक्त हैं या सकत। मैंने कहा कि मैं भक्त नहीं हूँ।

इस पर अलग से रखे गए एक बर्तन को लाकर उसमें मुझे पानी पीने को दिया गया। फिर कभी मैं उस बस्ती में नहीं रूका। सन्त कबीर साहब ने जिस भेद-भाव और छुआछूत को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाया, उन्हीं के तथाकथित भक्त फिर भेद-भाव-बरतने का प्रयास कर रहे हैं, यह जानकर मुझे बड़ा दु:ख होता था।"[67]

माताप्रसाद जी ने समाज सुधार के अनेक बार भाषणों के माध्यमों से दलितों को जागृत करने की कोशिश की लेकिन उनके ऊपर इसका असर कम ही हुआ क्योंकि वे सदियों से ज्ञान व शिक्षा के अभाव के आदि हो चुके थे। तब उन्होंने लोकगीतों के माध्यम से जनजागृति फैलाई जिसके कारण लोगों में इसका सीधा प्रभाव पड़ सके, क्योंकि यह उनके मनोरंजन का एकमात्र माध्यम था। यहीं से उनके लेखकीय जीवन की शुरुआत हुई। उन्हीं के शब्दों में, "उस समय जिले में स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बन्धित श्री रामकुमार वैद्य के गीत सुनने के नाम पर हजारों लोग इकट्ठे हो जाते थे। इसलिए मैंने सोचा क्यों न लोकगीत में समाज सुधार और जागृति की बातें कही जाएँ। इसलिए मैंने बहुत-से लोकगीत, जिनमें कहरवा, पूर्वी कजली, भरतल्ला, विरहा आदि लिखें। पहले इन्हें सन् 1948 ई. में हरिजन ग्राम्यगीत के नाम पर इलाहाबाद जाकर छपवाया फिर विधायक होने पर संशोधित किया। इसके कुछ गीत निकाल दिए, कुछ नए गीता मिलाकर 'दलित समाज सम्बन्धी लोकगीत' के नाम पर एक पुस्तिका छपी।"[68] इसके बाद समाज सुधार और लोकगीतों के कारण लेखक की लोकप्रियता बढ़ती गई। साहित्यकार के साथ-साथ कुशल राजनेता के रूप में भी माताप्रसाद सफल व्यक्तियों में से एक थे। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता 'रउफ जाफरी' ने लेखक को राजनीति में प्रवेश दिलवाया। उन्होंने लेखक को अध्यापक की नौकरी छोड़कर राजनीति में आने पर पूरा सहयोग दिया तथा सन् 1955 में लेखक जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री बनें। उन्होंने पहला विधानसभा चुनाव शाहगंज से सन् 1957 में लड़ा। वे पाँच बार विधायक, दो बार विधान परिषद् के सदस्य भी रहे हैं तथा अन्ततः इसकी परिणिति अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल जैसे सर्वोच्च पर आसीन हुए। एक सर्वोच्च पद पर ईमानदारी से कार्य करते हुए उन्होंने अपने बच्चों को भी मेहनत, ईमानदारी के संस्कार दिए तथा अनेक जगह लेखक ने अपनी पत्नी के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट किया। "सन् 1957 ई. में प्रथम बार जब विधानसभा का चुनाव लड़ने लगा तो मेरे पास कुछ भी पैसा नहीं था। श्रीमती जी के चार-पाँच चाँदी के गहने को बेचा गया जिससे पौने

पाँच सौ रुपये मिले। इसी रुपये से जमानत राशि 125 रुपये जमा की गई। श्रीमती के गहने जो गए तो आज तक मैं उन्हें बनवा न सका।"[69]

इस आत्मकथा को पढ़ने के उपरान्त यह पता चला कि लेखक को डायरी लिखने की आदत थी। उसके जीवन की प्रत्येक घटना, तारीख व समय के साथ लिखी हुई है तथा उन्होंने अपने लिखने के पीछे निहित उद्देश्य को भी स्पष्ट किया है। "मैरे जैसा निर्धन और दलित परिवार में पैदा हुए व्यक्ति, जिसकी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थी, उसने भी कठिनाईयों को दूर करते हुए आगे की ओर कुछ कदम बढ़ाया है, इस पर मेरे मन में यह विचार आया कि अपने बारे में भी क्यों न लिखूँ? इससे समाज के दलित, असहाय, गरीब लोगों को प्रेरणा मिलेगी और उनमें उत्साह पैदा होगा। दूसरा कारण इसके लिखने का यह रहा है कि जिन कठिनाइयों, परिस्थितियों को मैंने भोगा है, उसे हमारे लड़के, पौत्र-पौत्रियां या दूसरे दलित जाति के युवकों को हमेशा याद रखना चाहिए। अपने को जातीयता की हीन ग्रन्थि से बाधित नहीं रखना चाहिए।"[70]

इससे यह स्पष्ट होता है कि 'झोपड़ी से राजभवन' न केवल माताप्रसाद जी की आत्मकथा है बल्कि अपने-आप में दलित जीवन में आने वाली एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, जो दलित समाज की आने वाली पीढ़ियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है साथ ही एक निर्धन एवं अभावग्रस्त व्यक्ति के राजभव तक पहुँचने की यह आत्मकथा अपने-आप में अनूठी मिसाल है।

2.9 शिकंजे का दर्द : सुशीला टाँकभौरे

सुशीला टाँकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में प्रारम्भ में 'शिकंजे' शब्द के अनेक अर्थों को स्पष्ट किया गया है, जिसमें शिकंजे का अर्थ एक प्रकार का प्राचीन यन्त्र है, जिसमें अपराधी की टाँग कस दी जाती है। शिकंजा वह यन्त्र है, जिसमें धुनकने के पहले रूई कसा जाता है। शिकंजे का अर्थ कोल्हू भी है। वास्तव में यह शब्द देश की नहीं अपितु स्त्री जाति की आज की नियति को रेखांकित करने वाला अत्यन्त सार्थक शब्द है। पुरुष पंजे अथवा उसकी जकड़न में फँसी स्त्री की यह आत्मकथा है।

स्त्री के लिए विवाह एक शिकंजा ही है, जिसमें कैद रहकर वह जिन्दगी के सुख-दु:ख के पलों को व्यतीत करती है तथा परिवार में कोल्हू के बैल की तरह दिन-रात काम

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

करते रहने पर भी उसे कोई सुख नहीं मिलता है। यहाँ पर शिकंजे के दर्द को सहती हुई स्त्री अपने लक्ष्य की ओर केवल बढ़ती ही नहीं बल्कि मंजिल तक पहुँच भी जाती है।

सुशीला जी दलितों की सबसे उपेक्षित जाति (भंगी) से सम्बन्ध रखती हैं। दलित जाति में जन्मे स्त्री के दर्द का स्वरूप बहुआयामी होता है। वह एक नहीं दो शिकंजों में जकड़ी हुई होती है। एक शिकंजा पुरुष और उसकी अहंवादी मानसिकता का है और दूसरा शिकंजा वर्णवादी समाज की मानसिकता का है। घर और बाहर दोनों ओर वह शिकंजों में फँसी हुई रहती है। इसलिए दलित स्त्री-पुरुष की तुलना में ज्यादा पीड़ित होती है। दलित पुरुष घर पर तो 'राजा' ही होता है। घर और उसके सदस्य उसके नियन्त्रण में रहते हैं परन्तु दलित स्त्री घर और बाहर दोनों जगह अपमानित हैं। इसी कारण बाबा साहेब कहा करते थे कि स्त्री दलितों में भी दलित है।

सुशीला जी का जन्म मध्यप्रदेश के बानापुरा गाँव में 1954 में होता है। इनके पिताजी नानी के गाँव में ही रहते थे। पिताजी रेलवे में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे। इनकी माँ अशिक्षित परन्तु बहुत समझदार थी। उनके कारण ही इनकी पढ़ाई शुरू हुई। उस समय व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए सुशीला जी कहती हैं कि दलित या भंगी गाय नहीं पाल सकते थे। वे भैंस या सुअर पाले, गाय को भंगी नहीं उठा सकता। इस पर चमारों का अधिकार है। इस प्रकार का भेद खेलों में भी था। सवर्णों के खेल अलग, दलितों के खेल अलग। इनकी नानी अक्सर अंग्रेजों की तारीफ करती थी। "गोरे बड़े दयावान थे। सबको समानता की नजर से देखते थे। उन्होंने हमसे कभी भेद-भाव नहीं किया। अपने देश के लोगों के मन में हमारे लिए (भंगी जाति के लिए) कभी ऐसी भावना नहीं रही। अंग्रेजों के आने से ही हमारे बच्चों को पढ़ने-लिखने का मौका मिला, नहीं तो हमारे देश के वामन-बनिया कभी उन्हें स्कूल में पढ़ने नहीं देते।"[71] एक अशिक्षित श्रमिक स्त्री के उद्‌गार वास्तव में इतिहास के बहुत बड़े सच को रेखांकित करता है। अंग्रेजों ने शिक्षा के दरवाजे सभी के लिए खोल दिए थे।

लेखिका के दोनों भाई दलित होने के कारण ही उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। लेखिका के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। बचपन के कई प्रसंग ऐसे हैं जब इनको भूखे रहना पड़ा। दलित आत्मकथाकारों की तरह वे स्पष्ट करती हैं कि दलितों में

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

जातिवाद भयानक स्थिति में हैं। पासी और पारधी से भंगी जाति को निम्न जाति माना जाता है। एक निरीक्षण में वह रेखांकित करती है कि हिन्दुओं की यह छुआछूत की भावना केवल हिन्दू के अन्तर्गत ही हैं। "हिन्दू महाजन मुसलमान ताँगे में बैठ सकते हैं परन्तु हिन्दू अछूत के साथ नहीं। हिन्दू धर्म की छुआछूत हिन्दू धर्म की सीमा के अन्दर है।"[72]

19 वर्ष की आयु में इनकी बी.ए. हो जाती है। 20 वर्ष की आयु में इनका विवाह उनसे 18 वर्ष बड़े टाँकभौरे जी के साथ सन् 1974 को हो जाता है। विवाह के बाद नागपुर ससुराल आ जाती हैं। यहाँ उनके जीवन का पूर्वार्द्ध समाप्त हो जाता है। यहाँ आने के बाद सब कुछ बदल जाता है। शहर, प्रदेश, भाषा तथा ससुराल वाले नये।

अत्यन्त संवेदनशील ऐसी यह युवती अपने से 18 वर्ष बड़े व्यक्ति के साथ वैवाहिक जीवन जीना चाह रही है। इस वैवाहिक जीवन की शुरुआत अत्यन्त प्रतिकूल और संवेदनशून्य परिवेश में होती है। एक कमरे में करीब सात-आठ लोग रहते हैं। सास, ननद, उसके पति, उनके बच्चे। पति और इनकी वैवाहिक जीवन की यह शुरुआत बड़ी करुण और गैर-रोमांटिक है। पति-पत्नी को एकान्त तक नहीं मिल पा रहा है। पति का स्वभाव रूखा। सुशीला जी के वैवाहिक जीवन को वास्तविक रूप से शिकंजे में जकड़ा जीवन की साक्षात् अनुभूति होती है तथा यहीं से पाठकों को शिकंजे के दर्द का एहसास भी होने लगता है। कई दिनों तक शायद महिनों तक एक छत के नीचे रहते हुए भी अपने पति से इनका शारीरिक सम्बन्ध ही नहीं हो पाता। दोष न पति का है न इनका। दोष उस परिवेश का और एक कमरे में रहने वाले अन्य सदस्यों की नासमझी का है। इनके पति में भारतीय पुरुष की तरह सारे दोष हैं, फिर भी इनमें एक विशेषता है कि वे पत्नी को आगे बढ़ाने की इच्छा रखते हैं। इसी कारण जब वे बी.एड. करने की सोचती है तो इसके लिए प्रयत्न करते हैं। वे भी शिक्षक ही हैं और एक शिक्षक के नाते वे इतनी शैक्षिक योग्यता को बढ़ाने हेतु प्रयत्न करते हैं। उस एक ही कमरे में रहते हुए, घर के सारे काम-काज करते हुए ये बी.एड. हो जाती हैं तथा नागपुर के मातृसेवा संघ में नौकरी करने लगती हैं। कुछ ही महीने बाद इनकी भी नियुक्ति पति के स्कूल में अध्यापिका के रूप में हो जाती हैं। नागपुर में टाँकभौरे जी का खुद का मकान तो था नहीं, किराये का मकान ढूँढ़ना और वो भी एक दलित—भले ही वे कितने ही पढ़े-लिखे हों सवर्ण मकान किराये पर देने की स्थिति में नहीं थे।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

इस संदर्भ में सुशीला जी कहती है कि, "हमारे देश में अभी तक व्यक्ति और समाज का मूल्यांकन जाति के आधार पर ही है।"[73] वास्तव में सुशीला जी आर्थिक शोषण और घरेलू हिंसा की शिकार हो जाती है उन्हें किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं, उनका संपूर्ण वेतन उनके पति निकाल लेते हैं। पति पत्नी दोनों का वेतन कैसे खर्च होता है, यह पूछने पर उनकी पिटाई की जाती है। उन्हें हमेशा लगता है कि,"मैं पति से 20 साल छोटी हूँ इसलिए वह मुझे डकारकर रखते थे कि मैं जवाब-सवाल न करने लगूँ।"[74] सुशीला जी के मन में छटपटाहट तो है, आक्रोश है। परन्तु कुछ भी कर न पाने की व्यवस्था भी। इनके परिणामस्वरूप उनका यह आक्रोश सृजनात्मक रूप में अभिव्यक्त हो पाता है। कल्पना शक्ति और प्रतिभा के बल पर कविता, कहानियाँ लिखती हैं तथा शिक्षिका होने के कुछ वर्षों बाद ही एम.ए. हिंदी से करने की उनकी इच्छा हो जाती है तथा पति का सहयोग मिलने पर एम.ए. भी हो जाती हैं और आरक्षण का लाभ पाकर प्राध्यापिका भी बन जाती है। आगे भी शोध कार्य करना चाहती हैं। इसमें भी उनको सफलता मिल ही जाती है। इसी बीच सुशीला जी दो बेटियों और एक बेटे की माँ भी बन जाती है।

नौकरी करते समय अनुभव किए जातीय अपमान की पीड़ा को वह इस प्रकार अभिव्यक्त करती है, "मैं मैं नहीं, अपनी जाति समुदाय की एक इकाई हूँ। चाहे जितना पढ़ लूँ, चाहे जितने बड़े पद पर पहुँच जाऊँ, चाहे जितने बड़े शहर में रहने चली जाऊँ फिर भी मेरी जाती वही रहेगी, अछूत भंगी। मेरी जाति का अभिशाप मेरा पीछा नहीं छोड़ता।"[75]

आत्मकथा उत्तरार्ध में पारिवारिक संघर्ष के कई प्रसंग हैं। इन प्रसंगों को पढ़ते समय इनके प्रति टाँकभौरे के सम्बन्ध में एक ऐसे पुरुष की तस्वीर उभरने लगती है जिसमें पुरुष अहंकार कूट-कूट कर भरा है, जो पत्नी का आर्थिक शोषण तो करता ही है साथ ही उसे किसी प्रकार की स्वतंत्रता देना भी नहीं चाहता। ऐसे पुरुष के साथ जीवन निर्वाह करना, सारे अन्यायों को सहते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचना, वास्तव में कठिन ही नहीं असंभव ही था। सुशीला की जगह कोई और स्त्री होती तो यह संभव नहीं था, ऐसा लगता है परन्तु आत्मकथा के बीच-बीच अपने पति के संबंध में अनायास जो लिख जाती है उससे इनके पति की एक अन्य तस्वीर उभरने लगती है, जो पहले की तस्वीर से एकदम अलग प्रतीत होती है। उनके पति के दो रूप यहाँ पर परिलक्षित होते हैं। वह गुस्सा आने

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

पर पत्नी को पीटते हैं तथा यह भी सही है कि घर के किसी काम में पत्नी का सहयोग नहीं करते। इसके बावजूद यह भी सही है की पत्नी जब अगली पढ़ाई की इच्छा प्रकट करती है तो इसके लिए जरूरी व्यवस्था करते हैं। सुशीला जी ने अपने पति के जैसी दोष बतलाएँ हैं वैसे उनके गुणों का भी संकेत किया है तथा उनके पति द्वारा सुशीला जी के अंदर लेखिका की भूमिका को उभारने में उनका बहुत बड़ा सहयोग रहा है। सुशीला जी पति के संदर्भ में कहीं पर भी विद्रोहिणी का रूप धारण नहीं करती है तथा जो कुछ भी सहती हैं, उसे सर्जनात्मक स्तर पर व्यक्त कर शांत हो जाती है। इनकी सृजनात्मक जीवन की यात्रा इनकी आत्मकथा का महत्वपूर्ण स्रोत है।

आत्मकथा का समापन बहुत उदात्त होता है। आत्मकथा के अंत में वे लिखती हैं, "मैं स्वयं तक सीमित नहीं है। मैं मात्र अपनी जाति समुदाय तक सीमित नहीं हूँ। संपूर्ण विश्व मेरा है। संपूर्ण पर निवास करने वाला मानव समाज मेरा कुटुंब है। मेरा हितचिंतन सबके लिए है। मैं सबके लिए न्याय की मांग करती हूँ। मानवता मेरा धर्म है। मानवतावादी मेरे विचार हैं। मानवाधिकार मेरी मांग है। दलित, शोषित, पीड़ित, संपूर्ण मानव समुदाय के लिए मैं समता, सम्मान, स्वतंत्रता, मैत्रीभाव की कामना करती हूँ। यही मेरा लक्ष्य है, यही मेरी मंजिल है। प्रयत्नों का सफलता के लिए श्रम और संघर्ष के साथ, मैं कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ रही हूँ, जीवन की यात्रा चल रही है। आगे भी इसी तरह चलती रहेगी।"[76]

'शिकंजे का दर्द' से स्पष्ट होता है कि लेखिका में अपार आत्मविश्वास है, अटूट आस्था, अनन्त अरमान है। उच्च शिक्षा पाना, इसके लिए संघर्ष झेलना, नौकरी करना, लेखिका बनना इसीका परिणाम है। अभाव, कष्ट, अपमान, तिरस्कार तथा तमाम जीवन संघर्षों के बाद एक व्यक्ति कैसे ऊँचाई पर पहुंच सकता है, इसका स्पष्ट दृष्टांत है सुशीला टाँकभौरे। 'शिकंजे का दर्द' से वह प्रमाणित भी करती है।

2.10 मुर्दहिया : तुलसीराम

तुलसीराम का जन्म उत्तर प्रदेश में आजमगढ़ जिले के धरमपुर गाँव में हुआ था। बालपन में उनकी एक आँख चली गई तो उन्हें कांणा कहकर चिढ़ाया गया, चेचक ने चेहरे पर दाग दे दिये, तो लोगों को उनकी शक्ल पसन्द नहीं थी। वे राजनीति के जितने बड़े जानकार थे उससे कहीं अधिक उनकी दिलचस्पी बौद्ध अध्ययन में थी। राजनीतिशास्त्र

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

के अध्यापक थे और लोक साहित्य में रच-बसकर वे आत्मकथा तक आ गये। उनकी स्मृति बड़ी तेज थी। दलित उत्पीड़न की घटनाओं के विवरण वे बहुत संभालकर रखते थें। उन्होंने अपनी आत्मकथा के पहले भाग को 'मुर्दहिया' या श्मशान शीर्षक दिया, तो दूसरे भाग का नाम 'मणिकर्णिका' रखा। इसमें उन्होंने जिन्दा लाशों में बदल दिए गए अपने दलित समाज की व्यथा कही। तुलसीराम जी सेन्टर फार रश्यिन एंड सेन्ट्रल एशियन स्टडीज, स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल स्ट्डीज, जे.एन.यू. में प्रोफेसर थे।

'मुर्दहिया' में शिक्षा तन्त्र की जिस विद्रूपता का वर्णन मिलता है, वह प्रगति के सारे दावों को खोखला साबित करती है। अध्यापक मुंशीराम, सूरतलाल विशेषकर, दलित बच्चों को बात-बात पर स्कूल में 'चमरकिट' कहकर अपमानित करते थे। तुलसीराम जी प्राइमरी पाठशाला में मौजूद भ्रष्टाचार को शब्दबद्ध करते हैं—"कक्षा दो में जाने के लिए मुँशी जी ने हर बच्चे से दो रुपया 'पसकराई' या पास कराने का घूस लिया। यह दो रुपया मुझे बड़ी मुश्किल से घर से प्राप्त हुआ। यह 'पसकराई' सभी अध्यापक लेते थे और जो बच्चा नहीं देता, उसे फेल कर दिया जाता।"[77]

स्कूल में छुआछूत और अपमान की एक बानगी, "मिसिर शोर मचाते हुए मुँशी जी के पास दौड़े और चिल्लाते रहे कि चमरा ने कुआँ छू लिया। मैं बहुत डर गया। उस दिन मुँशी जी रुक-रुक कर गालियाँ देते रहे। इसके बाद मैं कभी पानी पिलाने के लिए कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।"[78] डॉ. तुलसीराम इस घटना से पहले ही वर्णन करते हैं। "पानी पीना वास्तव में एक विकट समस्या थी। कभी-कभी तो हम चुपके से पोखरे पर चले जाते, जिसका पानी गहन जलकुंभियों से ढका रहता था। हम जलकुंभियों को हटाकर उसका पानी पीते।"[79] जिस समाज को सार्वजनिक स्थलों और स्कूलों में पानी पीने तक का अधिकार न हो, उस समाज के मनोविज्ञान को समझने के लिए कौन-सी प्रविधि विकसित की गई है।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा पुष्ट किया गया 'महाड़ चवदार' आन्दोलन पुष्ट करता है कि दलितों को तालाब का पानी भी छूने का अधिकार नहीं था। इस वर्ग को नैसर्गिक अधिकार भी नहीं रहा है जिस पर प्राकृतिक रूप से हर मनुष्य का अधिकार होता है। शुचिता का यह

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

घिनौना खेल कैसे और क्यों खेला जाता रहा है? 'मुर्दहिया' इस ओर भी ध्यान आकर्षित करती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संवैधानिक व्यवस्था में दलितों को शिक्षा का अधिकार मिल जाने से दलित वर्ग के अधिकारी बनने लगे थे लेकिन अधिकारियों की पहचान जाति से ही की जाती थी, जैसे डिप्टी साहब को 'चमार डिप्टी का सम्बोधन।'

डॉ. तुलसीराम की स्वानुभूति और रचनात्मकता ने भारतीय समाज के बहुत बड़े हिस्से का ऐसा सच प्रस्तुत किया है, जिसे कभी साहित्य का व्यापक विषय नहीं बनाया जा सका था।

'मुर्दहिया' में गरीबी और भुखमरी का ऐसा पीड़ादायक चित्रण मिलता है, जहाँ किसी अर्थशास्त्री की निगाह भी नहीं गई होगी। बरसाती कड़की के दिनों में मैदानी चूहों का मांस और बरसाती मछलियाँ खाकर तथा चूहों के बिलों से गेहूँ की बालियों से अनाज निकालना दलित विपन्नता का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। बरसात के दिनों में झोपड़ियों और खपरैल के घरों से पानी टपकने के बीच कई-कई रात ऐसे ही जागते गुजार देना दलितों की गरीबी का सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है। डॉ. तुलसीराम ने अपने परिवार की विवशता का चित्रण करते हुए लिखा है कि, "हमारा संयुक्त परिवार बहुत बड़ा था, किन्तु घर में एक भी रजाई या कंबल नहीं था। वैसे भी घर में कपड़ों की कमी हमेशा रहती थी, मेरे पिताजी पूरी धोती कभी नहीं पहनते। वे एक ही धोती के दो टुकड़े करके बारी-बारी से पहनते। ओढ़ने का कोई इन्तजाम न होने से गाँव के लगभग सारे दलित रात भर ठिठुरते रहते।"[80]

गरीबी और भुखमरी के बीच ब्राह्मण साहूकारी का पहली बार किसी आत्मकथा में पढ़ने को मिलता है। एक सेर अनाज के बदले सवा सेर अनाज का भुगतान ब्राह्मण साहूकारी का नमूना था।

'मुर्दहिया' दलित जीवन संघर्ष की सिर्फ वेदनामयी गाथा ही नहीं है, अपितु हिन्दू जाति-व्यवस्था की जड़ता, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, धर्मान्धता तथा तमाम विभेदकारी शोषणमुक्त विषम परिस्थितियों के घेरे को तोड़कर उगते सूरज के मानिंद बालक तुलसीराम

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

की संघर्ष यात्रा है। अपमान, अनादर, उपेक्षा और कड़की की वेदना से गुजरते दलित बालक की मनोदशाओं की सच्ची कहानी है 'मुर्दहिया'।

2.11 मणिकर्णिका : तुलसीराम

यह तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया का दूसरा भाग था जो मणिकर्णिका के नाम से प्रकाशित हुआ। 'मुर्दहिया' से लेकर 'मणिकर्णिका' तक की यात्रा में (धरमपुर) आजमगढ़ के घोर जातिवादी सामन्ती समाज का उत्पीड़न है, तो बुद्ध और मार्क्स के दर्शन से अपनी बौद्धिकता और राजनैतिक चेतना भी है, जो लगातार इस उत्पीड़न के खिलाफ संघर्षरत है। भारतीय जनता की धर्मान्धता है, तो धर्म और ईश्वर की सत्ता को चुनौती देता एक 'अपशगुनी' व्यक्तित्व भी है। अपनी वैचारिक पक्षधरता से मार्क्सवादी रहे तुलसीराम की आत्मकथा, जो अपने समाज से एकाकार होते व्यक्ति के जीवन का दस्तावेज है, क्योंकि उसने अपने जीवन में व्यक्ति और समाज के 'अभिन्नत्व' को साध लिया है और अपने जीवनमें परिवार की गैर मोजूदगी से उपजे शून्य को अपनी शिक्षा और वैचारिकता से भरा है।

'मणिकर्णिका' तत्कालीन समय की तमाम राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनैतिक मुद्दों की एक नए नजरिए से जानकारी उपलब्ध कराती है, जाहिर है यह नजरिया शासक वर्ग का नहीं है। बावजूद इसके कि तत्कालीन सी.पी.आई, इन्दिरा गाँधी को तमाम मुद्दों पर सपोर्ट कर रही है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि तुलसीराम जी उस वक्त सी.पी.आई. के होल टाइमर हुआ करते थे।

एक तरफ यह आत्मकथा नास्तिकता और मानवीय मूल्यों के गहरे रिश्तों पर बात करती है तो दूसरी तरफ कम्यूनिज्म और दलितवाद के बीच के सम्बन्धों की पड़ताल करती है। कह सकते हैं कि अपने समय के स्थानीय से लेकर वैश्विक मुद्दे तक इस आत्मकथा का विस्तार है। इसलिए यह भी कहना उचित होगा कि यह एक व्यक्ति की आत्मकथा न होकर, अपने समय का एक समानान्तर सामाजिक-राजनीतिक दस्तावेज है।

'मणिकर्णिका' 'मुर्दहिया' का अगला चरण होने के बावजूद उससे सम्बद्ध भी है और स्वतन्त्र भी। इसमें 1968 से 1978 के बीच के बनारस का चित्रण है, जो 2012-2013 में लिखा गया और 2014 में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

उत्तर प्रदेश के छोटे-से गाँव में जातिवाद का जो रूप दिखाई पड़ता है, बनारस में जातिवाद उससे कहीं अधिक महीन और पैना है। वे लिखते भी हैं कि "बनारस में यह विचित्र स्थिति थी कि मकान तो किराए पर मिलता था, किन्तु जातिवाद मुफ्त में।"[81]

'मणिकर्णिका' अपने आरंभिक तीन छोटे और एक अन्तिम अध्याय के अलावा पूरी तरह हिन्दी प्रदेशों में कम्यूनिज्म के प्रयोग और उसकी (ऐतिहासिक) भूलों पर केन्द्रित है। यद्यपि केन्द्र में बनारस शहर, बी.एच.यू. की छात्र राजनीति और तुलसीराम का जीवन ही है। एक जगह लेखक ने लगातार अपमानित होने के कारण भावुक होने की बात कही है तथा एक आँख खराब होने के कारण उन पर जो व्यंग्य किए जाते हैं उस विषय में तुलसी राम पर क्या गुजरती होगी इसे हम कलकत्ता का चिड़ियाघर देखने के बाद उसके इस वाक्य से देख सकते हैं—"किसी जानवर ने भूल से भी अपनी दबी आँख से मुझे नहीं देखा, किन्तु कदमतल्ला वापस आने पर उस बलिया वाली महिला ने एक बार फिर अपनी आँख मूँद ली।"[82] यह महिला एक मजदूर की अनपढ़ पत्नी थी। इसके बारे में लेखक लिखते हैं कि वो बहुत झगड़ालू थी और उन्हें देखकर-देखकर अपनी एक आँख दबाकर हजार शब्दों का वार हर दिन कर देती थी, जाहिर है कि यह स्त्री उनके अपने ही वर्ग की थी।

तुलसीराम बनारस पर न तो मुग्ध हैं, न तटस्थ, वे उसमें धँसते हैं, संघर्ष करते हैं, लोहा लेते हैं इसलिए उस दौर का बनारस 'मणिकर्णिका' में सजीव और साकार हो उठता है। दो उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाएगा—

"इस घाट (मणिकर्णिका) पर सदियों से जलती हुई चिताएँ कभी नहीं बुझीं। अत: मृत्यु का कारोबार यहाँ चौबीसों घण्टे चलता रहता है। सही अर्थों में मृत्यु बनारस का एक बड़ा उद्योग है। अनगिनत पंडों की जीविका मृत्यु पर आधारित रहती है। सबसे ज्यादा कमाई उस डोम परिवार की होती है, जिससे हर मुर्दा मालिक चिता सजाने के लिए लकड़ी खरीदता है।"[83]

"संकटमोचन मन्दिर का जिक्र करते हुए लेखक के मित्र तपसीराम कहते हैं कि यहाँ के बन्दर तो सिर्फ खाने की चीजों पर झपटते हैं किन्तु यहाँ आस्था के बहाने बहुत सारे लफंगों की दृष्टि महिलाओं के आभूषण पर रहती है। वे जूता-चप्पल चुराते हैं तथा छेड़खानी में लिप्त रहते हैं।"[84]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

'मणिकर्णिका' का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय हिन्दी क्षेत्र में नक्सलवाद पर केन्द्रित है। मार्क्सवादी बनने के आरम्भिक दौर में तुलसीराम नक्सलवाद से बेतरह प्रभावित हुए। नक्सलवादी आन्दोलन के इतिहास को सुभाष मुखोपाध्याय द्वारा कलकत्ता में विस्तार से समझाने के बाद वे निष्कर्ष निकालते हैं, "कुल मिलाकर मुझे अनुभूति हुई कि सारा मामला आदिवासियों से ही जुड़ा था, जिसकी जड़ में भूमि विवाद था। यह विवाद बढ़ते-बढ़ते सशस्त्र क्रान्ति में बदल गया।"[85]

डॉ. तुलसीराम की यह आत्मकथा एक ऐसे समय हिन्दी समाज के सामने है जब लेखक बिरादरी अपने लिखे को न पढ़े जाने को लेकर अवसादग्रस्त है। उनका विश्वास बुरी तरह डगमगाया हुआ है, लेकिन इस पर जरूर विचार करने की आवश्यकता है कि पुस्तक में आखिर ऐसी कौन-सी बात है कि इसने किताबों के न पढ़े जाने की चिन्ता को लगभग ध्वस्त करते हुए खुद को साबित किया है।

सन्दर्भ

1. 'उपेक्षा' पत्रिका, जुलाई-सितम्बर, 2003
2. मोहनदास नैमिशराय — 'अपने-अपने पिंजरे' (भाग-1), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 21
3. वही, पृ. 22
4. वही, पृ. 51
5. वही, पृ. 57
6. वही, पृ. 127
7. वही, पृ. 136
8. वही, पृ. 140
9. वही, (भाग-2) पृ. 7
10. वही, पृ. 14
11. वही, पृ. 22
12. वही, पृ. 46
13. वही, पृ. 60
14. वही, पृ. 62
15. वही, पृ. 66

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

16. वही, पृ. 67
17. वही, पृ. 83
18. वही, पृ. 91
19. ओमप्रकाश वाल्मी, जूठन, राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 1997, पृ. 89
20. वही, पृ. 14
21. वही, पृ. 15
22. वही, पृ. 15
23. वही, पृ. 62
24. वही, पृ. 77
25. वही, पृ. 34
26. वही, पृ. 34-35
27. वही, पृ. 54
28. वही, पृ. 82
29. वही, पृ. 21
30. वही, पृ. 21
31. सूरज पाल चौहान — तिरस्कृत, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 16
32. वही, पृ. 17
33. वही, पृ. 18
34. वही, पृ. 23
35. सम्पादक तेजसिंह 'अपेक्षा' (आत्मालोचना की एक कोशिश), लेख, पृ. 168
36. सूरजपाल चोहान — तिरस्कृत, पृ. 30
37. सम्पादक : रमणिका गुप्ता, 'युद्धरत आम आदमी' (गंगासहाय मीणा : दर्शन का बलात्कार) लेख, पृ. 40
38. सूरजपाल चोहान — तिरस्कृत, पृ. 49
39. वही, पृ. 65
40. वही, पृ. 66
41. सम्पादक : तेजसिंह, 'अपेक्षा' 4 (दलित आत्मकथा लेखन की परम्परा), लेख, पृ. 39
42. सूरजपाल चोहान — तिरस्कृत, पृ. 49-50
43. वही, पृ. 52
44. सम्पादक तेजसिंह 'अपेक्षा' (आत्मालोचना की एक कोशिश), लेख, पृ. 170
45. वही, पृ. 53
46. सूरजपाल चौहान — तिरस्कृत, पृ. 127

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

47. सम्पादक : रमणिका गुप्ता, 'युद्धरत आम आदमी' (दलित साहित्य के बढ़ते कदम) लेख, अक्टूबर-दिसम्बर, 2002, पृ. 53
48. रूपनारायण सोनकर — नागफनी, शिल्पायन प्रकाशन गाजियाबाद, दिल्ली, पृ. 10
49. वही, पृ. 49
50. वही, पृ. 56
51. वही, पृ. 81
52. वही, पृ. 85
53. वही, पृ. 86
54. वही, पृ. (भूमिका से)
55. श्यौराज सिंह बैचेन — मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 51
56. वही, पृ. 53
57. वही, पृ. 59
58. वही, पृ. 105
59. वही, पृ. 155
60. वही, पृ. 193
61. वही, पृ. 193
62. वही, पृ. 364
63. माता प्रसाद — झोपड़ी से राजभावन, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 46
64. वही, पृ. 42
65. वही, पृ. 43
66. वही, पृ. 43
67. वही, पृ. 63
68. वही, पृ. 67
69. वही, (मूल पृष्ठ से)
70. वही, (भूमिका से)
71. सुशीला टाँकभौरे — शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 65
72. वही, पृ. 115
73. वही, पृ. 169
74. वही, पृ. 201
75. वही, पृ. 235
76. वही, पृ. 304
77. डॉ. तुलसीराम — मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 25

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

78. वही, पृ. 55
79. वही, पृ. 54
80. वही, पृ. 63-64
81. डॉ. तुलसीराम — मणिकर्णिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 66
82. वही, पृ. 33
83. वही, पृ. 9
84. वही, पृ. 14
85. वही, पृ. 109

❑

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

तृतीय अध्याय

समकालीन दलित कहानियाँ

3.1 भूमिका

वैसे तो सम्पूर्ण दलित साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है, लेकिन कहानी विधा के रूप में विरोध प्रतिरोध का तेवर अपेक्षाकृत ज्यादा मुखर और प्रबल होता है। इसका कारण यह है कि आत्मकथा, जो कि दलित साहित्य की प्रतिनिधि विधा है, व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में संघर्ष गाथा बनकर रह जाती है, कविता कवि का आक्रोश, नाटक स्थितियों का बयान। परन्तु कहानी लेखक, पात्रों, घटनाओं, परिवेश आदि का ऐसा समग्र बिम्ब प्रस्तुत करती है कि पाठक के चेतन, अवचेतन का हिस्सा बन जाती है। पाठक के रूप में कहानी एक मुहिम और उसका एक पैरोकार तैयार करती है। इस अर्थ में समकालीन दलित कहानी एक उम्मीद जगाती है, एक भाव-संवेदन का संचार करती है।

दलित कहानी के विकास पर दृष्टि डालते हैं तो एक भरी पूरी पीढ़ी दिखाई पड़ती है। पिछली पीढ़ी में ओमप्रकाश वाल्मीकि से शुरू करें तो जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, अनीता भारती, रजनी सिसोदिया, कैलाश वानखेड़े और संदीप मील जैसे कथाकार विरोध-प्रतिरोध का एक विमर्श रचते दिखाई देते हैं। ये कहानियाँ एकरेखीय न होकर बहुअर्थी संवेदना के सूत्र हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

हिन्दी कहानी में अनेक तरह के उतार-चढ़ाव के उपरान्त अनेक तरह के आन्दोलनों से अलग दलित कहानी बदलते सामाजिक प्रतिरोध के यथार्थ चित्रण की एक विशिष्ट धारा के रूप में सामने आयी तथा आठवें-नवें दशक तक आते-आते अपनी खास पहचान निर्मित की और धारा के प्रवाह को निरन्तर प्रवाहित किया। दलित कहानी ने अनेक समस्याओं का सामना किया तथा अपने सर्जनात्मक आक्रोश को स्वर देकर

बदलाव के आयाम स्थापित किए। दलित कहानी का आशय दलित की व्यथा, दु:ख, पीड़ा या शोषण का वर्णन करना नहीं अपितु इसके माध्यम से दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि को तोड़ना रहा है।

दलित चेतना को लेकर उभरे सशक्त दलित लेखकों की कहानियों के माध्यम से दलित जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है तथा प्रस्तुत अध्याय में अनेक दलित साहित्यकारों की कहानियों का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

3.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि : 'सलाम' कहानी संग्रह

दलित श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जो मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक, आर्थिक रूप से पिछड़े, वर्ण-व्यवस्था से बाहर, जिसमें भूमिहीन, गरीब किसान, खानाबदोश जाति और नारी समाज दलितों में हैं। इन पर अनादिकाल से सवर्ण समाज ने अन्याय, अत्याचार किया है। ऐसे दलित समाज का चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में हुआ है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की चौदह कहानियों का संग्रह 'सलाम' नाम से प्रकाशित हुआ जो अपने कथ्य और शिल्प के कारण हमारा ध्यान खींचता ही नहीं, अपितु अपने सरोकारों के कारण भी हमें दिल दहला देने वाली स्थितियों से गुजरने को मजबूर करता है। जहाँ समाज त्रासद स्थितियों के कारण अपमान झेलते स्त्री-पुरुष, जमाने की गन्दगी साफ करती औरतें, उत्पीड़न के दर्द को सहकर शोषक दुनिया को बदलने का सपना देखने वाले लोग जो लड़ते जरूर हैं लेकिन जीत नहीं पाते। लेकिन इन कहानियों में उस सपने को जिन्दा रखने का वह जज्बा भी दिखाई देता है कि इस लड़ाई में जीतेंगे जरूर, चाहे उसमें समय कितना भी लग जाय। इसी आशा और विश्वास की कहानियाँ है 'सलाम' की कहानियाँ।

सलाम

इस संग्रह की पहली कहानी 'सलाम' वास्तव में बहुत अच्छी कहानी है। इस कहानी का नायक हरीश भंगी समाज से सम्बन्धित है। पूरी कहानी का ताना-बाना हरीश की शादी के चारों ओर बुना हुआ है। हरीश का एक मित्र कमल उपाध्याय है, जो उसकी शादी में विवाह की तैयारी से लेकर अन्त तक अपनी भागीदारी निभाता है। हरीश की

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

बारात देहरादून से मुझफ्फरनगर के पास के एक गाँव में पहुँचती है। अगले दिन सुबह कमल को चाय की तलब लगती है और वह ढूँढ़ते हुए गाँव की एक चाय की दुकान पर पहुँचता है। दुकानवाला यह जानकर कि यह देहरादून से जुम्मन चूहड़े के यहाँ बारात में आया है, तो चूहड़ा (भंगी) ही होगा। कमल को चाय देने से मना कर देता है। यहाँ उसे अपमानजनक स्थिति से गुजरना पड़ता है। उस चाय वाले और कमल के संवादों के माध्यम से आप भलीभाँति समझ सकते हैं—

"चूहड़े चमारों को मेरी दुकान पर चाय ना मिलती ... कहीं और जाके पियो।"[1] तो कमल उससे जाति पूछ लेता है। इस पर चाय वाला कहता है कि—"चाय वाला भभक पड़ा—मेरी जात से तुझे क्या लेणा-देणा। इब चूहड़े चमार भी जात पूछने लगे ... कलयुग आ गया है, कलयुग।"

"हाँ कलयुग आ गया है, सिर्फ तुम्हारे लिए, तुम अपनी जात नहीं बताना चाहते हो तो सुनो—मेरा नाम कमल उपाध्याय है। उपाध्याय का मतलब तो जानते ही होंगे, या समझाऊँ ... उपाध्याय यानी ब्राह्मण।" कमल ने आँखें तरेर कर कहा।

"चूहड़ों की बारात में वामन?" चाय वाला कर्कशता के साथ हँसा।

"शहर में चूतिया बणाना ... मैं तो आदमी कू देखते ही पिछाण (पहचान) लूँ ... कि किस जात का है?"[2] चाय वाले ने शेखी बघारी।

कमल और चाय वाले का वार्तालाप सुनकर वहाँ भीड़ जमा हो गई। कमल चाय वाले का विरोध करने के लिए बोलता है—"भाइयों ..." उसकी बात पूरी होने से पहले ही रामपाल ने उसे डाँटा—"ओ, सहरी जनको हम तेरे भाई है? साले जबान सिभाल के बोल, गाँड में डंडा डाल के उलट दूँगा।"[3] यहाँ पर कमल ब्राह्मण होते हुए भी चूहड़ों की बारात में शामिल है इसलिए उसे भी चूहड़ा जाति का समझा जाता है और चाय वाले द्वारा अपमानित किया जाता है।

आगे कहानी की परिणति विद्रोह में होती है। जब कथा नायक हरीश 'सलाम' के लिए जाने से मनाकर देता है। वह कहता है—"मैं इस रिवाज को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता हूँ। यह सलाम की रस्म बन्द होनी चाहिए।"[4] इस प्रकार दलित समाज के युवकों में क्रान्ति की भावना दिखाई देने लगी और स्वाभिमान से जीने की कोशिश करने लगे हैं।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सपना

इस कहानी में हिन्दू मानसिकता का वास्तविक चेहरा दिखाने का प्रभावी प्रयास है। मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा से प्रायोजित कार्यक्रम में नटराज ब्राह्मणी संस्कारों में लिप्त अपने सहकर्मी गौतम को स्वयं से तुच्छ मानता है और चप्पलों की देखभाल के लिए पीछे बैठने का उससे आग्रह करता है लेकिन गौतम उसकी चाल को समझ जाता है और इसका विरोध करता है। दलित आलोचक कंवल भारती के अनुसार, "वाल्मीकि की सर्वश्रेष्ठ कहानी मेरी दृष्टि में 'सपना' है, जिसमें अस्पृश्यता के खिलाफ ऋषिराज ने जो खुद ब्राह्मण है, जबरदस्त विद्रोह किया है। दलित पात्र गौतम ने भी स्वाभिमान पर आँच नहीं आने दी।"[5]

गौतम की पत्नी तथा बच्चों को पांडाल में आगे बैठा देखकर नटराज की प्रतिक्रिया—"फर्क पड़ता है ... पूजा अनुष्ठानों में उन्हें आगे नहीं बैठाया जा सकता? यह रीत है। शास्त्रों की मान्यता है।" नटराज ने गहरे अवसाद में भरकर कहा।[6]

गौतम परिवार को आगे से उठाकर पीछे बैठाने की कशमकश में झगड़ा शुरू हो जाता है और अन्ततः प्राण-प्रतिष्ठा का कार्यक्रम कुरुक्षेत्र का मैदान बन जाता है। ऐसा होते देखकर गौतम वहाँ से चला जाता है। "चलो भाई, हम लोग घर चलते हैं। ऐसे अनुष्ठानों में बैठकर क्या होगा, जहाँ आदमी को आदमी की तरह न समझा जाय।"[7]

इस कहानी में हिन्दू धर्म के पाखण्ड को पूरी तरह व्यक्त किया गया है।

बैल की खाल

इस कहानी में दलित हृदय को बहुत ही संवेदनशील दिखाया गया है। इसमें जानवरों की खाल उतारने का कार्य करने वाले काले, भूरे नामक दो दलितों की रोजी-रोटी का एकमात्र आधार मरे जानवरों की खाल उतारना है। वे शहर में खाल बेचकर उससे मिलने वाले पैसों से अपनी जीविका चलाते हैं। लेकिन गाँव में जानवरों का डॉक्टर आ जाने से उनके सामने आर्थिक संकट आ जाता है। एक बार वे खाल बेचने जाते हैं तो उनको रास्ते में रात हो जाती है तथा रास्ते में सड़क पर एक बछिया के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने पर वे अपनी खाल की परवाह किये बगैर बछिया को बचाने का हर सम्भव प्रयास करते हैं। यह कहानी संदेश देती है कि दलित अभावों में रहते हुए भी अविवेकी,

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

हृदयहीन, संवेदनहीन और स्वार्थी नहीं होते हैं। वे मुर्दा पशु की खाल अवश्य उतारते हैं लेकिन पशु की मौत नहीं चाहते हैं। जीवन का मूल्य समझते हैं।

पच्चीस चौका डेढ़ सौ

यह कहानी ग्रामीण दलितों की अज्ञानता को रेखांकित करती है तथा कहानी के मूल में छल-बल, कपट, झूठ, धोखा और ठगी जैसी समस्या विद्यमान है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले जमींदारों द्वारा दलितों को पीढ़ियों से अनपढ़ और भूमि आदि साधनों से वंचित रखकर ठगी-प्रपंच करने वाली साजिश का पर्दाफाश इस कहानी में किया गया है।

सुदीप ने पच्चीस का पहाड़ा दोहराया और जैसे ही पच्चीस चौका सौ कहा, उन्होंने टोका—"नहीं बेट्टे ... पच्चीस चौका सौ नहीं ... पच्चीस चौका डेढ़ सौ।" उन्होंने पूरे आत्मविश्वास से कहा।

सुदीप ने चौंकर पिताजी की ओर देखा। समझाने के लहजे में बोला, "नहीं पिताजी, पच्चीस चौका सौ ... ये देखो गणित की किताब में लिखा है।"

"बेट्टे, मुझे किताब क्या दिखाने मैं तो हरफ (अक्षर) बी ना पिछाणूं। मेरे लेखे तो काला अच्छर भैंस बराबर है। फिर बी इतना तो जरूर जाणूं कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ होवै है।"[8]

खानाबदोश

यह कहानी भट्ठा मजदूरों के जीवन से सम्बन्धित है। भट्टे पर महेश और किशनी काम करते हैं। किशनी धीरे-धीरे भट्ठा मालिक के लड़के सूबेसिंह की रखैल बन जाती है। यहीं पर सुकिया और उसकी पत्नी मानो भी काम करते हैं। मानो सूबेसिंह के चक्कर में आने से मना कर देती है, अत: उनका उत्पीड़न आरम्भ हो जाता है और अन्ततः भट्टे का काम छोड़कर अपने घर लौटना पड़ता है। वे एक इन्सानी जीवन जीना चाहते हैं। रहने के लिए अपने हाथों से पाथी गई लाल-लाल ईंटों से एक छोटा घर बनाना चाहते हैं लेकिन कठोरतम प्रयास करने के बावजूद उनका सपना अधूरा रहता है, बल्कि काम की तलाश में खानाबदोश जीवन जीना पड़ता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अम्मा

इस कहानी की 'अम्मा' और 'हरदेई' जो घरों में पाखाना साफ करने का काम करती है, 'भंगी' जाति की औरते हैं। वे दोनों सच्चरित्र और खुद्दार हैं। चौपड़ा परिवार के घर में मिसेज चौपड़ा का आशिक 'विनोद' जब टट्टी में पानी डालते हुए अम्मा को लपेट लेना चाहता है, तो वह उसकी झाड़ू से पिटाई करती है तथा मिसेज चौपड़ा से कहती है—"भैण जी इस हरामी के पिल्लै से कह देणा ... अर औरत छिनाल ना होवे।"[9] इस कहानी में अम्मा एक स्वाभिमानी, परिश्रमी और सच्चरित्र महिला है, जो अपना नाम पहचान खोकर एक भाववाचक संज्ञा बनकर रह गई है। वह मेहनत की कमाई से बच्चों को पढ़ा लिखाकर सम्मान का जीवन जीने की शिक्षा देती है। अपमानित कार्य की प्रतीक झाड़ू को वह हाथ नहीं लगाने देती। इस प्रकार 'अम्मा' दलित स्त्री की खुद्दारी का जीवन्त उदाहरण है। लेकिन उसका ही एक बेटा नगरपालिका की नेतागिरी करते हुए अपने ही लोगों को सताता है तो अम्मा उससे साफ-साफ कहती है—"शिव, आजकल तू जो करे है, ठीक ना है ... जो मैंने पता होता कि तू इस तरियो पैसा कमाता है, तो मैं तेरे पैसे कू हाथ भी ना लगाती। तने पढ़ा-लिखा दिया। तेरी साद्दी (शादी) कर दी ... मेरा काम खत्म ... अच्छा इन्सान न बणा सकी यो मेरा कसूर। कल से अपना चौका-चूल्हा अलग कर लै ... मन्नै ना खाणी इस कमाई की रोटी। अलग होके चाहे किसी ने लूट या मार ... मेरे से कोई मतलब नहीं।"[10]

ग्रहण

यह कहानी ग्रामीण आभिजात्य परिवारों की औरतें दलित जाति के लोगों का किस तरह इस्तेमाल करती है, उसका जीवन्त उदाहरण है। इस कहानी में स्पष्ट रूप से बतलाया जाता है कि चौधरी परिवार के बेटे बिरम की बहू को पति की नपुंसकता के कारण बाँझ बताकर प्रताड़ित किया जाता है, तो वह चन्द्रग्रहण की रात में रमेसर से संभोग कर बालक प्राप्त करती है।इस कहानी का विस्तार अगली कहानी 'बिरम की बहू' में हुआ है, जिसमें रमेसर सोचता है कि किस तरह देह और संवेदन के धरातल पर आभिजात्य परिवारों की औरतें दलित युवकों को छलती हैं।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

ब्रह्मास्त्र

भारतीय समाज आदिकाल से जो रूढ़िवादी परम्परा में जकड़ा हुआ है उससे आज भी बाहर नहीं निकल पाया। दलित वर्ग चाहे कितना भी पढ़-लिखकर आगे बढ़ा हो लेकिन जो वर्णगत विषमता है उसे आज भी वे भोगने को विवश है। इस विषमताको ब्रह्मास्त्र कहानी में अवतरित किया है।

कंवल कुमार डोम जाति का दलित युवक और अरविन्द नैथानी ब्राह्मण युवक हैं। अरविन्द और कंवल अच्छे मित्र हैं। यहाँ पर पंडित माधव प्रसाद भट्ट अरविन्द और कंवल की दोस्ती में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे अपने मित्र अरविन्द की बारात में जाने से मना करता है—"तू! कहाँ जा रहा है। कंवल कड़वाहट को अनदेखा करते हुए सहज भाव से कहता है—बारात में जा रहा हूँ।"[11]

"बारात में?" पण्डित माधव प्रसाद भट्ट ने हैरानी जताई।

"जी हाँ।" कवल अभी भी सहज था।

"तू कैसे जा सकता है बारात में?" पण्डित ने तिक्तता से दोहराया।"[12]

कूड़ाघर

इस कहानी में अजबसिंह को डॉक्टर साहब और उनकी घरवाली मकान इसलिए खाली करवाते हैं कि वे अजबसिंह की जाति को जान गए थे। जब तक डॉक्टर और उनके परिवार को अजबसिंह की जाति का पता नहीं था तब तक उनके साथ घुल-मिलकर रह रहे थे। पर जब पता चलता है तो कहते हैं, "तुम लोगों ने मकान किराए पर लेते समय नहीं बताया था कि तुम लोग एस.सी. हो।"[13]

सवर्ण वर्ण के लोग दलितों को न तो अपने घर में प्रवेश करने देते हैं और ना ही अपने बर्तनों को छूने देते हैं। यदि दलित घर में प्रवेश कर भी लेता है तो उस घर को पानी आदि से पवित्र किया जाता है।

यह अन्त नहीं

इस कहानी में गाँव के जमींदार दलितों की बहू-बेटियों पर किस प्रकार अन्याय, अत्याचार करते हैं और अपनी हवस का शिकार बनाने की कोशिश करते हैं, यह दर्शाया

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

गया है। इस कहानी में मंगलू तमाम अभावों के बावजूद अपने पुत्र किसन को कॉलेज पढ़ाई के लिए शहर भेजता है। वहाँ पर वह अपने मित्रों के साथ अनेक विषयों पर विचार-विमर्श करता है। उसके परिवार के सभी सदस्य जमींदार के खेत में मजदूरी करते हैं। एक दिन उसकी बहन बिरमा तेजमान के खेत में धान काटने के लिए जाती है। रास्ते में आते समय सचिन्दर बिरमा के साथ छेड़खानी करता है। उसकी रपट वे पुलिस में करने जाते हैं लेकिन पुलिस वाला रपट लिखने से इन्कार करता है और कहता है कि, "छेड़खानी हुई है... बलात्कार तो नहीं हुआ ... तुम लोग बात का बतंगड़ बनाते हो। गाँव में राजनीति फैलाकर शान्ति भंग करना चाहते हो। मैं अपने इलाके में गुंडागर्दी नहीं होने दूँगा ... चलते बनो।"[14]

कहाँ जाए सतीश

यह कहानी दलित बालक की शिक्षा की समस्या को उजागर करती है। कहानी में सतीश नामक बालक चूहड़ा जाति का है। वह पढ़ना चाहता है परन्तु उसके माँ-बाप उसे सफाई कर्मचारी बनाना चाहते हैं इसलिए वह घर से भाग जाता है तथा एक फैक्टरी में पार्ट-टाइम काम करता है तथा जहाँ पर किराए के मकान में रहता है वहाँ जाति का पता लगने पर उसे बाहर निकाल दिया जाता है। तब वह अपने फैक्टरी मालिक से रात में फैक्टरी में रूकने की कहता है तो वह भी मना कर देता है। ऐसी स्थिति में सतीश के सारे रास्ते बन्द हो जाते है। केवल भंगी का होने के कारण। दलितों के विकास के सारे रास्ते इस सामाजिक वर्ण-व्यवस्था ने पहले से ही बन्द किए हैं तो सतीश जैसे बालकों की क्या स्थिति होगी?

अन्धड़

इस कहानी में पढ़े-लिखे लोग अपने दलित समाज को सुधारने की बजाय अपने समाज से दूर भगाते दिखाई देते हैं। अपने जाति के नाम पर सामाजिक घृणा दलितों में हीन भावना भर रही है। उन्हें अपने समाज की दयनीय स्थिति की शर्म आने लगी है। इस कहानी में मि. लाल ऐसे समाज के प्रतिनिधि पात्र हैं जो दलित होने के बावजूद अपनी जाति छुपाकर रखते हैं तथा अपना नाम बदलकर सुक्कड़ लाल की जगह एस. लाल रखते हैं तथा अपने परिवार वालों से मिलना-जुलना बन्द कर देते हैं क्योंकि उनका रहन-

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सहन निम्न है लेकिन जब मि. लाल की पत्नी सविता मायके जाने को कहती है तो वे बिफर पड़ते हैं—"सविता के ख्यालों में वह दिन उभर आया, जब मायके जाने के सवाल पर दोनों के बीच कहा-सुनी हुई थी। मैं जिस गन्दगी से तुम्हें बाहर निकालना चाहता हूँ... तुम उसी में जाना चाहती हो। तुम वहाँ जाओगी, तो वे भी यहाँ आयेंगे। मैं नहीं चाहता यहाँ लोगों को पता चले कि हम एस.सी. हैं। जिस दिन लोग ये जान जाएँगे, यह मान-सम्मान सब घृणा-द्वेष में बदल जायेगा।"[15]

सच्चाई यह है कि दलित समाज स्वाभिमान से जीना चाहता है लेकिन भारतीय समाज में मान उसी को मिलता है जिसकी जाति ऊँची है। दलित व्यक्ति कितना भी बड़ा अफसर क्यों न हो उसके साथ उसकी जाति चिपकी रहती है।

शवयात्रा

यह एक ऐसी कहानी है जिसमें दलितों की एक उपजाति चमारों को सामन्ती चोला पहनाया गया है। इसमें प्रमुख समस्या भंगियों के प्रति चमारों का संवेदनहीन होना है। इस कहानी में प्रमुखत: दो घटनाओं को दर्शाया गया है जिसमें एक तो चमारों द्वारा नायक पात्र सुरजा बल्हार का पक्का मकान न बनने देना और दूसरी उसकी बीमार बेटी के इलाज में अपेक्षित मदद न करना। यहाँ तक कि उसके शवदाह के लिए अपने यानी चमारों के श्मशान में जगह न देना। यहाँ पर सुरजा से ईर्ष्या करने वालों का संवाद है—"अंटी में चार पैसे आ गए तो अपनी औकात भूल गया। बल्हारों को यहाँ इसलिए नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर हवेली खड़ी करेंगे ... वह जमीन जिस पर तुम रहते हो, हमारे बाप-दादों की है। जिस हाल में हो ... रहते रहो ... किसी को ऐतराज नहीं होगा। सिर उठाकर खड़ा होने की कोशिश करोगे तो गाँव से बाहर कर देंगे।"[16]

जाति श्रेष्ठता की भावना से हर कोई ग्रसित है। इस कारण दलित समाज में भी ऊँच-नीच का भाव दिखाई देने लगा है।

भय

इस कहानी में दलितों में पनप रही संभ्रान्त बनने की इच्छा को लेकर अपनी दलित जाति के प्रति उपेक्षा दिखाने की प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है। इसमें दलित दोहरी जिन्दगी जीते हैं। वे जो हैं, उसे छिपाते हैं और जो नहीं है, वह दिखाते हैं क्योंकि जाति

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

उनकी योग्यता और क्षमता से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। कुछ दलित ब्राह्मण बनने की कोशिश में खुले में मांसाहार करना तक छोड़ देते हैं पर छिप-छिप कर खाते हैं। "जिस दिन रामप्रसाद तिवारी खाना खाता था तो दिनेश की माँ सब्जी में लहसुन और प्याज तक नहीं डालती थी।"

तब यहाँ पर सवाल यह उठता है कि क्या दलित दूसरों की इच्छाओं के अनुसार ही जीए-मरे? इस कहानी का पात्र दिनेश हमेशा इस भय से ग्रस्त रहता है कि कहीं अपनी वर्णगत पहचान अन्य लोगों के सामने न आ जाए।

मैं ब्राह्मण नहीं हूँ

इस कहानी में मोहनलाल शर्मा एक ब्राह्मण न होकर एक मीरासी है और गुलजारी लाल शर्मा भी एक ब्राह्मण बताते हैं क्योंकि दोनों पिछले पच्चीस वर्षों से शहर में ही रहते हैं, वे अपनी पुरानी जाति को भूलकर नई जाति अपना चुके हैं तथा दोनों परिवारों के मध्य शादी सम्बन्ध भी हो जाते हैं तथा कुछ समय बाद दोनों परिवारों की वास्तविक जाति का पता चल जाता है—"ये तो हमारी रोजी-रोटी है। मीरासी के पास ये न होवे तो वह मीरासी कैसा?"[17]

इस प्रकार दलित समाज के लोग अपनी जाति-बिरादरी से दूर हाने की कोशिश कर रहे हैं और अपने आप को ऊँची जातियों में ढालने के कारण वे अपने ही समाज को घृणा की नजर से देखने लगे हैं। समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य भूल गये हैं।

3.3 सूरजपाल चौहान की कहानियाँ

दलित साहित्य के समर्थ रचनाकार सूरजपाल चौहान के कहानी संग्रह 'हैरी कब आएगा' की कहानियाँ दलित संवेदनशीलता और अनुभवों के साथ-साथ ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। इन सभी कहानियों में सामाजिक परिवर्तन की गूँज है। सूरजपाल चौहान ने घिनौने रूप, उसकी भयावहता और वीभत्स स्थिति को बड़ी ईमानदारी से इन छोटी चुस्त-दुरस्त कहानियों में रेखांकित किया है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ दूसरी दुनिया का यथार्थ 'चर्चित दलित कहानियाँ' में प्रकाशित हुई है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

हैरी कब आएगा

इस कहानी में एक पात्र हरदेव सिंह पंजाब विश्वविद्यालय में एक दलित युवती मोनिका से प्रेम करता है। उसे पता नहीं होता है कि मोनिका एक दलित लड़की है। हैरी का उसके बिना जीना ही मुश्किल है। यह एक संवाद के माध्यम से देख सकते हैं—

हैरी का मित्र संजय कहता है कि, "हैरी, मोनिका बहुत अच्छी लड़की है। क्या जिस्मानी खूबसूरती।"

"हमें तेरी पसन्द का फक्र है। बस एक प्राब्लम है...।"

"अब हमारे बीच कोई प्राब्लम नहीं आ सकती है। मैं दुनिया से भीड़ जाऊँगा। मैंने अपने माता-पिता से बात कर ली है। शादी करूँगा तो मोनिका से, वरना उम्र भर यूँ ही..." हैरी लगातार बोले जा रहा था।

"क्योंकि किसी ओर से ...!" हैरी ने पूछा।

"नहीं यार, ऐसा कुछ नहीं है ...।"

"बस ...।" संजय ने हैरी को टोका।

"बस क्या ...।"

"वो एस.सी. ही है।"[18]

इस संवाद से यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि हैरी बहुत प्यार करता है। वह मोनिका के प्रेम में मरने के लिए भी तैयार है। पर एक शब्द एस.सी. सुनकर सारे प्रेम को पानी में मिला देता है। हमारे देश में युवकों की स्थिति यह है कि उच्च स्तर पर पढ़ाई करने के बावजूद अपने ही स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने वाले तथा खूबसूरत होने पर भी लड़कियों से घृणा करते हैं।

सारे जहाँ से अच्छा

इस कहानी में कथा नायक कैप्टन वीरेन्द्र के पिता से ठाकुर जमीन छीन लेते हैं तथा गाँव में अपनी जमींदारी की धाक रखते हैं। वीरेन्द्र के पिता उसे मजदूरी करके पढ़ाते हैं तथा वीरेन्द्र कप्तान बन जाता है। इन सभी परिवर्तनों के बावजूद वीरेन्द्र अपने गाँव तथा

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

जमीन को नहीं भूल पाता है एवं उसकी इच्छा रिटायरमेन्ट के बाद अपने गाँव में बसने एवं खेती-बाड़ी करके अपना शेष जीवन गुजारने की होती है। वह गाँव के ठाकुर साहब से जमीन लेना चाहता है। आज के कम्प्यूटर युग में दलित पढ़-लिखकर सवर्णों की तरह पैसा कमाना चाहता है लेकिन सवर्ण लोग अपने आप को हमेशा चालाक मानते हैं तथा अपनी बोली की मीठी छुरी से सबको बेवकूफ बनाने की फिराक में रहते हैं।

जलन

इस कहानी में कथा नायक तेजा बैंक से सुअर के व्यापार को शुरू करने के लिए कुछ लोन लेता है तथा मेहनत और लगन से उसका व्यापार जोर-शोर से चलता है। समाज में उसकी वाह-वाह भी होती है। वह छप्पर की जगह पक्का मकान भी बनवा लेता है। तेजा का यू तेजी से विकास करना ठाकुरों को सहन नहीं होता है तथा गाँव के सभी ठाकुर तेजा पर षड्यन्त्र रचते हैं।

"सत्यानाश हो सरकार का। चूहड़े-चमारों के लिए ऋण की व्यवस्था की है। इस सरकार से इन्हें तरह-तरह की सुविधा दी जा रही है। तेजा को देखा कल तक बच्ची कुठरिया व फूस के छप्पर में रहने वाला आज पक्की हवेली बनाकर हमारे सामने सीना तानकर रह रहा है। मेरा तो इसकी खुशहाली देखकर सीना फटने को हो रहा है। बहुत बुरा समय आ गया है, लोग इज्जत करना ही भूल गए।"[19] यहाँ पर दलित अपनी मेहनत से आगे बढ़ता भी है तो उसे सवर्ण किसी-न-किसी रूप में रोकने की कोशिश बदस्तूर जारी रखते हैं।

तीन चित्र

इसमें एक दलित पात्र चतरसिंह काम न मिलने पर तथा अधिक रकम न होने पर, शहर में अपने चाचा की देखा-देखी चाय की दुकान खोलना चाहता है। वह खोल भी लेता है तथा चाय सस्ती और अच्छी होने के कारण उसके ग्राहक भी बन जाते हैं। यह बात पं. बद्रीनारायण को अच्छी नहीं लगती। वह उसे बर्बाद करने की सोचता है तथा ग्राहकों को भड़काता है—"क्यों बात का मतलब क्यों नहीं है, यह पण्डित की दुकान है और सामने वाली चूहड़े की।"[20] माथे पर तेवर चढ़ाते हुए अपनी बात को जारी रखते हुए कहता है—"पिओ खूब चूहड़े की चाय, करो अपनो-अपनो का धरम भिष्ट।"[21]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

इस प्रकार हम दलितों के व्यापार के प्रति सवर्णों की इस प्रक्रिया को समझ सकते हैं।

साजिश

इस कहानी का नायक नत्थु एक दलित युवक है। दसवीं पढ़ लेने के बाद वह बेरोजगार ही रह जाता है तथा रोजगार के लिए ट्रांसपोर्ट का धन्धा करने के लिए बैंक लोन पाने की मंशा से बैंक जाता है। परन्तु दुर्भाग्य से बैंक मैनेजर सवर्ण है, जो उसे बैंक लोन देने की बजाय गलत सलाह देता है—"नत्थु तू पागल है क्या? मेरी बात क्यों नहीं मानता? इस ट्रांसपोर्ट के धन्धे में क्या रखा है, दिन-रात मेहनत और अनेक तरह की सिर खपाई, कहीं दुर्घटना हो जाए तो हो गया जीवन बर्बाद। ऊपर से सबसे बड़ी बात यह कि लोहा तुझे फले या न फले। कैसे चुकाएगा बैंक का कर्ज?"[22] यहाँ पर ऐसे लोग अधिक दिखाई देते हैं और दलितों का विकास उन्हें कतई पसन्द नहीं आता है तथा कहीं-न-कहीं एक साजिश के तहत दलितों के सामने दीवार खड़ी कर देते हैं।

बदबू

यहाँ पर कथानायिका सन्तोष एक मेधावी छात्रा है परन्तु उसका पिता उसे पढ़ाने के खिलाफ हैं क्योंकि वह अंधविश्वास का शिकार है। इस पर पं. मंगलराम उसके पिता को समझाने की कोशिश करता है कि "किशोरिया तेरी छोरी पढ़ने में होशियार है, पूरे स्कूल में अव्वल आती है ... मेरी छोरी के संग उसे शहर भेज दे, उसके रहने और पढ़ाई का खर्चा भी देते रहूँगा, बस तू एक बार हाँ कर दे।"[23] पर उसका पिता उसकी सलाह नहीं मानता तथा पण्डितजी से कहता है कि, "तुम ऊँची जाति के लोग हो? अपनी जवान होती बेटी को शहर भेज सकते हो, मैं ऐसा करूँगा तो समाज में मेरी नाक कट जायेगी, बिरादरी के सभी लोग ताली देकर हँसेंगे और कहेंगे कि विवाह योग्य लड़की को शहर भेज दिया ... ना पण्डित जी ना, मैं तो अब इसके हाथ पीले करके बेटी ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ।"[24]

यहाँ पर दलितों की एक मजबूरी है कि वे अपनी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सही नहीं होने के कारण शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते और अगर परिवार में कोई इच्छुक है, तो वह भी इनकी रूढ़िवादिता और तंगहाली का शिकार हो जाता है। आर्थिक स्थिति भी उन्हें आगे पढ़ने से रोक देती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

परिवर्तन की बात

इस कहानी में आज का दलित अनेक आर्थिक विसंगतियों के बावजूद अपने पुश्तैनी धन्धों को छोड़कर कोई नया काम करना चाहता है, साथ ही अपनी पढ़ाई भी पूरी करना चाहता है। यहाँ पर किसना नामक युवक एक मरी गाय को उठाने से इन्कार कर देता है और इसे सवर्ण ठाकुर अपनी तौहीन समझकर उसे प्यार से फुसलाने की कोशिश भी करता है तथा न मानने पर ज्यादती करता है एवं पुलिस भी बुला लेता है और उसके सामने मजदूरी का लालच भी दिखाता है पर किसना इसका उत्तर इस तरह देता है—"नहीं साहब, मजूरी की बात नहीं है? थानेदार साहब हमने फैसला लिया है कि मरा जानवर उठाने का काम नहीं करेंगे।"[25] इस प्रकार यहाँ पर यह बतलाया गया है कि आज का सजग दलित खुलना चाहता है और रूढ़िवादिता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

बहुरूपिया

इस कहानी में रामसेवक नामक व्यक्ति दलितों के प्रति कोरी आत्मीयता दिखाकर दलित एकता के लिए भाषण देता है तथा उसका उद्देश्य दलित समाज को बढ़ावा देना नहीं बल्कि धन इकट्ठा करना है। वह एक सन्दर्भ में लेखक के हाथ में पाँच हजार की गड्डी देते हुए कहता है कि, "आप किस दुनिया में जी रहे हैं, आज का युग शीघ्र रुपया बनाने का युग है ... हमें समाज से क्या लेना-देना, समाज जाय भाड़ में।"[26] इस बात को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि लेखक महोदय यह पकड़ो इन रुपयों से भगवान् महर्षि वाल्मीकि के ऊपर पुस्तक लिख डालो। ध्यान रहे उस पुस्तक में वाल्मीकि को भंगी जाति का पुरखा साबित करना है। यह पुस्तक वाल्मीकि समाज में रातों-रात बिक जायेंगी, फिर देखना इस समाज में आपना नाम होगा। हो सके तो पुस्तक बिक्री के लाभ का कुछ हिस्सा मुझे भी दे देना।

यहाँ पर कुछ दलित ऐसे भी हैं जो आर्थिक प्रलोभन की वजह से अपनी सारी नैतिकता खो बैठते हैं। वे दलित समाज की भलाई नहीं, धन कमाना चाहते हैं।

घाटे का सौदा

यहाँ पर अनिल नामक युवक का विवाह एक दलित लड़की रजनी से हो जाता है। अनिल के पिता जब एस.सी. कहकर लड़की को छोड़ने की बात कहता है तो अनिल

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

उत्तर देता है कि "पिताजी आप और आपका समाज जात-पात को माने तो माने पर मैं नहीं मानता, रजनी में क्या कमी है, पढ़ी-लिखी है और फिर वह मेरी पत्नी है।"[27] आगे अपनी पत्नी को समझाते हुए कहता है कि "ऐसा कुछ नहीं होगा, न मैं तुम्हें तलाक दूँगा और न मेरे पिता तुम्हारे पिता पर मानहानि का मुकदमा दायर करेंगे।"[28] यहाँ पर यह सिद्ध होता है कि सवर्ण युवकों में भी बदलाव आ रहा है। बुजर्गों में कुछ ऐसे हैं जो अभी भी अपनी गाँठ को नहीं खोल पा रहे हैं। ऐसे युवक हमारे देश का भविष्य है तथा ये बदलाव में कामयाब हो सकते हैं।

अपना-अपना धर्म

इस कहानी में एक सवर्ण रामचरण पाण्डे, जो नए विचारों का व्यक्ति है, पर गरीब होने के कारण वह जाति-पाँति और धर्म जैसी बातों पर विश्वास नहीं करता है। हिन्दू धर्म के विरुद्ध काम (नाली सफाई) करते हुए सांगवान से कहता है कि "क्या परिवार के लोग मेरे बाल-बच्चों का जीवन भर भरण-पोषण करेंगे, नहीं साहब, घर-परिवार के लोग केवल बातें ही बना सकते हैं, मदद के लिए आगे कोई नहीं आता।"[29] यहाँ हम देख सकते हैं कि हमारे देश के सवर्ण लोग जो गरीब हैं धर्म जैसी बातों पर विश्वास नहीं रखते। वे पहले अपना पेट भरने की सोचते हैं। यदि वे पुरानी परम्पराओं में उलझ जाएंगे तो उनका पेट कहाँ से भरेगा। ऐसी स्थिति में वे किसी प्रकार मेहनत करके अपने परिवार का पालन-पोषण करना श्रेष्ठ मानते हैं।

सासु की मानसिकता

यहाँ पर अमर एक सवर्ण युवक है जो परम्पराओं एवं रूढ़ियों का विरोधी है। उसकी माता अपने घर में अमर की पत्नी रंजना को घर का काम नहीं करने देती, उसे थाली से दूर रखती है, चूल्हे के आस-पास भी नहीं फटकने देती है। ऐसे विचारों को अमर नहीं मानता और कहता है कि "यह कैसी विडम्बना है—एक महिला के साथ दूसरी महिला का ऐसा बर्ताव। आज के युग में भी इस प्रकार की घटिया बातें ... भला इसमें रंजना का क्या दोष? यह तो प्रकृति का नियम है। फिर माँ रंजना के साथ ... वाकई, भारत की महिला तो दलितों में भी दलित है।"[30]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अँगूरी

कहानी की नायिका अँगूरी एक दलित युवती है। गाँव का ठाकुर उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है तथा आधी रात को अंगूरी के घर पर जाकर बलात्कार करने की सोचता है तथा कहता है कि "देख अँगूरी मैं तेरे रूप और यौवन का दीवाना हूँ। तेरा गेंदा तो आज आने से रहा। अब तू मेरे पास आ और मेरी बाँहों में समा जा।"[31] यहाँ हम देख सकते हैं कि सवर्णों की प्रभुत्ववादी मानसिकता तथा स्त्री के प्रति उनके हीन दृष्टिकोण के कारण नारी को अत्याचार, अपमान, अमानुषिकता और पीड़ा से गुजरना पड़ता है और इसका जीता-जागता प्रमाण अंगूरी कहानी में अंगूरी है। यहाँ पर लेखक ने कहानी के आधार पर इतिहास में दलित नारियों पर हुए अत्याचारों को बड़ी प्रामाणिकता से दिखाने की चेष्टा की है।

टिल्लू का पोता

इस कहानी में यह बताने की चेष्टा की गई है कि अभी भी सवर्णों के हृदय में दलितों के शिक्षित हो जाने पर भी कोई स्थान नहीं, वे सभी उनके साथ पशुवत व्यवहार करते हैं। यहाँ पर गाँव का एक व्यक्ति शहर में नौकरी करता है तथा गर्मियों की छुट्टी लेकर विवाह में सम्मिलित होने के लिए गाँव जाते समय बस से उतर कर पाँच किलोमीटर चलना पड़ता है। जेठ माह की दोपहरी में बच्चों को प्यास लगती है तो रास्ते में एक कुआँ दिखाई देता है जो सवर्णों का है। वह अनुमति लेकर पानी खींचने के लिए कुएँ की ओर चलता है तो कुएँ का मालिक आवाज देता है "रुको! कौन गाँव जा रहे हो? किसके यहाँ जा रहे हो?"[32] आगे जब बात आगे बढ़ती है तो वह कहता है, "ओ भंगनिया, नेक पीछे हट के पानी पी, यह शहर ना है, मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी। साले भंगिया चमारा के शहर में जाकै नए-नए लत्ता (कपड़े) पहन के गाँव में आ जात है। कुछ पतो न चलतु कि जो भंगिया-चमार के हैं कि नाय (नहीं)।"[33]

इस प्रकार यहाँ पर जाति प्रथा को आज के आधुनिक भारत के गाँवों में सवर्णों ने संजोके सुरक्षित रखा है। यह उनकी संकुचित मानसिकता और रूढ़िवादिता के कारण ही है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

छूत कर दिया

इस कहानी में दलित परिवार से बिहारी ऊँची शिक्षा प्राप्त करके बहुत दिनों बाद अपने घर, अपने गाँव में आता है। गाँव में सबसे पढ़ा-लिखा होने के कारण गाँव की आम जनता उसका काफी सत्कार करती है। इसी उत्साह में गाँव का प्रधान भी उससे मिलने को लालायित हो उठता है लेकिन वही प्रधान सोचता है कि मैं जाऊँगा तो मेरी नाक नीची हो जाएगी। फिर सोचता है मिलने में बुराई ही क्या? चुनाव में वोट तो इन्हीं चमार-भंगियों से आते हैं। इससे यहाँ यह स्पष्ट होता है कि दलितों को सवर्ण लोग केवल अवसर होने पर ही मीठी बातें करके फुसलाने की कोशिश करते हैं तथा गाँव का प्रधान वोटों के लिए बिहारी को आदर्श पुरुष मानकर गाँव के दलितों से वोट चाहता है तथा आगे— "बिहारी को मंच पर बुलाकर स्वागत करने में गाँव भर के दलित प्रसन्न हो जाएंगे। वे समझेंगे कि एक पढ़े-लिखे दलित युवा का स्वागत ग्राम प्रधान व कमेटी सदस्यों ने किया है तो निश्चय ही बहुत बड़ा सम्मान दिया है। ऐसा करने से मुझे अगले चुनाव में ग्राम-प्रधान का पद फिर बड़ी आसानी से मिल जाएगा।"[34]

चेता का उपकार

इसमें कथानायक चेता अपनी जिन्दगी को त्यागकर एक सवर्ण जाति के मुखिया ठाकुर की पत्नी की सहायता करता है। इस विषय को लेकर चेता का उपकार मानना चाहिए, क्योंकि उसने सवर्णों की तरह अत्याचार नहीं किया, वरन् उसने सहायता ही की, भलाई ही की तथा ठाकुर उपकार को भूलकर सारा कोप चेता पर निकालना चाहते हैं— "चूहड़े चमारों को मारने के लिए भी किसी अपराध की जरूरत है भला, इन सालों का काम ही है पिटाई खाना।"[35] यहाँ पर हम समझ सकते हैं कि दलित में ईमानदारी और सहनशक्ति का भण्डार भरा हुआ है। प्राचीनकाल से धार्मिक रीति-रिवाज से दलित सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से पीड़ित होते आ रहे हैं। सवर्णों की पीड़ा वे अभी भी झेलते आ रहे हैं।

प्राण प्रतिष्ठा

इस कहानी में लेखक दशहरे की छुट्टियों में अपने परिवार के साथ दो-चार दिन के लिए हरिद्वार जाते हैं। लेखक को पता नहीं रहता कि हरिद्वार में अर्द्धकुम्भ मेला भी चल

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

रहा है। हरिद्वार के सभी होटलों में जगह खाली नहीं है। वे वहाँ से रिक्शा लेकर एक मन्दिर की तरफ रवाना होते हैं। पण्डित ने वहाँ उनकी जात के बारे में पूछा। इस बात से लेखक परेशान हो जाता है। लेकिन फिर भी वह संयम बरतता है तथा मूर्ति को धोने का कारण पूछता है। इस पर मन्दिर का पुजारी उत्तर देता है, "उस मूर्ति को हम लोग दूध, गंगाजल आदि से धोकर इसलिए पवित्र करते हैं कि भगवान् की उस मूर्ति को बनाने वाला अछूत और नीच जाति का होता है।"[36] यहाँ पर प्राण प्रतिष्ठा के नाम पर धर्म के ठेकेदार द्वारा लोगों को मूर्ख बनाया जा रहा है।

पाँचवीं कन्या

इस कहानी में एक पात्र मिश्रा रामनवमी के दिन पाँच कुँवारी कन्याओं को भोजन करवाना आवश्यक मानते हैं, पर उन्हें चार ही कन्या मिलती है। मिश्रा जी अपनी जीप के ड्राईवर को भी भेजते हैं पर उन्हें कोई नहीं मिलती है। संयोग से एक दलित कन्या मिल जाती है, और उसे वे अपने घर में पाँचवीं कन्या के रूप में खाना खिलाना चाहते हैं। अचानक कैलास बहन की आवाज सुनकर श्रीमती मिश्राजी को 440 वोल्ट का करण्ट लग जाता है और वो पाँचवीं कन्या को भोजन खिलाने का ख्याल दिमाग से निकाल देती है। क्योंकि वह लड़की दलित है। इसलिए उस लड़की को भोजन नहीं करवाया जाता है। इस पर लेखक मिश्राजी से प्रश्न करते हैं जो इस प्रकार है—

लेखक—"मिश्रा जी उस पाँचवीं कन्या को बुला लेते, बाहर खड़ी इन्तजार कर रही है।"

मिश्रा जी—"हमने इन चारों से ही काम चला लिया।"

लेखक—"लेकिन बिना पाँचवीं कन्या को भोजन करवाए पूजा अधूरी रह जाएगी।"

मिश्राजी—"हिस्सा निकालकर देवी मैया के नाम से अलग रख दिया है। आफिस जाते समय मार्ग में किसी गाय को खिलाता जाऊँगा।"[37]

इससे यह स्पष्ट होता है कि सवर्ण लोग जाति एकता की बात कितनी भी कर लें परन्तु उनका मन हमेशा ही काला रहेगा, उनमें कभी भी जागृति नहीं आएगी, वे दलितों

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

को पशु ही समझेंगे, लेखक कहना चाहता है कि ऐसी घोर अमानवीय विचारधाराओं से ग्रसित लोगों पर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए।

3.4 मोहनदास नैमिशराय की कहानियाँ

आवाजें

इस कहानी में एक ओर दलितों के साथ हो रहे अन्याय और अत्याचार का चित्रण किया गया है तो दूसरी ओर समाज में एक दिन के सूरज की किरण के रूप में परिवर्तित होकर दलितों के मन में चेतना जाग्रत करती है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने दलितों की बदलती परिस्थितियों की ओर अपने हक के लिए लड़ने को प्रेरित किया है।

अपना गाँव

यहाँ पर लेखक ने दलित समाज को नया विकल्प दिया है कि सवर्ण जातियों के अत्याचारों-जुल्मों और उत्पीड़न से बचने का एक ही रास्ता है कि वे अपना अलग समाज 'दलित समाज' का निर्माण करें और वह अलग से अपना गाँव बसाकर ही हो सकता है। हरिया नामक व्यक्ति इस चेतना का प्रतिनिधित्व करता हुआ दलितों की नयी-पुरानी पीढ़ी को संघर्ष की राह दिखाते हैं, जो अस्सी साल से सारी परम्पराओं को किसी तरह मानता था, एक दिन उसी आदमी ने इन सारी परम्पराओं को तोड़ने की शुरुआत की थी। इसका आशय यह है कि आज का दलित पुरानी परम्पराओं एवं रूढ़ियों को तोड़कर नयी संस्कृति और नये समाज के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देता है।

हारे हुए लोग

यह कहानी गाँवों की सामाजिक, वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद जैसी समस्याओं पर केन्द्रित है जिनसे गाँव के दलितों का सर्वाधिक शोषण-उत्पीड़न होता है। शहर भी इस समस्या से अछूता नहीं है, क्योंकि वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद से पैदा हुआ छुआछूत का दंश दलितों को शहरों में मानसिक स्तर पर झेलना पड़ता है लेकिन गाँवों में यह स्थिति अत्यन्त दयनीय है। दलितों को उच्च सरकारी नौकरी मिलने के बाद भी किराए पर मकान न मिलने से उन्हें परेशानी उठानी पड़ती है। इस दर्द को भुक्तभोगी ही समझ सकता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

नया पड़ोसी

हमारे समाज में पड़ोसी को सबसे नजदीक का रिश्तेदार माना जाता है। चाहे कोई मुसीबत हो या कोई काम सबसे पहले हमारा पड़ोसी ही हमारी मदद करता है। इस कहानी में लेखक ने जातिवाद और वर्ण-व्यवस्था का घिनौना चेहरा अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया है। अगर कोई दलित अपने नये पड़ोसी से आत्मीय सम्बन्ध बनाना चाहता है तो जातिवाद का वही रूप सामने आ जाता है। लेखक यहाँ यह बतलाता है कि महानगरीय सभ्यता में मानवीय सम्बन्धों की दूरी निरन्तर बढ़ती जा रही है और लोग अपने बन्द कमरों में रहने के लिए विवश हो गए हैं।

रीत

इस कहानी में लेखक ने ग्रामीण समाज का ऐसा ढाँचा प्रस्तुत किया है जिसमें दलितों की औरतों का यौन शोषण करना भू-स्वामी और जमींदारों का एकाधिकार सा बन गया है और जहाँ यह परम्परा नहीं है वहाँ वह जोर जबरदस्ती या बलात्कार का रूप ले लेता है। लेखक ने भी एक ऐसी ही कहानी को गाँव की इन कुप्रथाओं और ज्यादती के रूप में दर्शाया है। इस प्रकार दलित समुदाय प्रतिरोध से आगे बढ़कर प्रतिशोध की परम्परा कायम करता हुआ दिखाई देता है।

कर्ज

इस कहानी के माध्यम से महाजन जैसे लोगों के द्वारा दलितों पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ एक दलित कैसे अपने परिवार के साथ हुए अन्याय का बदला लेता है। हिन्दू धर्म रूढ़ियों और परम्पराओं का बोझ ढोते-ढोते दलितों का जीवन कैसा दयनीय बन जाता है। इस कहानी में धार्मिक अनुष्ठानों, जैसे-'मृत्युभोज' का आयोजन करने के लिए पूरे गाँव का दबाव पड़ता है तथा यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि क्या कर्ज लेकर यह सब करना उचित है?

एक अखबार की मौत

इस कहानी का पात्र प्रजातन्त्र अखबार का सम्पादक है, जो ब्राह्मण है। सम्पादक मानसिकता की दृष्टि से साम्प्रदायिकता एवं जातीय भावना से ग्रसित है। वह अपने संस्कारों के कारण अखबार की जनतात्रिक सूचना देने का कार्य संकुचित कर देता है। इसके

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

फलस्वरूप अखबार की लोकतान्त्रिकता समाप्त हो जाती है। अखबार का नाम प्रजातन्त्र और नाम ब्राह्मणतन्त्र होने के कारण भाषा व्यंग्यात्मक बन पड़ी है।

हमारा जवाब

इस कहानी में लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि कैसे हिम्मतसिंह जैसा दलित व्यक्ति कैसे अपने दलित होने के एहसास के साथ सवर्णों के बीच अपने हक के लिए लड़ता है और जाते-जाते दलितों को कह जाता है कि वो भी अपने हक की लड़ाई जारी रखे और हमारा जवाब पाकर शान्त बैठे।

सुनो बरखुरदार

इसमें लेखक यह कहना चाहता है कि कैसे एक सवर्ण के मरने के बाद जब कोई दलित उसके ऊपर कफन डालते हैं तो उन्हें अपवित्र मानते हैं। खुद तो अपनी जात बिरादरी से दूर हटकर बनिये की शवयात्रा में शामिल तक होने में ऐतराज दिखाते हैं और जब कोई दलित कफन डालता है तो उन्हें इस बात की घृणा है। जाति का कीड़ा जिन्दगी और मौत के बाद भी सवर्णों के दिलों में जिन्दा रहता है। "सुनो बरखुरदार ये सब जात-पाँत, ऊँच-नीच की दीवार हमैई तोड़नी होगी।"[38]

बरसात

इस कहानी में लेखक ने बताया है कि दलित बस्ती के लिए एक दिन की बरसात भी आर्थिक तंगी के एहसास को कुछ क्षण के लिए राहत दे जाती है और दलितों के जीवन में खुशियाँ भर देती है।

उसके जख्म

इस कहानी में लेखक ने बताया है कि भारत के गाँवों की सामाजिक संरचना और वर्ण-व्यवस्था जातिवाद पर आधारित होती है। लेखक कहता है कि न्यायालय भी दलितों के जख्म नहीं भर सकता क्योंकि उसका स्वरूप भी लोकतान्त्रिक नहीं है। वहाँ तो केवल लोकतन्त्र का नाटक है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

3.5 जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ

डॉ. जयप्रकाश कर्दम दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। हिन्दी दलित साहित्य की स्थापना के लिए जितना रचनात्मक संघर्ष उन्होंने किया है इसका दूसरा उदाहरण कठिन है। हिन्दी के अन्य कथाकारों की कहानियों में और जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में जो अन्तर है, वह यह कि अन्य कथाकारों की कहानियों में दलित पात्र उत्पीड़न का शिकार तो है, लेकिन वे प्रतिकार नहीं बता पातीं।

तलाश

इस कहानी का नायक रामवीर सिंह, जो बिक्रीकर अधिकारी है, जब गुप्ता जी के मकान में रामवती चूहड़ी से खाना बनवाता है, तो मकान मालिक की पत्नी को यह नागवार गुजरता है और अन्ततः मि. गुप्ता रामवीर सिंह को यह बात कह ही देते हैं कि यदि आपको रामवती से ही खाना बनवाना है तो आप कहीं और मकान ले लीजिए। इस पर रामवीर सिंह का प्रतिकार देखिए—"रामवीर सिंह ने निश्चय किया कि वह रामवती से खाना बनवाना बन्द नहीं करेंगे और उन्होंने गुप्ता जी को जवाब दे दिया—यदि यह बात है, तो मैं आपका मकान खाली करने को तैयार हूँ लेकिन जातिगत भेद-भाव के आधार पर मैं रामवती से खाना बनवाना बन्द नहीं करूँगा।"[39]

लाठी

इस कहानी का पात्र एक दलित किसान है, जो अपनी बारी आने पर खेत में पानी देने जाता है, लेकिन उस समय तक गाँव का दबंग जाट किसान का खेत नहीं भर पाता है, पानी चलने के मुद्दे को लेकर दोनों में कहासुनी हो जाती है तथा जाट किसान बदनी दलित किसान को लाठी मार देता है। दलित किसान अपने मोहल्ले में आकर घटना की जानकारी देता है, तो मोहल्ले के लोग इस घटना का बदला लेने की सोचते हैं।

जहर

इस कहानी का नायक एक दलित ताँगे वाला है। रास्ते में किसी दलित नेता की रैली में जाती हुई दलितों की भीड़ को देखकर ब्राह्मण भड़क उठता है और दलितों के खिलाफ जहर उगलने लगता है। इस पर ताँगे वाला उसे रास्ते में उतार देता है। पण्डित के प्रति उसका आक्रोश यू व्यक्त हुआ—"दो रुपये का नुकसान मुझे होगा ना। मैं सौ रुपये

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

का नुकसान भी बर्दाश्त कर लूँगा, पर तेरे मुँह से अपमानजनक बातें बर्दाश्त नहीं करूँगा। चल उतर जल्दी से। बातों में लगाकर के टैम खराब मत कर मेरा। नहीं तो यू हन्टर देख रहा है मेरे हाथ में, इससे सूंत दूँगा तुझे।"[40] इससे यह सिद्ध होता है कि दलित अब जाग्रत हो रहे हैं और अब वे न तो शाब्दिक हिंसा बर्दाश्त करने को तैयार हैं और न ही शारीरिक। इस प्रकार परिवर्तन की आहट जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में देखी जा सकती है।

मूवमेण्ट

इस कहानी का नायक एक सामाजिक कार्यकर्त्ता की भूमिका में रहता है तथा प्राय: घर से बाहर रहने के कारण अपनी पत्नी और बच्चों को पर्याप्त समय नहीं दे पाता है। इससे उसकी पत्नी सुनीता नाराज होकर उनसे पूछती है कि, "मैं पूछती हूँ कि क्या यही प्रगतिशीलता है तुम्हारी।"[41] वह अपनी पत्नी को समझाने का प्रयास करता है कि यह सच नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि तुम भी घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर सामाजिक आयोजनों में हिस्सा लो और काम करो। इस कहानी में यह स्पष्ट होता है कि हम जिस अन्याय के खिलाफ बाहर की दुनिया से लड़ रहे हैं, उसे अपने घर से भी दूर करें।

मोहरें

इस कहानी में उत्तर भारत का विद्यालयी माहौला पूरी तरह से प्रतिभाषित होता है। इसमें एक सवर्ण अध्यापक किसी दलित अध्यापक को विद्यामन्दिर में बर्दाश्त नहीं कर पाता है तथा उसके खिलाफ षड्यन्त्र भी रचता है तथा सवर्ण अध्यापक दलित बच्चों को पढ़ाने के प्रति गम्भीर नहीं है। वे नहीं चाहते हैं कि दलित बच्चे पढ़-लिखकर कामयाब हों, इसलिए वे हमारे बच्चों को पढ़ाने में तनिक भी रुचि नहीं लेते हैं। हमारा शिक्षित होना उनके लिए चुनौती बन सकता है।

कामरेड का घर

इस कहानी के पात्र कई मार्क्सवादी बुद्धिजीवी हैं, जो प्राध्यापक हैं, अखबारनवीस हैं, लेकिन ये सभी लिखने-पढ़ने वाले प्रगतिशील विद्वान् हैं, जो विभिन्न जातियाँ और धर्मों से आते हैं, लेकिन मुख्य आचरणगत द्वन्द्व कामरेड तिवारी और कामरेड असलम के बीच हैं—

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

"किसलिये रूक जाऊँ मैं, क्या हिन्दुत्व को पानी देने के लिए? मेरे यहाँ रूकने का कोई औचित्य नहीं है। मैं तो यह मानकर चल रहा था कि आप लोग सच में प्रगतिशील हैं और परिवर्तन के अपने संकल्प के प्रति ईमानदार हैं। इसलिए मैं आप लोगों के साथ जुड़ा था लेकिन आप लोग तो हिन्दू धार्मिकवाद में पूरी तरह जकड़े हुए हैं अन्दर से और उसकी रक्षा कर रहे हैं। ऐसे में आपसे कोई उम्मीद करना बेमानी है। आपके सिद्धान्त और व्यवहार के दोगलेपन ने मुझे निराश किया है। मैं इस दोगलेपन के साथ खड़ा नहीं रह सकता।"[42]

कामरेड असलम का यह कथन दलित साहित्य और मार्क्सवाद के रिश्तों को पूरी तरह साफ कर देता है। दरअसल भारत में मार्क्सवाद भी हिन्दू वर्चस्व को कायम रखने के लिए एक हथियार के रूप में ही प्रयोग हुआ है।

नो बार

इस कहानी में एक पिता अपनी बेटी को समझाता है कि "वह तो सब ठीक है कि हम जाति पाँति को नहीं मानते और मैट्रीमोनियल में नो बार छपवाया था, लेकिन फिर भी कुछ चीजें तो देखनी ही होती हैं। आखिर 'नो बार' का यह मतलब तो नहीं कि किसी चूहड़े-चमार के साथ ...।"[43]

जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ दलित सन्दर्भों में दलितों और गैरदलितों में आ रहे भावात्मक परिवर्तनों को रेखांकित करती है तथा अपने कथ्य और शिल्प दोनों में बेजोड़ कहानियाँ है जो दलित जागरण और हमारे सोच का विस्तार करती हैं। सुविचारित और सुचिन्तित उद्देश्यों में ये कहानियाँ मेरे दृष्टिकोण से पूरी तरह सफल हैं।

खरोंच

डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी का यह दूसरा कहानी संग्रह है। इसमें कहानी का नायक रंगलाल क्लास वन अफसर है परन्तु जाति से दलित होने के कारण कार्यालय में कर्मचारियों की निन्दा का पात्र है। वे ज्यादातर कार्यालय में अपनी कार या स्कूटर से आते हैं जबकि रंगलाल बस के द्वारा। कर्मचारियों द्वारा रंगलाल को कंजूस जैसे भद्दे उपमानों के माध्यम से उत्पीड़ित किया जाता है। अन्ततः वे कार खरीदने का फैसला करते हैं तथा कार से ऑफिस जाते समय कार में खरोंच आ जाता, जिससे रंगलाल बहुत दु:खी होता है, जैसे यह खरोंच उसके दिल पर लगी हो।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सूरज

इस कहानी में दलित छात्र-छात्राओं का जीवन संघर्ष वर्णित है। छात्र जीवन में ये किस प्रकार संघर्ष करते हैं तथा सामाजिक उत्पीड़न का सामना करते-करते कैसे मर मिटते हैं। यहाँ पर कहानी का नायक सूरज इसी संघर्ष की लड़ाई में अपने प्राण गँवा देता है लेकिन यह कहानी एक सन्देश देती है कि मरना है तो शेर की मौत मरो, कायर की नहीं। इसलिए बाबा साहेब ने कहा था—"जीना है तो शेर की तरह जीना सीखो, बकरी बनकर नहीं। बलि तो बकरी की दी जाती है, शेर की नहीं।"

हाऊसिंग सोसायटी

इस कहानी का नायक विजय महतो है, जो रेलवे मन्त्रालय में डिप्टी सेक्रेटरी के पद पर विराजमान है। आयु पचास हो चुकी है। वे सरकारी आवास में रह रहे हैं लेकिन अब वे खुद का मकान बनाने की सोचते हैं जिसके लिए वे एक सोसायटी के सम्पर्क में आते हैं लेकिन बाद में सोसायटी वाले दलित विजय महतो को मकान देने से मना कर देते हैं तथा अन्त में विजय कानून का सहारा लेकर सोसायटी की मेम्बरशिप हासिल कर लेता है।

मंगलसूत्र

अन्ध परम्परा को मानने वाली हिन्दू नारी का परिचय कराने वाली कहानी है। यह कहानी पाठकों के मन में एक अजीब-सा विचार छोड़ जाती है। पाठक सोचने लगता है कि क्या इस वैज्ञानिक युग में भी नारियों की ऐसी सोच होनी चाहिए। जब स्त्री अन्य पुरुष के साथ सम्पर्क कर ही रही है तो परम्परा और पति धर्म की बात कैसे कर सकती है? आदि सोचनीय विचार पाठकों के दिल को झकझोर देता है। इस कहानी में नारी की अंध मानसिकता तथा इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए जुनून का खूब परिचय मिलता है।

पगड़ी

परिवार के मुखिया को सगाई में पगड़ी बाँधकर सम्मानित करने की प्रथा को उठाते हुए इस कहानी की रचना की गई है। भारतीय परिवार में ज्यादातर पुरुष ही परिवार का मुखिया माना जाता है लेकिन जब स्त्री मुखिया की भूमिका में हो तो, इस बात पर प्रश्नचिह्न सा लग जाता है। इस कहानी के माध्यम से आज तक नारी के साथ होने वाले

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सामाजिक अन्याय को मिटाकर सम्मानजनक कार्य करने वाली परिवार की नारी को पंचों की ओर सम्मान दिलाकर कहानीकार ने समाज को एक नई राह दिखाई है। इस नारी प्रधान कहानी से समाज को अपनी एक परम्परा में सुधार का सन्देश मिलता है।

मॉनिटर

यह एक दलित छात्रों की समस्या प्रधान कहानी है। इसमें कहानी का नायक सतीश है। वह आध्यात्मिनगर का इण्टरमीडियट कॉलेज का विज्ञान विभाग का सबसे होशियार छात्र है। लेकिन पिताजी की असमय मृत्यु हो जाने पर स्कूल जाने में असमर्थ हो गया है क्योंकि घर की सारी जिम्मेदारी इसे ही निभानी है। इस घटना से उसका इंजीनियर बनने का सपना भी अधूरा रह जाता है तथा वह रोजी-रोटी के लिए मजदूरी करता है। एक दिन उसके क्लास के साथी उसे मजदूरी करता हुआ देखकर उसका उपहास करते हैं तथा कहते हैं कि "कक्षा में तो तू मॉनीटर बनकर रोब दिखाता था, और तेरी औकात यह है।" इस कहानी में गरीब छात्रों में जिजीविषा भरने का लेखक ने सुन्दर प्रयास किया है।

3.6 रमणिका गुप्ता की कहानियाँ

रमणिका जी ग्रामीण परिवेश में पली बढ़ी हुई है। अपने लेखन कार्यों के माध्यम से इन्होंने कहानियों या कथा-साहित्य में अपनी भूमिका निभाई है। इनकी कहानियों का भूगोल अधिकतर झारखण्ड के छोटा नागपुर क्षेत्र से जुड़ा है। इनकी कहानियाँ, सत्य, यथार्थ और अनुभव पर आधारित है।

चिड़िया

इस कहानी की नायिका है मोनिका, जो अस्पताल के स्पेशल वार्ड में भर्ती है। छत पर पंखे के रॉड के ऊपर वाले खोल में दो चिड़ियाओं का घोंसला है। दोनों चिड़ा-चिड़ी कमरे के फर्श पर एक साथ कुछ सूँघते हुए चलने लगे। कुछ दाने मिले, जिसे वे एक साथ चुगने लगे। लेखिका कहती है कि ये पक्षी भी अजीब होते हैं। खाने के वक्त, प्यार के वक्त, उड़ने या मरने के वक्त एक साथ देखे जाते हैं पर किसी को बीमार के पास बैठे नहीं देखा। बीमार पड़ने पर बाकी सब पक्षी उसे अकेला छोड़ जाते हैं। "बीमार चिड़िया की भी अजीब स्थिति होती है। वह घोंसले से निकल अन्य चिड़ियाओं के साथ उड़ना चाहती हैं पर...। चिड़ा चिड़ियों की ऊर्जावान कतार के साथ उड़ जाता है। फुर्र-र्र-र्र। भीगी-भीगी

आँखों से चिड़िया परों को फैलाए शरीर को फुलाए आकार को देखती रह जाती है। वह पंख फैलाना चाहती है पर पंख फैला नहीं पाती है। नैन अशक्त हो झुक गए हैं, उसके रोएँ कुम्हला गए हैं, साँसें उखड़ गई हैं, आँखें मूँद रही है। उसे अंडों से निकलते अपने बच्चों का चेहरा याद आ रहा है।"[44] यहाँ पर मोनिका की भी स्थिति चिड़िया की तरह है। अब उसके गालों पर आँसू लुढ़क आये हैं जो शायद चिड़िया की मौत के गम में कम, अपनी बेबसी पर अधिक विचलित है।

चमेली

यह कहानी सरदारिन और करमादास से आरम्भ होती है। सरदारिन और करमादास दोनों विलासपुरिया में मजदूर थे और राजा की खदान पर काम करते थे। सरदारिन बाई कुछ ढल सी गई थी, बच्चों का बोझ बढ़ गया था। अब करमादास ने दूसरी औरत लाने का निर्णय लिया। सरदारिन अपने ही चचेरे भाई की बेटी चमेली को ब्याह लाई। करमादास रिटारमेंट के बाद अपनी नौकरी चमेली को देने की सोच रहा था क्योंकि सरदारिन को कार्ड मिल ही गया था किन्तु एक दिन दोनों जनी आधी रात को काम से लौट कर आई तो करमादास कमरे में मरा पड़ा था। पत्नी की जगह तो सरदारिन का ही नाम दर्ज था। चमेली को दूसरी पत्नी होने के नाते कानून काम नहीं दिला सकता था। एक ही रास्ता था कि सरदारिन चमेली को करमादास की विधवा बेटी कहकर बदली नौकरी का फार्म भरा दे। करमादास का बेटा था सो चमेली को नौकरी कैसे मिले? "चमेली के लिए औरत होना ही गुनाह हो गया है। वह औरत है इसलिए उसे नौकरी नहीं मिलेंगी। औरत की नौकरी पर प्रतिबन्ध है। इस तरह चमेली ठगी जाती है। प्रबन्धक नौकरी देने से आना-कानी कर रहा है।"[45]

बहू-जुठाई

यह कहानी एक पूरे समाज की परिवर्तनशीलता की मिसाल है, जिसमें दलित समाज जो खुद को कर्म का, भाग्य का फल भोगने के लिए सब अपमानों को सम्मान मानने के लिए अभिशिप्त है। राधू नाम का एक दलित, जिसके बेटे की शादी मुकुन्द नाम के व्यक्ति के घर डुलभतिया से हो रही है। गाँव का रिवाज है कि जब शादी हो तो वधू की पहली डोली ठाकुर साहब के यहाँ उतरेगी। किन्तु उस पशुतुल्य जूठन पर जीने वाले समाज

ने फैसला किया कि बहू की डोली पहली रात जमींदार के घर 'जुठाने' के लिए नहीं जाएगी। "जो जीवन भर 'जी हजूर', 'हुक्म हजूर' कहते रहे वे मनुष्यता की बोली में गरज उठे 'नहीं जाएगी डोली'।"[46] वे अपनी बोली की गरज सुनकर चकित थे। अभिव्यक्ति की यह ताकत जानवर बना दिए गए मनुष्यों ने कैसे हासिल की 'बहू-जुठाई' कहानी में इसी संघर्ष का चित्रण किया गया है।

3.7 प्रहलाद चन्द बोस की कहानियाँ

वरिष्ठ दलित कथाकार श्री प्रहलाद चन्द बोस का कथा संग्रह 'पुंटुस के फूल' में उनकी कहानियाँ छपी थी। इन कहानियों के विषय में स्वयं लेखक का कहना है कि, "इस संकलन की कहानियाँ दलित लेखन के अन्तर्गत आती हो या नहीं, लेकिन दलन के जितने भी आयाम हो सकते हैं—जन्म, सेक्स, शिक्षा, आर्थिक और राजनीतिक इन कहानियों में सबकी झाँकी मिलेंगी।"[47]

पुंटुस के फूल

इस कहानी का नायक गंगाराम, जिसे गाँव के लोग नगाराम-नंगाराम कहकर चिढ़ाते हैं, आगे चलकर यही व्यक्ति गंगा बापू बन जाता है तथा अपनी बिरादरी के लोगों को ठाकुरों के यहाँ भोज पर जाने के लिए यह शर्त रखता है कि उनकी पत्तल भी अन्य बिरादरियों की तरह उठवाई जाय। वे स्वयं नहीं उठायेंगे। गंगाराम गाँव में स्कूल भी बनवाता है। इस प्रकार गंगाराम ने गाँव में अनेक प्रकार के समाज सुधार के कार्य किए जिससे सवर्णों को लगने लगा कि "गंगाराम ने पूरे इलाके को बर्बाद कर दिया है। कितने मेल-जोल के साथ रहते थे ये लोग।"[48]

यह कहानी दलित सम्मान पाने के लिए ही साहित्य, समाज और राजनीति में संघर्ष कर रहे हैं नायक की है। ये सारी उथल-पुथल उसी का परिणाम है।

बैंगन बारी

यह कहानी दलित समाज में हो रहे परिवर्तनों को रेखांकित करती है। चुनाव परिणाम पर टिप्पणी करते हुए मगन कहता है—'भोट परब' कोई आज थोड़े शुरू हुआ है और जब से शुरू हुआ है, तब से ही यह नियम है कि 'भोट परब' के ठीक एक दिन पहले मुखिया जी सबके खाने-पीने की व्यवस्था करते हैं। हर मोहल्ले में औकात के अनुसार

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

खस्सी-पाठा या भेड़ या फिर दही चिउड़ा भिजवा देते हैं। उसके बाद भोट के दिन गाड़ी में बैठाकर ले जाते हैं—"भोट डालने और वहाँ करना ही क्या होता है? एक कागज में बाघ छाप के ऊपर लकड़ी का ठप्पा मार देना होता है। बस, जाओ बाबा, तुम भी खुश और हम भी खुश।"[49] लेकिन अब ऐसा नहीं है। यहाँ पर यह दिखाने की कोशिश की गई है कि चुनाव में दलितों के द्वारा अधिक मात्रा में हिस्सेदारी तथा सवर्ण लोगों, कम-से-कम गुलामी दलित समाज को राजनीतिक सक्रियता से जोड़ना।

3. 8 रूपनारायण सोनकर की कहानियाँ

दलित साहित्य सर्जक अपनी हृदयावस्था को छिपा नहीं सकते हैं। वे विद्रोह और आक्रोश के साथ अपनी व्यथा को लिख देते हैं। तब रूढ़िवादी विचारक इस साहित्य की ओर से अपना मुँह मोड़ लेते हैं। वे ऐसे साहित्य को पढ़ते भी नहीं है, और सुनते भी नहीं है। ऐसे विरोधाभासी तूफान के सामने अपनी कलम चलाने वाले साहित्यकार रूपनारायण सोनकर हैं।

जहरीली जड़ें

यह कहानी संग्रह ग्रामीण दलितों पर कुछ क्रूर गैर दलितों द्वारा ढाए गए अत्याचारों की जीवन्त गाथा है। ग्रामीण दलित, जो अधिकतर मजदूर हैं, मेहनत-मजदूरी करके अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण करते हैं। गाँवों में मिट्टी के घर में रहते हैं। जाड़ों में इनके पास तन को ढकने के लिए एवं ओढ़ने के लिए कपड़े व रजाईयां नहीं होती है, फटे पुराने कपड़े पहनकर एवं पुलाव की रजाईयाँ बनाकर पूरी सर्दी पूरे परिवार के साथ काट देते हैं। 'जहरीली जड़ें' का मुख्य पात्र हरीलाल रहा है। वह सभी रीति से दलित ही साबित होता है और बेहद सहन करता है। कभी-कभी अधिक आक्रोश भी दिखाता है और संघर्ष की भूमिका में खड़ा होता है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो रोटी के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

इस कहानी के सन्दर्भ में नामवर सिंह का एक कथन है—"सामंतीकाल की तरह दलितों पर होने वाले प्रत्यक्ष उत्पीड़न की जगह प्रत्यक्ष ढंग से हो रहे शोषण ने ले ली है। अत्याचार के ये ढंग बहुत बारीक है और सोनकर ने इसी कहानी में शोषण के इन्हीं नये और बारीक तरीकों पर उँगली रखी है।"

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

3.9 शरण कुमार लिम्बाले की कहानियाँ

साहित्य विचारों का समुन्दर है, जिसमें समय के साथ परिवर्तित भावों का अक्षय प्रवाह प्रवाहित होता रहता है। इसकी ज्ञानरूपी गहराइयों में अनेकानेक विचारकों का अगाथ प्रयास रहता है। हिन्दी साहित्य में पिछले दो दशकों से नारी–विमर्श और दलित चेतना पर अधिकतर साहित्य सृजन हो रहा है। इस विचारधारा से प्रभावित साहित्यकारों में शरणकुमार लिम्बाले एक नाम हैं। उन्होंने अपने कहानी संग्रह 'दलित ब्राह्मण के माध्यम से सदियों से पीड़ित–शोषित, कुण्ठित, सन्त्रास, दु:खित और दमित लोगों के यथार्थ जीवन को सजीव रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है।' इस संग्रह की पहली कहानी 'दलित ब्राह्मण' है।

दलित ब्राह्मण

इस कहानी में लेखक ने समझाने का प्रयास किया है कि दलित चाहे कितना भी उच्च या प्रबुद्ध नागरिक क्यों न बन जाय लेकिन जाति विषयक अपमान उनका जीवनपर्यन्त पीछा नहीं छोड़ता है। जब तक दलित व्यक्ति सवर्ण समाज की आभिजात्य सोसायटी या आवासीय जगह में रहता है और उनकी वजह से जातिवाद का शिकार होता है तथा अपने सवर्ण मित्र की दोहरी व्यवहार नीति से त्रस्त हो जाता है तब उसे अपने लोगों की अहमियत का पता चलता है। "महार की संगत में तुम भी महार हो गये। अरे हजारों बरसों से महार और ब्राह्मणों के बीच दुश्मनी है। हो सकता है कि यह साजिश लिम्बाले की ही रची हुई हो। गुण्डों ने उसे चाकू क्यों नहीं मारा? तुम्हें ही कैसे मारा? अरे, तुम ब्राह्मण हो, इसलिए उन लोगों ने इस तरह बदला लिया होगा।"[50]

आत्मकथा

इस कहानी में लेखक ने परामर्श और मार्गदर्शन के नाम पर होने वाले साहित्यिक शोषण को प्रदर्शित किया है। जब एक नया आत्मकथाकार अपनी आत्मकथा को प्रकाशित करने के लिए मार्गदर्शन हेतु वरिष्ठ विचारकों की सहायता लेता है तो परामर्श की आड़ में आत्मकथाकार की आत्मकथा चोरी हो जाती है, ऐसी आशंका लेखक को खलती है। लेखक के द्वारा साहित्यिक नकलकारों के चेहरे से बनावटी नकाब उतारने का सार्थक प्रयास किया गया है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सफेद मक्खी

इस कहानी को एक प्रकार से प्रतीकात्मक कहानी कहा जा सकता है जिसमें मक्खी को प्रतीक बनाकर साहित्य जगत की वास्तविकताओं से पाठक वर्ग को रूबरू करवाया गया है जिसमें गैर दलित लेखक दलित छात्रों से दिखावटी आत्मीयता के माध्यम से उनके जीवनानुभवों की नकल करके उन्हें अपने साहित्यिक दिमाग की उपज करार देकर प्रकाशित करते हैं। वास्तविक रूप से साहित्य जगत की रुग्ण मानसिकता का पर्दाफाश यहाँ पर किया गया है, जिसमें प्रतिभा सम्पन्न नवदलित साहित्यकारों की आत्मीयता की आड़ में साहित्यिक शोषण की समस्याओं को यहाँ उजागर करने का प्रयास किया गया है।

सरकार का जमाई

इसमें सरकारी कार्यालयों में काम करने वाले दलित लिपिकों की दारुण व्यथा का वर्णन किया गया है। इसमें दलित लिपिकों की मानसिक एवं शारीरिक यंत्रणाओं तथा प्रताड़नाओं को लेखक ने बारीक ढंग से रेखांकित किया है। इस कहानी में एक प्रकार से सवर्ण एवं दलित कर्मचारियों के मध्य वैमनस्यता को उजागर किया है। लेकिन जब दलित कर्मचारी इन सबका विरोध या सामना करने का साहस करता है तो उन पर अनर्गल आरोप लगाकर उन्हें अपमानित का साफा बाँधकर 'सरकारी जमाई राजा' की उपाधि से अलंकृत कर जलील किया जाता है।

ओछी जात का

सामान्यत: दलित एवं शोषित वर्ग की नारियों का शारीरिक शोषण उच्चवर्गीय पुरुष करते आये हैं लेकिन वर्तमान समय में इस समस्या का हल निकालने का प्रयास अवश्य किया है, जिसके चलते दलित पुरुष उच्चवर्गीय नारी के साथ दैहिक सम्बन्ध स्थापित करके वासनामय सुख प्राप्त करता है। अवैध शारीरिक सम्बन्ध विवाह जैसे पवित्र बंधन में विश्वास नहीं रखता। इस प्रकार दलित पुरुष उच्चवर्गीय स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करके मनुवादी परम्परा से बदला लेने का प्रयास करता है।

सीढ़ी

इस कहानी में एक दलित शिक्षक को उसके आरक्षित पद पर स्थान न देकर उनकी जगह अन्य गैर–दलित वर्ग के व्यक्ति को नियुक्ति देना और उनके आरक्षित पदों को

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

हटाने का षड्यन्त्र रूप हथकण्डों को अपनाना इस कहानी की मूल समस्या है। दलित शिक्षक को जूठे भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में फंसाकर, उसके स्थान पर किसी गैर दलित को स्थाना यहाँ पर रेखांकित किया गया है।

रथयात्रा

यह कहानी राममन्दिर निर्माण के नाम पर राजनैतिक रोटियाँ सेंकने वाले स्वार्थी लोगों का खाका प्रस्तुत करती है जिसमें नींव का पत्थर दलित जाति बनती है। दलित जाति रथयात्रा में सम्मिलित अवश्य होती है किन्तु जातिवाद की वजह से उनकी स्थिति हास्यास्पद और हाशिए पर हो जाती है। उन्हें भिखारियों की संज्ञा दी जाती है जिसके परिणामस्वरूप अवहेलना का शिकारदलित युवक सेवक पुजारी की हत्या करके अपनी रथयात्रा को समाप्त करता है।

नीले झण्डे

इस कहानी में प्रेम सम्बन्धों का दु:खद परिणाम सामने आता है, जिसमें एक दलित लड़का सवर्ण लड़की को प्यार करने का असम्भव प्रयास करता है किन्तु प्यार का सपना क्षणिक मात्र रहता है और जातिवाद की दुकान चलाते हुए लड़के के पूरे परिवार को मृत्यु दण्ड देकर प्यार की आहुति दी जाती है। हम यह कह सकते हैं कि सवर्ण वर्ग अपनी हैवानियत से प्रतिष्ठा कायम करना चाहता है। मनुष्य की जातिगत क्रूरता एवं पिशाचपन का पर्दाफाश विशेष रूप से यहाँ किया गया है।

रत्ना

यह कहानी दो प्रेमियों के मिलन के लिए जद्दोजहद भरी दास्तान है, जैसे नदी अनेक बाधाओं को तोड़ती हुई अपने प्रेमी समुन्दर के आलिंगन में समाविष्ट हो जाती है उसी प्रकार कहानी का नायक भी समन्दर में उठने वाले विशालकाय एवं शत्रुवत तरंगों का अभिमान सागर तट पर चकनाचूर हो जाता है। समन्दर की विशालकाय लहरों की भाँति कहानी का खलनायक जो चातक रूपी प्रेमाधीन नायक-नायिका को अलग रखना चाहता है किन्तु कहानी का अन्त सुखद होता है और विभिन्न अड़चन एवं बाधाओं को पार करते हुए शाश्वत प्रेम में परिणित होता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

चकता

इस कहानी का नायक एक ओर तो दलित है साथ ही चकता यानी कोढ़ जैसे रोग का शिकार भी है। पूरी कहानी में नायक रोगी होने की वजह से समाज में दयनीय स्थिति से गुजरता है तथा कहानी का प्रमुख स्वर बीमार मनुष्य के साथ लोगों का अमानुषी व्यवहार और उनके प्रति घृणित रवैये को मुखरित करना है।

गोहत्या

यह एक प्रतीकात्मक कहानी है। इसमें कहानीकार ने पुजारी और कसाई को प्रतीक बनाकर लोगों को भ्रमित करने का प्रयास किया है। जहाँ पुजारी गंगाजल से अपने हाथ पवित्र करने की ठगी प्रवृत्ति करता नजर आता है, तो वहीं कसाई गाय के रक्त से अपने हाथ पाक करता है। इसमें लेखक ने सांकेतिक रूप से महारों से अधिकाधिक मांस खाने वाले ब्राह्मण की ओर संकेत किया है। 'मुख में राम बगल में छूरी' जैसी कहावत यहाँ चरितार्थ होती है।

जुलूस

यह कहानी दलितों के साहस की एक जीवन्त गाथा प्रस्तुत करती है। जहाँ घिनौने राजनीतिक पंगुओं की असलीयत को जनसाधारण के समक्ष प्रदर्शित किया गया है। एक जाति का चुनावी जयघोष पाने की ललक, उनको निम्न स्तर तक गिरने के लिए मजबूर करता है यानी अन्य जातियों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।

सरहद

यह कहानी एक दलित फौजी के सामाजिक स्तर पर अवहेलना एवं अपमान की सच्ची जीवन गाथा है। फौजी देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता के लिए सरहद पर दुश्मनों से लड़ने के लिए सदैव तत्पर रहता है लेकिन सामाजिक स्तर पर जातिवाद के चक्रव्यूह में दलित फौजी अवश्य परास्त हो जाता है। वास्तव में वह समाज के जातिवाद एवं भेद-भाव की राजनीति से अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

3.10 शैलेश मटियानी की कहानियाँ

शैलेश मटियानी एक महान कथाकार हैं। कहानी के सन्दर्भ में वे एक स्थान पर कहते हैं—"समस्त सृजनात्मक कलाएँ एक आदमी की कहानी कह सकने से जुड़ी है क्योंकि कहानी सिर्फ आदमी की हो सकती है और आदमी ही कहानी कह सकते हैं। कहने के प्रकार जरूर भिन्न हैं।"[51]

मटियानी जी की कहानियों में वंचित और दलितों की संघर्षभरी दुनिया है। असमानता, सामाजिक अन्याय, शोषण के विरुद्ध लड़ाई, विषमता और अमानवीयता से जुझते हुए लोग उनकी कहानियों में है।

नंगा

यह कहानी एक दलित के जीवन की त्रासदी है। कहानी में नायिका रेवती शिल्पकारिन है। उसका पति हरिराम ठाकुर गुमान सिंह का हलवाहा है। हरिराम की मृत्यु हो जाने पर ठाकुर की नजर रेवती पर टिकी रहती है तथा वह उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। शुरुआत में रेवती को बुरा लगता है लेकिन बाद में वह ठाकुर के जादुई बहाव में आकर उसकी हवस का शिकार बन ही जाती है। रेवती को ठाकुर का गर्भ रह जाता है तथा कुछ समय बाद रेवती बच्चे को जन्म देती है। ठाकुर ठकुरानी बच्चे को मारने के लिए रेवती पर दबाव बनाते हैं लेकिन वह ऐसा नहीं करती है और ठकुरानी से कहती है—"गुंसाझी तुम्हारे ठाकुर से बहुत सोच-समझकर लगवाना मगर जिसे नौ महीने ढोया, उसे इतनी जल्दी नदी में बहा देने की ताकत मुझमें नहीं है।"[52]

प्यास

इस कहानी में मुम्बई की झोपड़पट्टी और फुटपाथ की नंगी-दमित जिन्दगी जीने वालों का चित्रण है। शंकर या शंकरीया फुटपाथ और झोपड़पट्टियों में पला-बढ़ा एक उठाईगीर जेबकतरा है। वह एक बार एक पारसी महिला के गले की चैन तोड़ने के प्रयास में पकड़ा जाता है तथा पुलिस के द्वारा पिटाई के दौरान उसे बेहोशी छा जाती है। उस बेहोशी के आलम में उसके विगत जीवन की कुछ स्मृतियाँ, कुछ प्रसंग, चेतना प्रवाह, शैली के माध्यम से उभर कर सामने आते हैं, जहाँ वह यह बताता है कि वह किन-किन घटनाओं के माध्यम अपनी जिन्दगी के इस पड़ाव पर पहुँचता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

चिल

यह कहानी भयंकर दरिद्रता और गरीबी की कहानी है। यह कहानी राम खेलावन नामक एक बच्चा और उसकी सतनारायणी को केन्द्र में रखकर चलती है। रामखेलावन का पिता शराबी-कबाबी और जुआरी था। पिता के मरने के बाद उसकी माँ कई घरों में बरतन माँजने, कपड़े धोने और झाड़ू लगाने का काम करती है। एक बार उसकी माँ बीमार पड़ जाती है तो उसकी माँ की जगह वह काम पर जाता है तथा बरतन धोते समय दो छोटी चम्मच अपनी जेब में डाल लेता है, परन्तु वह पकड़ा जाता है।

एक कापाचाँ : दो खारी बिस्किट की कहानी

यह कहानी भी मुम्बई के फुटपाथी जिन्दगी जी रहे लोगों की है जो अपने शरीर का सौदा करके किसी तरह अपने पेट की आग बुझाते हैं तथा कभी-कभी लाचारी और विवशता के कारण बेटे-बेटियों को बेचना पड़ता है। दूसरी तरफ वैभव विलास में पड़ी सेठानियाँ, जो अपने बूढ़े पतियों द्वारा सन्तुष्ट न होने पर शिकार की खोज में रहती है और जवान नौकरों, ड्राइवरों और वाचमैनों के द्वारा अपनी वासना तृप्त करती हैं।

धुधतिया त्यौहार

इस कहानी का पात्र देवराम पुरानी पीढ़ी का होते हुए भी नयी चेतना से सम्पन्न है—कहानी में दलित लोगों में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उसे रेखांकित किया गया है। "पहाड़ में शिल्पकारों के प्रति घृणा तो नहीं है, मगर सवर्णों में शिल्पकारों को अपना चाकर और अछूत समझने की एक जो रूढ़ि चली आ रही थी वह टूटी नहीं थी मगर कुछ लीक बदल रही थी। यह स्वाधीनता संग्राम का दौर था और गाँधी जी का अछूतोद्धार आन्दोलन जोर पकड़ चुका था। अब जिला स्तर पर हरिजन नेताओं के साथ-साथ कांग्रेसी होने के दबावों या गाँधी जी की प्रेरणा से कुछ सवर्ण नेता भी हरिजनों को ऊँचा उठाने की बात करने लगे थे। इसी वातावरण में शिल्पकारों ने भैंस का गोश्त खाना बन्द करना शुरू कर दिया था।"[53]

लीक

इस कहानी का नायक कुण्डलनाथ कनफड़वा नाथ जाति का है, जिसकी गणना पिछड़ी दलित जातियों में होती है। कुण्डलनाथ का परिवार शराबियों-जुआरियों का

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

परिवार है तथा यह पढ़-लिखकर प्रोफेसर हो जाता है। डूँगरी गाँव के ठाकुर गोपाल सिंह की पुत्री जानकी अल्मोड़ा पढ़ने आती है और कुण्डलनाथ को दिल दे बैठती है। गोपाल सिंह को अपनी बेटी के आगे झुकना पड़ता है परन्तु बिरादरी में अपनी नाक बिल्कुल न कट जाए इसलिए वे चाहते हैं कि बारात अल्मोड़ा से आए। बारात में खूब धूमधाम हो, कनफड़े लोग ज्यादा न हो, पढ़े-लिखे मास्टर प्रोफेसर लोग ज्यादा हों। यहाँ लेखक ने अन्तरजातीय विवाह की समस्या को भी रखा है साथ ही लोगों के द्वारा अपने पितर-पुरखों की लीक पर चलना एवं गौरवपूर्ण बात मानने पर भी विचार किया है।

3.11 हरपाल सिंह 'अरुष' की कहानियाँ

कहानी में मनोरंजन, दिशानिर्देश और सजीव चित्रण समाहित हो तो श्रेष्ठ कहानी की रचना हो जाती है। सुन्दर भावनाओं एवं कल्पनाओं को संजोकर हरपाल सिंह 'अरुष' का एक कहानी संग्रह 'काले नंगे पाँव' है।

काले नंगे पाँव

राजनीति से प्रभावित यह कहानी बैंजामिन के उत्सर्ग और बलिदान की सत्य घटना प्रतीत होती है, जिसमें कुछ लिखने के कारण राजद्रोह का अपराधी मानकर सिपाही की हत्या का आरोप लगाकर तथा माता-पिता को दु:ख पहुँचाने के लिए फाँसी की सजा सुनायी गयी। जेल की कोठरी में बन्द पुत्र से मिलने आयी माँ-पुत्र के हृदय की दारुण अवस्था का सजीव चित्रण किया गया है। मृत्यु दण्ड के समय उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उसके रचित गीत गाकर माता-पिता के साथ राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत सम्पूर्ण जनसमूह विदाई देता है। यह ही इस कहानी का मूल तत्त्व है।

पखेरू

सुखबीर और सुलोचना की नोंक-झोंक में हास-परिहास तथा वाद-विवाद सीमित, सुन्दर और रोचक बन गये हैं। परस्पर वार्तालाप सहज एवं स्वाभाविक हैं— इन्होंने अपने बच्चे अशोक, ममता और मुकुल को उच्च शिक्षा दिलायी तथा ग्रामीण चर्चाओं पर ध्यान न देकर शिक्षा को महत्त्व दिया कि जिससे अपनी सन्तान सुयोग्य बन सके। तीनों बच्चे अपने घर से दूर आनन्दमग्न थे। दम्पती अकेले रह गये। नीम तले बैठकर सुख-दु:ख कहते, विवशता पर आँसू बहाते। आज के युग में बड़े बालक

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

आधुनिक मूल्यों को स्वीकार कर स्वयं आनन्द मग्न रहते हैं। घर, खेत और अपने माँ-बाप की कठिनाइयों को न समझकर सेवा करना, सहायता करना, दु:ख सुख में सहभागी बनना स्वप्न रह गया है।

प्रवाह

यह कहानी अति आधुनिक मूल्यों को लेकर पाश्चात्य रंग से प्रभावित है जिसमें लड़के-लड़की के रंगीन चित्र दिखलाये गये हैं। यहाँ पर दोनों परस्पर अनुरक्त है। लड़की अधिक मुखर, वाचाल और चंचल है तथा लड़का अति सौम्य, सुशील और सहिष्णु है। इस कहानी के अन्त में लड़की का व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। वह कालिदास की शकुन्तला के सदृश्य हो जाती है। प्रकृति से विदाई लेते हुए अत्यन्त भावुक और कारुणिक मनोभाव व्यक्त करती है।

निगाह

यह कहानी निर्धनों की विवशता, हृदय की बलवती इच्छा एवं नियंत्रित करने की इच्छा का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत करती है। अधिक पैसे हाथ में आने पर मजदूर सुरुचिपूर्ण भोजन करके ही सन्तोष प्राप्त कर लेता है। कई महीने से तरकारी ही नहीं बनी। सूखे टीकरे ठूँस रहे हैं। चाहे कुछ हो, आज तो तेल में तल भूनकर ही सब्जी बनेगी। अति उल्लास झलक रहा था, उसकी आँखों में। दुलारी की ओर देखकर रामसुख मुसकराया। उसकी आँखों में उभरी नमी को भाँप लिया था उसने।

शिरोरुजा

यह कहानी अपने अर्थ को सार्थक करती हुई एक गृहस्थ नारी की है। अपने पति, बालक और घर के हित चिन्तन की व्याकुलता, उलझन, सिरदर्द आदि में अपनी जिन्दगी जीने को मजबूर तरंगिणी नाम ही ऐसा था उसका। उसके मन-मस्तिष्क में फिर चित्र एवं चिन्तन गड्डमड्ड होकर घुमड़ने लगते थे। व्यतीत हुए दिनों की स्मृतियाँ कोमल मन को धैर्य और संबल प्रदान करती है।

3.12 रत्नकुमार साँभरिया की कहानियाँ

रत्नकुमार साँभरिया की कहानियों में अधिकतर ग्रामांचल तथा निम्नवर्ग की वास्तविकता की अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही, दलित, उपेक्षित एवं सर्वहारा वर्ग की

अभिव्यक्ति में संवेदनाओं को सशक्त रूप में मुखरित किया है। अब तक इनके अनेक कहानी संग्रह आ चुके हैं जिनमें समाज की नाक, हुकम की दुग्गी, काल तथा अन्य कहानियाँ, खेत तथा अन्य कहानियाँ, दलित समाज की कहानियाँ तथा अनेक लघुकथा संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

फुलवा

यह कहानी सामन्ती मानसिकता का कच्चा-चिट्ठा खोलती है, जहाँ पर जमींदार रामेश्वर अपने बेटे की नौकरी के लिए शहर जाता है लेकिन भाग्य उसे कभी उसके यहाँ नौकरानी का काम करने वाली फुलवा के घर पहुँचा देता है। फुलवा के ठाठ-बाट को देखकर ईर्ष्यावश वह सामन्ती मानसिकता से नहीं उभर पाता है। उसकी दृष्टि में फुलवा की औकात आज भी चमारिन की है। यहाँ पर कहानीकार ने जमींदार के अहम् को पंडिताइन द्वारा कहे गए इन शब्दों में तोड़ा है—"अब तो पद और पैसे का जमारा है, जात-पाँत का नहीं। बेटे के लिए नौकरी की सिफारिश करनी है, तो जाकर मेम साहब (फुलवा की बहू) के पाँव पकड़ ले और तब तक मत छोड़, जब तक वह हाँ न कह दे।"[54]

बकरी के दो बच्चे

इस कहानी में देखने को मिलता है कि दलितों को भेड़-बकरी समझने वालों की कमी नहीं है। कहानी में दलित दलपत के बकरी के दो बच्चे जमींदार दानसिंह के घर में घुस जाते हैं। जमींदार का बेटा इन्हें जमीन पर पटककर मार देता है। जब दलपत जमींदार से इसकी शिकायत करता है तो जमींदार पश्चाताप करने की बजाय अकड़कर अहंकार भाव से कहता है, "ढेड और भेड़ को हम जीवन नहीं मानते।"[55]

चपड़ासन

यह कहानी विधवाओं के शोषण को अभिव्यक्त करती है। इस कहानी की मुख्य पात्र मीता है। तहसीलदार धर्मपाल उसका हाथ कसकर पकड़ते हुए कहता है, "तुम्हारे कारण मुझे अनिद्रा की बीमारी हो गई है।"[56] इस पर मीता झटके से अपना हाथ छुड़ाकर तहसीलदार को मजा चखाने के लिए पुलिस स्टेशन जाकर एफ.आई.आर. दर्ज करवाती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अनुष्ठान

इस कहानी में अन्धविश्वास की पराकाष्ठा देखने को मिलती हैं जहाँ पर कहानी की नायिका सरस्वती पुत्र-प्राप्ति के लिए अपने पति से विश्वासघात कर तांत्रिक को अपना शरीर सौंप देती है। सरस्वती को तो पुत्र प्राप्त नहीं होता, लेकिन पुत्र शांक में तान्त्रिक के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं।

विपर सूदर एक कीने

इस कहानी में गाँव के बहुत-से चमार गंगाजल हाथ में लेकर सूत का धागा पहन लेते हैं। इससे उनकी जात बड़ी हो गई है, लेकिन जीवनलाल का छोटा भाई श्यामलाल अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते ऐसा नहीं करता है। अत: जीवनलाल श्यामलाल को नीच जात का ही मानता है। कहानी में श्यामलाल का कथन भी है—"आज बड़ो बन गयो तू! अरे बाजरा की रोटी, चिगल चिगल (दाँतों से काट-काट) मैंने तुझे खिलाई थी। माँ नहीं रही थी अपनी। मैंने तेरा गू-मूत तक धोया। मैं ना हो तो, तो आज तू बड़ो न होतो। तागो लेने से खून ना बदल गयो आपणो।"[57]

मैं जीती

इस कहानी में एक नाजायज गर्भ को खेत में गिरा दिया जाता है तथा किन्हीं परोपकारी व्यक्तियों द्वारा उसे शिशु अस्पताल पहुँचाने पर उस लहूलुहान, संक्रमित एवं मवादयुक्त लोथड़े को डॉक्टर एवं नर्स बचाने का लाख प्रयास करते हैं। इसके बावजूद वह उसे बचा नहीं पाते तथा वह इस संसार से मुक्ति पा लेता है। एक ओर यह कहानी अनैतिक काम-सम्बन्धों पर कुठाराघात करती है, वहीं दूसरी ओर समाज में हो रही 'कन्या भ्रूण हत्या' का भी पर्दाफाश करती है।

खेत

इस कहानी में साँभरिया जी द्वारा पिछड़े एवं कमजोर वर्ग के प्रति शिक्षित चालबाज लोगों की बदनीयती और कुटिल नीति पर प्रहार किया है जिसमें कहानी का पात्र बूढ़ा (केरसिंह) दलित होते हुए भी खुद्दारी एवं जीवटता की मिशाल है। शहरों के विकास से गाँव कंकरीट के जंगल में तब्दील हो रहे हैं। जमीन की कीमत अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही है जिसके कारण बूढ़े (केरसिंह) के खेत को हड़पने के लिए कपटी, दुष्ट धोखेबाज

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

लोगों की लाइन खड़ी है। खरीददारों को वह दो टूक जवाब देता है कि "कह दीना ना बेचूँ', बूढ़ा की ना में दुत्कार भी है और फटकार भी है।"[58] अन्त में एक कुटिल भ्रष्ट वकील द्वारा साँठ-गाँठ करके दस्तखत एवं सत्यापित किया पेपर बूढ़े केरसिंह के समक्ष रखता है तो आक्रोश, भर्त्सना एवं धिक्कार से बूढे की गर्दन हिलने लगती है—"डोकरा हूँ, ना दफन कर दो, बिन कफन।"[59] और वह उस पेपर की चिन्दी-चिन्दी कर वकील पर फैंक देता है।

बदन दबना

इस कहानी में जात-पाँत के आधार पर नहीं बल्कि रुपया, पैसा, पद एवं शोहरत के आधार पर जमींदार हलकासिंह की खैर-खबर ली गई है। इसमें जमींदार हलका सिंह से दलित रेमा अपनी बेटी के ब्याह के लिए दस हजार रुपये कर्ज लेता है तथा बारात के समय गाजे-बाजे को देखकर हलका सिंह आक्रोशित हो जाता है लेकिन जब उसे पता लगता है कि बारात जुगराम मेहतर की बेटी की बेटी की है तो वह अपने क्रोध को अपने शरीर में ही दबा लेता है क्योंकि जुगराम मेहतर और उसकी बेटी दोनों बड़े ओहदे पर (पद पर) हैं।

सवाखें

एकमात्र ऐसी कहानी है जो विकलांगों का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें सभी प्रकार के विकलांग एकत्रित होकर जमन वर्मा के साथ अन्याय का प्रतिकार करते हैं।

आखेट

इस कहानी में नायक 'सोमा' एवं नायिका 'रेवती' है। इसमें रेवती त्रासदी का शिकार होती है—"वासना के वशीभूत नानक सिंह की नजर रेवती पर थी। नानक सिंह पशुता पर उतर आया था। रेवती चीखी, चिल्लाई और छूटने के लिए छटपटाई लेकिन नानक सिंह उसे अपनी क्रूर बाँहों में भींचता चला गया। निरीह और असहाय रेवती, जैसे छिपकली के मुँह में फँसी तिल्ली...। द्रौपदी सबल थी। रक्षक श्रीकृष्ण थे। गरीब रेवती का यहाँ कौन, दुर्योधन से उसकी आबरू कौन बचाए।"[60]

शर्त

इस कहानी में दलितों द्वारा शोषण के विरोध में आक्रोश और बदला लेने की भावना बलवती होती दिखाई देती है जिसमें एक बाप द्वारा अपनी बेटी की इज्जत लूट

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

लिये जाने पर प्रतिक्रियास्वरूप वह बदला लेता है जिसमें वह गाँव के मुखिया का हिसाब-किताब इन शब्दों में करता है—"मुखिया साब, इज्जत का सवाल है, यह आपकी इज्जत सो मेरी इज्जत। आपकी लड़की मेरे लड़के के साथ रात रहेगी।"[61]

बांग और अन्य लघुकथाएँ (लघुकथा संग्रह)

समकालीन लघुकथाकारों में रत्नकुमार साँभरिया का नाम बड़ी तेजी से उभरकर सामने आया है। उनकी कृति 'बांग तथा अन्य लघुकथाएँ' के साथ इस संग्रह में उनकी सौ के लगभग लघुकथाए संग्रहीत हैं। इस सन्दर्भ में सांभरिया जी लिखते हैं कि "क्योंकि लघुकथा भी साहित्य की एक विधा है और आकार में लघु होने के कारण उसे कम शब्दों में निर्वासित होना होता है। अत: अधिक संवेदनशील और परिपक्व होना उसकी आवश्यकता है। वह समाज से जुड़ी सच्चाइयों की मुखर अभिव्यक्ति है, जो विद्रूपताओं और विसंगतियों को उद्घाटित कर जागृति की अपेक्षा करती है। उसमें कल्पना होते हुए भी यथार्थ मौजूद रहा है।"[62] रत्नकुमार साँभरिया की लघुकथाओं में धर्म, दर्शन और राजनीति की स्थापित विसंगतियों पर भरपूर चोट देखने को मिलती है।

इन लघुकथाओं में पशु-पक्षियों के माध्यम से और कभी-कभी सीधे तरीके से अपनी बात रखी है।

इस संग्रह की शीर्षक लघुकथा 'बाँग' का मुर्गा, मुर्गी के बार-बार कहने पर इसलिए बाँग नहीं देता है कि अब साम्प्रदायिक तनाव के कारण किसी को नींद ही नहीं आती। अत: अब उसे बाँग देकर लोगों को जगाने की आवश्यकता ही नहीं रही। साँभरिया जानते हैं कि इस तरह का उन्माद फैलाने वाले, एक सोची-समझी साजिश के तहत करते हैं। उन्होंने इसी प्रकार की अभिव्यक्ति अपनी लघुकथा 'हुकियाहट' में स्पष्ट की है। "थकी माँदी लेकिन लालायित लोमड़ी ने अपना एक बौद्धिक कौशल दिखाया। उसने जंगल में एक विचार बो दिया। उस विचार को लेकर सदियों से सौहार्द्रता की लड़ी में गूंथे सियारों में मारकाट मच गयी। एक दिन लोमड़ी को कुछ लाशें पड़ी मिल गयीं। लोमड़ी इन लाशों को अंगूर खा-खा कर मुटाती रही।"[63] लेकिन साम्प्रदायिकता फैलाकर कोई राजनीतिक दल इस देश की सत्ता को हथिया नहीं सकता है। जातिवाद जैसी समस्या से ग्रसित लोगों के द्वारा दलित पर अत्याचार का साक्षात् वर्णन 'धर्म' लघुकथा में देखा जा सकता है। जहाँ

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

लोग धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के कार्य करते हैं लेकिन एक अछूत के स्पर्श मात्र से अपवित्र होना एक प्रकार का जातीय अपमान है। साँभरिया जी ने अपनी लघुकथा 'द्रोणाचार्य जिन्दा है' में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं—"रामदीन! स्याला मोची का पूत! इतने अंक ले मरा कि पूरी कक्षा के सिर पर चढ़ बैठा। मेरे खुद के लड़के से ऊपर। गाँव थूक कर चाट लेगा मुझे कि गुरु जी के लड़के से मोची का लड़का ज्यादा होशियार है, जिसका बदुऊ बाप उसे जूते सी कर पढ़ा रहा है।"[64] गुरुजी रामदीन ने पुनर्मूल्यांकन करके उसे अनुत्तीर्ण कर दिया। कुल मिलाकर सहजता से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि रत्नकुमार साँभरिया में एक अच्छे लघु कथाकार की सारी संभावनाएँ मौजूद है, क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हें क्या कहना है। शब्द चयन और प्रभावान्विति के दृष्टिकोण में ये लघुकथाएँ अप्रतिम है। इस संदर्भ में श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने एक टिप्पणी की है—"रत्नकुमार साँभरिया की लघुकथाएँ आश्वस्त करती हैं कि वे क्षमतावान लघुकथाकार हैं। उनकी लघुकथाएँ तेज धार वाले हथियार की तरह गम्भीर घाव करती है। उसमें जीवन की समकालीन संवेदना भी है और आज की बर्बर स्थितियों को गहराई से स्पर्श करके झटके के साथ प्रभाव छोड़ने की शक्ति भी है।"[65]

3.13 सुशीला टाँकभौरे की कहानियाँ

हिन्दी दलित साहित्य की सर्वश्रेष्ठ महिला साहित्यकारों में डॉ. सुशीला टाँकभौरे ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलितों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक चित्रण के साथ उच्चवर्ग के प्रति विद्रोह को स्पष्ट किया है। उनकी कहानियों में शोषकों से ही नहीं, बल्कि अन्याय के खिलाफ आत्मकथाएँ और मनोविश्लेषणात्मक है तथा नारी मन के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण भी इनकी कहानियों का मुख्य विषय रहा है।

संघर्ष

कहानी में 14 साल का शंकर बहुत शरारती होने के साथ घर में सभी को तंग करता है तथा इसका शरारतीपन मित्र मण्डली से लेकर स्कूल तक जारी रहता है। लेकिन स्कूल के अध्यापक अछूत होने के कारण उसे परेशान करते हैं। इन सबके होते हुए शंकर के मन में जब पढ़-लिखकर कुछ दिखाने की बात आती है तो अन्त में वह ज्यादा अंक लेकर दसवीं कक्षा पास करता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

झरोखें

इस कहानी में घर के बड़े लोग अपने बच्चों को बचपन से यह सिखाते हैं कि "हम जाति में छोटे हैं, बड़े उनके घर के भीतर नहीं जा सकते।"[66] बचपन में ही ऐसे विचार भरने से बच्चों के मन में संकोच का भाव पैदा होता है। ऐसे विचार मन में जागने के बाद व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। इससे उनमें हमेशा संकोच, शर्म, पीछे रहने की भावना, जाति भेद का दु:ख अपमान होने का भय आदि दीन-हीन भाव बना रहता है।

सिलिया

कहानी में भी सार्वजनिक कुएँ के पानी पीने के कारण मालती को उसकी माता बहुत डाँटती है। सवर्ण लोग मालती पर यह आरोप लगाते हैं कि उसने रस्सी बाल्टी और कुएँ को छूकर अपवित्र कर दिया है। उसकी माँ मालती को बहुत मारती है। सिलिया यह सब देखती है परन्तु संकोच के कारण वह कुछ भी बोल नहीं पाती है। जब युवा नेता सेठी, जो विज्ञापन द्वारा शूद्र वर्ण की लड़की से विवाह करने का विचार प्रकट करता है तो सीलिया सेठी के ढोंग पर अपना आक्रोश व्यक्त करती है और सोचती है कि, "हम क्या इतने लाचार हैं? आत्मसम्मान रहित हैं? हमारा अपना भी कुछ अहंभाव है, उन्हें हमारी जरूरत है, हमको उनकी जरूरत नहीं, हम उनके भरोसे क्यों रहे ... अपना सम्मान हम खुद बढ़ायेंगे।"[67]

व्रत और व्रती

कहानी में धर्मपाल एक अभावग्रस्त युवक है, जो मेहनत-मजदूरी करके अपना जीवन बिताता है। वह अपने कष्टों को दूर करने के लिए जन्माष्टमी का व्रत रखता है। वह दिन-भर उपवास करता है परन्तु दोपहर से उसकी तबीयत बिगड़ने लगती है। वह रात को पूजा करके खाना खाता है लेकिन ज्यादा खाने से सब उबल पड़ता है और रात को खाली पेट ही सोना पड़ता है। अन्त में वह समझ लेता है कि "इस भागती मशीनी जिन्दगी में अपने पेट की आग बुझाने के लिए इन्तजाम भी स्वयं ही करना है।"[68] तथा बाद में ऐसा न करने का संकल्प लेता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

मेरा समाज

इस कहानी में नारी शोषण का चित्रण किया गया है। उस समाज में लड़कियों की अवस्था ऐसी है। आर्थिक अभाव के चलते वे आगे नहीं पढ़ सकती थी तथा शादी होने के बाद तो एक प्रकार से हर जगह शोषण होता था—"बहु नौकरी भी करती थी, घर का पूरा काम भी—खाना पकाना, खिलाना, माँजना, धोना सब काम करके बच्चों को सम्भालना, इतना सब करने के बावजूद भी दिन-रात पति की मार, सास की गालियाँ और ननदों के ताने ही मिलते थे।"[69]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि डॉ. सुशीला टाँकभौरे जी ने अपने कहानी साहित्य के माध्यम से दलित चेतना के विविध पहलुओं पर बड़े मार्मिक ढंग से टिप्पणी की है। इस प्रकार दलित संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में वे पूर्ण रूप से सफल हुई है।

3.14 अन्य कहानीकारों की कहानियाँ

हरिजन

प्रेम कपाड़िया की 'हरिजन' कहानी में पौराणिक मान्यताओं का खण्डन किया गया है। यह अपनी जड़ों को सींचने वाली दलित चेतना की ऐसी कथा है, जिसके चलते देवदासी का पुत्र होकर भी 'प्रेम' अपनी माँ को नहीं भूलता और वह पुजारियों के विरोध के बावजूद मन्दिर से अपनी माँ को ले जाता है। इसी बीच कथानायक अपनी सवर्ण पत्नी के इस विचार को भी नकारता है कि पत्नी दासी होती है। वह मानता है कि, "जब स्त्री-पुरुष साथ-साथ शिक्षा लेते हैं तो पत्नी दासी कैसे हो सकती है।" यह कहानी कुप्रथा समाप्त करने की दिशा में तो सक्रिय है लेकिन अन्त में कथावस्तु भावना में बहकर एकांगी मुक्ति तक सीमित हो जाती है।

यस सर कहानी संग्रह

नयी नजर का नया नजरिया अजय नावरिया का कहानी संग्रह है 'यस सर'। इस संग्रह की कहानी 'अनचाहा' भ्रूण हत्या पर केन्द्रित है। यहाँ पर कथाकार ने भ्रूण के माध्यम से समाज की अन्य विसंगतियों को भी बेपर्दा किया है। इन्द्राणी की परेशानी में पति मनोज बेपरवाह है। बच्चा या अबॉर्शन पत्नी के लिए कठिन निर्णय है। इस पति की बेपरवाह टिप्पणी 'ये तुम्हारी परेशानी है, तुम जैसे चाहो, निपटो।' यहाँ पर इन्द्राणी के

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

माध्यम से उनके दर्द और द्वन्द्व को बयां किया गया है। ऐसे तनाव में माँ तन्हा होती है, परिवार–समाज के बीच भी।

नकाब

इस कहानी में समकालीन समाज को जातिवाद और राजनीति से ग्रसित बताया गया है। जहाँ पर दलित खुद आन्तरिक जातिवाद में उलझे हैं। चमार अपने को भंगियों से ऊँचा समझते हैं तो कोली खटीक अपने को चमारों से। दलित समाज की स्त्रियाँ भी पुरुषवादी वर्चस्व झेल रही है। कठिन श्रम के बाद इनकी पुरुषों द्वारा पिटाई होती है, फिर भी इनके अन्दर पुत्र प्राप्ति की इच्छा बलवती है। लेखक इस सच को बेनकाब करता है, जिसे प्राय: बाहर आने से रोका जाता है।

अपने–अपने मुखौटे

यह दलित शिक्षिका के द्वन्द्व की कहानी है। शिक्षित–स्वावलम्बी दलित स्त्री समाज के सवर्णवादी दबाव से मुक्त नहीं हो पाती है। अध्यापन का आदर्शवादी पेशा भी जातिवाद के चुंगल में फँसा है। इण्टरवेल में चर्चा समाज व शिक्षा पर न होकर जाति पर होती है। मिसेज गुप्ता सरनेम के माध्यम से जाति जानना चाहती है। दलित स्त्रियों के लिए दोहरी नाकेबन्दी है। जातिवाद के साथ पुरुषवाद। इसके अतिरिक्त कहानी में साक्षात्कार की प्रक्रिया और रिसेप्शन वाली लड़की का चित्र वास्तविकता के धरातल पर है। प्रसंग और पात्रों के अनुकूल आए अंग्रेजी के शब्द समकालीन समाज को दृश्यमान करने में सहायक है।

चीयर्स

इस कहानी में बदलते वक्त की नब्ज को पकड़ने का सफल प्रयास है। शिक्षकों में ऊँच–नीच का भाव पैदा करने वाले कारकों में जाति के साथ कनिष्ठ–वरिष्ठ जैसे पद भी हैं। टीचर एसोसिएशन के चुनाव में दलित वर्ग के प्रत्याशी सी. लाल (चुन्नीलाल) ब्लेक लिटरेचर को घोट रखे हैं, इसके बाद भी सवर्णवादी कमजोरियों से मुक्त नहीं है। उनका मानना है—अच्छा और भला बनने के फेर में पड़ोगे तो मार दिए जाओगे... हमेशा आक्रामक रहें। दलित जाति–व्यवस्था के वर्चस्व को तोड़ने के लिए संघर्षरत हैं किन्तु अन्तर्कलह के कारण सफलता नहीं मिल पा रही है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

एक देर शाम

कहानी स्कूल के जातिवाद से आरम्भ होकर मीडिया के मनुवाद से होते हुए बाजारवाद तक जाती है। आज गाँव के दलित शिक्षा के महत्त्व और प्रभाव को समझते हैं। चपरासी होते हुए दिनकर के पिता उसे पढ़ा-लिखाकर आई.ए.एस. बनाना चाहते हैं किन्तु मीडिया के आरक्षण विरोधी रवैये के कारण वह पत्रकारिता को स्वीकार करता है। दलित उत्पीड़न की रिपोर्टिंग के कारण न सिर्फ उसे परेशान किया जाता है बल्कि बाहर का रास्ता भी दिखा दिया जाता है।

इज्जत

इस कहानी में शिक्षा और पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद भी दलित-स्त्रियों की इज्जत से खिलवाड़ हो रहा है। यहाँ पर कहानीकार ने उषा के माध्यम से सशक्त दलित स्त्री के चरित्र का सृजन किया है जो बलात्कार के बाद आत्महत्या नहीं करती बल्कि बदला लेने की ठानती है। महिला सशक्तिकरण, दलित आन्दोलन और हरिजन एक्ट के बाद भी क्यों दलित स्त्रियों से सामूहिक बलात्कार की घटनाएँ कम नहीं हो रही हैं। यह सभ्य समाज के लिए चिन्ता का सबब एवं शोध का विषय होना चाहिए।

यस सर

इस संग्रह की प्रतिनिधि कहानी 'यस सर' ब्राह्मण चपरासी (तिवारी) और दलित अधिकारी (नरोत्तम सरोज) के द्वन्द्व की कहानी है जहाँ पर दलित अधिकारी के आदशों से तिवारी का जातिगत अहं बार-बार चोट खाता है। तिवारी तंज करता है कि, 'कोटा नहीं होता तो कहीं झाड़ू लगा रहा होता।' नरोत्तम थर्ड डिवीजन का विद्यार्थी था जिसने परिश्रम से पहले ही प्रयास में एम.बी.ए. में दाखिला ले लिया और अधिकारी बन गया। इसका चरित्र दलित युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत है। कहानी में कुछ सीधे-सपाट ढंग से कहा गया है तो कहीं कुछ संकेत और व्यंग्य में, यथा—'पानी उतर रहा है तिवारी?।'

न्याय-कथा

इस कहानी में यह बतलाने की कोशिश की गई है कि देर से मिला न्याय अन्याय से कम नहीं होता। इसके बाद भी दलितों को न्याय न मिले तो? न्याय व्यवस्था की माँग अकारण नहीं उठाई जा रही है क्योंकि शासन का रवैया भी कम सवर्णवादी नहीं है। जाति

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

का दंश गाँव ही नहीं अपितु महानगरों की मल्टीस्टोरी बिल्डिंग के निवासियों को भी डस रहा है। विक्रम-बेताल के पुराने मिथक में आधुनिक समाज के सेक्सी-सामन्ती स्वरूप को प्रकट किया गया है।

एक और अन्त

अभयकुमार सिन्हा द्वारा रचित इस कहानी में जातिवाद का सर्वाधिक घिनौना रूप अन्तर्जातीय विवाहों के प्रसंग में देखा जा सकता है। कहार जाति का टुनरा और चमार टोली की सुमनी के बीच होने वाली शादी गाँव में हंगामा मचा देती है। शादी के बाद कहार और चमार टोली के बीच झगड़ा शुरू होता है जो आपसी मार-पीट तक पहुँच जाता है तथा जातिवाद के नाम पर शारीरिक आघात पहुँचाने में भी वे नहीं हिचकते। शारीरिक शोषण के अमानवीय व्यवहार को लेकर होने वाली निर्ममता कहानी में अन्यत्र उपलब्ध है।

बिच्छूघास

अस्पृश्यता की समस्या प्रधान कहानी में दुर्गादत्त और मूसा प्रमुख पात्र हैं। दुर्गादत्त उच्च जाति का और मूसा निम्न जाति का है। दुर्गादत्त द्वारा मूसा को कई बार जलील किया जाता है एवं शिकायत करके मास्टर से पिटवाया भी जाता है। लेकिन समय परिवर्तन के साथ दुर्गादत्त का दृष्टिकोण सकारात्मक एवं आशावादी दिखलाई पड़ता है—"मेरा भी तो धरम है मूसा दा, मैं तेरा छुआ न खाऊँ, पर मैं खाने के लिए तैयार हूँ क्योंकि मैंने देखा है कि इस धरम में दम नहीं है। जो धर्म मनुष्य को जानवर से भी बदतर समझे मैं उसे धरम नहीं मानता।"[70]

खाली झोली भरे हाथ

कहानी की लेखिका शशिप्रभा शास्त्री ने इस कहानी में दलितों की आर्थिक तंगी तथा उच्च वर्ग की झूठी सहानुभूति, खोखलेपन और उसकी कन्जूसी को प्रस्तुत किया है। गिन्नू और उसकी पत्नी की आर्थिक विपन्नता ही इस कहानी का केन्द्र है। कमला जो घर की मालकिन है, उसके माध्यम से सम्पन्न वर्ग की झूठी सहानुभूति को स्पष्ट किया गया है। गिज्जू की पत्नी एक बेटी को जन्म देती है। पत्नी की स्वास्थ्य रक्षा के लिए उसे घी देना है। वह मालकिन कमला से दस रुपये माँगता है लेकिन वह तैयार नहीं होती। यहाँ पर मालकिन द्वारा सहानुभूति प्रदर्शन भी एकमात्र दिखावा है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

रिक्शावाला

डॉ. सुरेश मुले द्वारा रचित इस यथार्थवादी कहानी में ग्रामीण जीवन जीने वाला एक आम आदमी गरीबी एवं मजबूरी के कारण अपने सपने तो पूरी नहीं कर पाता है मगर अपने बेटे में सपने पूरे होते देखना चाहता है जिसके लिए वह अपना पूरा जीवन बिता देता है। इस कहानी का विट्ठल मेहनती है, संकट के समय दूसरों की मदद करने वाला एक भावुक इन्सान है जो दिन-रात की हाड़तोड़ मेहनत करके अपने बेटे संजय को पढ़ा-लिखाकर इंजीनियर बनवाने की आशा नहीं छोड़ता। विट्ठल की इसी प्रबल इच्छा शक्ति की वजह से हालात से मजबूर होकर एवं अधूरी शिक्षा छोड़कर रिक्शा चलाने वाला संजय फिर से पढ़ने लगता है। पिजाजी का संजय को इंजीनियर बनवाने का सपना पूरा नहीं हो सका, मगर एक अच्छा आदर्श शिक्षक बनकर वह पिताजी को सच्चे अर्थों में श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

कल किसी और पर भी

विपिन बिहारी द्वारा रचित इस कहानी में नगीना और उसकी पत्नी बेलवा तथा उनके पुत्र मंगल की किसी ने हत्या करके उनके सिर गाँव के पास आम के पेड़ में लटका दिया है। शुरुआत में मंगल की हत्या का कारण मंगल द्वारा भैरो बाबा की पिंडी पर पेशाब करने को माना जाता है तथा पुलिस आने पर शव का दाह संस्कार भी कर दिया जाता है लेकिन कुछ समय बाद मंगल की हत्या की वास्तविकता सामने आने पर मंगल के माँ-बाप का थाने जाकर शिकायत करने पर थानेदार द्वारा रिपोर्ट दर्ज नहीं करना एक प्रकार से हत्यारों से मिला होने की ओर संकेत करता है। यह कहानी समाज में दलित जाति के बच्चों द्वारा पढ़ाई में अच्छे अंक प्राप्त करना तथा पुरानी परम्पराओं को न मानना सवर्णों के लिए काँटे के समान है जिसे वे किसी भी हद तक जाकर नष्ट करने का पूरा प्रयास करते हैं। यहाँ पर मंगल पढ़ने में होशियार एवं देवी-देवताओं में एक प्रतिशत भी विश्वास नहीं करता था जिसके कारण वह गैर दलितों के लिए काँटा साबित होता है।

छोड़ गए तुलसी

डॉ. अभय कुमार द्वारा रचित इस कहानी में एक दलित परिवार की जीवन गाथा का चित्रण किया गया है। साथ ही सामाजिक उत्पीड़न को इस कहानी में जगह दी है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

कहानी में तीनकौड़ी और सुखमनी नामक गरीब दम्पती के एक बच्चा पैदा होता है। वह जन्म से कमजोर तथा कुछ समय बाद चेचक के प्रकोप के कारण उसकी स्थिति और भी दयनीय हो जाती है जिसे उसकी माँ सुखमनी द्वारा अपनी गोद में चिपकाए नीम के पेड़ के पास तुलसी के नीचे उसको रखकर मन्नतें माँगने लगती है। ईश्वर की कृपा से उसका बच्चा ठीक हो जाता है। इसी कारण उस बालक का नाम तुलसी रखा जाना तय होता है। वह बालक पढ़ने में तेज था। अनेक समस्याओं का सामना करते हुए वह अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर लेता है एवं दसवीं कक्षा में जिला स्तर पर सबसे अधिक अंक प्राप्त करके यह सिद्ध करता है कि विद्या किसी की गुलाम नहीं होती। लेकिन उनके गाँव के लोग तुलसी की सफलता से चिढ़ जाते हैं तथा उसे आगे नहीं पढ़ने की चेतावनी भी दे देते हैं। वह एक दिन अपने जीवन की अन्तिम चोटी को छूने के लिए रात्रि के अन्धकार में अनजान दिशा की ओर निकल पड़ा, जिस प्रकार से सिद्धार्थ गौतम ने गृहत्याग किया था। दिल्ली पहुँचकर आगे की पढ़ाई शुरू करता है एवं इसी संघर्ष के साथ वह अपनी श्रम, शक्ति और विद्या को लेकर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बन जाता है। कुछ समय बाद तुलसी के प्रोफेसर बनने की खबर उसके गाँव तक पहुँच जाती है तब तक उसके माता-पिता गुजर चुके थे। यह कहानी एक दलित परिवार के सामाजिक उत्पीड़न के बावजूद भी अपने बच्चों की शिक्षा जारी रखना तथा बालक तुलसी द्वारा शिक्षा के माध्यम से ही मंजिल तक पहुँचना एक मिसाल कायम करता है।

सन्दर्भ

1. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 14
2. वही, पृ. 12
3. वही, पृ. 12
4. वही, पृ. 17
5. कंवल भारती — पूर्वदेवा, जुलाई-सितम्बर, 1996, पृ. 94
6. तीसरा पक्ष (पत्रिका), जनवरी-मार्च, 2001, पृ. 78
7. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 35
8. दलित कहानी संचय — रमणिका गुप्ता, पृ. 23

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

9. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 69
10. वही, पृ. 124-125
11. वही, पृ. 69
12. वही, पृ. 116
13. वही, पृ. 29
14. घुसपैठिए — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 24
15. वही, पृ. 61
16. ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'शवयात्रा' इण्डिया टुडे, 22 जुलाई, 1998
17. सलाम — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 47
18. हैरी कब आएगा — सूरजपाल चौहान, पृ. 76
19. वही, पृ. 63
20. आऊटलुक, साप्ताहिक, 9 जून, 2003, पृ. 54
21. वही, पृ. 55
22. हैरी कब आएगा — सूरजपाल चौहान, पृ. 38
23. कथापर्व, दिसम्बर, 2003, पृ. 10
24. वही, पृ. 11-12
25. हैरी कब आएगा — सूरजपाल चौहान, पृ. 21
26. बहरूपिया — सूरजपाल चौहान
27. हैरी कब आएगा — सूरजपाल चौहान, पृ. 37
28. वही, पृ. 36
29. वही, पृ. 79
30. वही, पृ. 84
31. वही, पृ. 25
32. वही, पृ. 26
33. गूँज, त्रैमासिक पत्रिका, दिल्ली, अक्टूबर, पृ. 28
34. हैरी कब आएगा — सूरजपाल चौहान, पृ. 42-43
35. वही, पृ. 43
36. वही, पृ. 51
37. वही, पृ. 52
38. मोहनदास नैमिशराय, बयान, पत्रिका, अंक 69, अप्रैल 2012, पृ. 34
39. तलाश — जयप्रकाश कर्दम
40. दलित साहित्य के प्रतिमान — एन. सिंह, पृ. 158

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

41. वही, पृ. 144
42. वही, पृ. 144
43. वही, पृ. 147
44. बहू जुठाई — रमणिका गुप्ता, पृ. 14
45. वही, पृ. 25
46. वही, पृ. 25
47. पुंटुस के फूल — प्रहलाद चन्द्र बोस, अपनी बात
48. वही, पृ. 7
49. वही, पृ. 10
50. दलित ब्राह्मण — शरण कुमार लिम्बाले, पृ. 17
51. नंगा, वर्ष की चट्टाने — शैलेश मटियानी, पृ. 161
52. प्यासा, त्रिज्या — शैलेश मटियानी, पृ. 117
53. धुधतिया त्यौहार, बर्फ की चट्टाने — शैलेश मटियानी, पृ. 557
54. रत्नकुमार साँभरिया — हुकम की दुग्गी, फुलवा, पृ. 10
55. रत्नकुमार साँभरिया — बकरी के दो बच्चे, पृ. 13
56. रत्नकुमार साँभरिया — काल तथा अन्य कहानियाँ, चपड़ासन, पृ. 52
57. रत्नकुमार साँभरिया — विपर सूदर एक कीना, हँस, जुलाई 2007, पृ. 27
58. वही, पृ. 27
59. रत्नकुमार साँभरिया — खेत, राजस्थान पत्रिका, 25 मई, 2007
60. रत्नकुमार साँभरिया — काल तथा अन्य कहानियाँ, आखेट, पृ. 34
61. रत्नकुमार साँभरिया — काल तथा अन्य कहानियाँ, शर्त, पृ. 112
62. रत्नकुमार साँभरिया — बाँग तथा अन्य लघुकथाएँ, पृ. 15
63. वही, पृ. 126
64. वही, पृ. 34
65. हँस (पत्रिका), डॉ. एन. सिंह, पृ. 97
66. डॉ. सुशीला टाँकभौरे — नई राह की खोज, पृ. 82
67. वही, सिलिया, पृ. 66
68. वही, व्रत और व्रती, पृ. 53
69. वही, मेरा समाज, पृ. 30
70. दलित जीवन की कहानियाँ, बिच्छूघास, पृ. 146

❑

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

चतुर्थ अध्याय

समकालीन दलित उपन्यास

4.1 भूमिका

दलित साहित्य लेखन में दलित उपन्यासों का महत्त्व है जिसमें जीवन समग्र रूप में प्रस्तुत होता है। उपन्यासकार के समक्ष जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करने की सुविधा होती है जिसमें दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, नैतिक और राजनीतिक सन्दर्भों से जुड़े जीवन का वर्णन किया जाता है। दलित उपन्यास एक व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित न होकर पूरे समाज का खाका प्रस्तुत करता है। देश और समाज की समस्याओं, परम्पराओं एवं नीतियों के अन्याय के विरुद्ध एक अलग अवधारणा की स्थापना के उद्देश्य से दलित उपन्यास लिखे गये हैं तथा समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों तथा विषमतावादी परिस्थितियों को केन्द्रित करके उनकी विद्रूपताओं का चित्रण उपन्यास में किया जा रहा है। समाजवादी व्यवस्था के संघर्षरत मनोभावना और मनोकामना को चित्रित करने का काम दलित उपन्यासकारों ने किया है जिससे शिक्षा से वंचित दलित समानता का संवैधानिक अधिकार पाकर अब शिक्षा पाने लगे हैं। गाँव से शहर जाकर अच्छे पदों पर नौकरियाँ करने लगे हैं तथा साथ ही वे समता, स्वतन्त्रता और सम्मान के साथ अपने अधिकारों को समझने लगे हैं। आज तक साहित्य की सीमा से बाहर रहे दलित, पिछड़े, उपेक्षित, समलैंगिक स्त्रियाँ आदि को दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में स्थान दिया है। आज का उपन्यास यथार्थवादी बनता जा रहा है जो मानव जीवन में हमेशा परिवर्तन को ढूँढता है और इसी परिवर्तन के द्वारा यथार्थ विद्रोह या नई चेतना का जन्म दलित उपन्यास के माध्यम से हुआ है जिसमें नारी चेतना, ग्रामीण चेतना तथा दलित चेतना जैसे विषयों को आयाम मिला।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

दलित चेतना वर्तमान साहित्य की एक ज्वलन्त समस्या है और इसी समस्या को दलित उपन्यासों के माध्यम से भी साहित्यिक धरातल पर लाने का कार्य दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है। दलित उपन्यास का उद्देश्य निश्चय ही सवर्णों द्वारा लिखे उपन्यासों की अपेक्षा बिल्कुल अलग है। कुछ सवर्ण उपन्यासकारों ने ऐसे उपन्यास लिखे हैं जिनके प्रमुख पात्र या नायक-नायिका दलित हैं। ऐसे उपन्यासों की संख्या बहुत है मगर उन उपन्यासों के दलित पात्रों में चेतना, जागृति और अपनी अस्मिता की पहचान नहीं है। वे अपनी दलित पीड़ित स्थिति से उभर नहीं पाते हैं। कई दलित पात्र तो अपनी उसी स्थिति में खुश नजर आते हैं। सवर्ण उपन्यासकारों ने ऐसे दलित पात्रों को मनमाने तरीके से प्रस्तुत करके उनकी दीन स्थिति को पाठकों के मनोरंजन की सामग्री बना दिया है तथा उन दलित पात्रों को आदर्शवादी और गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक के रूप में दिखाया है। दलित उपन्यासकारों का उद्देश्य इसके ठीक विपरीत है। सामाजिक कटु यथार्थ को बताने के लिए दलित साहित्य विशेष उद्देश्य से लिखा जा रहा है। अत: दलित उपन्यास आदर्शोन्मुखी न होकर यथार्थवादी ही हैं जिनमें व्याप्त सामाजिक अन्तर्विरोध व विसंगतियाँ बतलाई गयी है। इन उपन्यासों में दलित मनुष्य की स्वतन्त्रता के भाव का चित्रण है जिसका आधार समता, सम्मान और भाईचारा है। दलित उपन्यासों का नायक एक व्यक्ति होकर भी एक व्यक्ति नहीं बल्कि शोषित पीड़ित अधिकारों से वंचित अपने समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जो विरोध और आक्रोश के साथ विद्रोह की आवाज उठाकर समाज को अपने अधिकारों के लिए ललकारता है। इसी संघर्ष में अन्त तक टिका रहता है और अपने समाज के लिए उत्साह, जागृति और प्रेरणा का स्रोत बनता है क्योंकि वह अत्याचारी को सजा देकर अपने वर्ग का हौसला बढ़ाता है। जरूरत है सामाजिक यथार्थ का डटकर सामना करना और उसके बीच अपने समाज के लिए प्रगति का मार्ग प्रशस्त करना। आशा है इस उद्देश्य को दलित उपन्यासों के माध्यम से पूरा किया जा सकता है।

4.2 छप्पर : जयप्रकाश कर्दम

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित 'छप्पर' उपन्यास पश्चिमी उत्तर प्रदेश के छोटे-से गाँव मातापुर के यथार्थ जीवन पर आधारित है। इसमें ग्रामीण एवं नगरीय जीवन का चित्रण है। अधिकतर कामकाजी लोग शोषित, पीड़ित और अन्याय के शिकार हैं। यहाँ पर

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

जयप्रकाश कर्दम ने अपने उपन्यास 'छप्पर' के पात्र सुक्खा और रमिया के माध्यम से समूची दलित संवेदना को एक शिद्दत के साथ उजागर करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में दो मुख्य पात्र हैं—एक सुक्खा और दूसरा उसका बेटा चन्दन। ये पात्र समाज-परिवर्तन और दलित उत्थान के लिए चिंतित हैं। सुक्खा अपने बेटे चन्दन को पढ़ने के लिए शहर भेजता है। ठाकुर हरनाम सिंह और कांडे पण्डित को चन्दन का शहर में पढ़ना सवर्णों के प्रति अपराध करने जैसा लगता है।

सुक्खा पर सवर्ण वर्चस्ववादी लगातार दबाव डालते हैं कि वह अपने बेटे चन्दन को शहर से वापस बुला ले, लेकिन सुक्खा मौन रहता है और मन-ही-मन निश्चय करता है कि वह चन्दन को जातीय गुलामी की जिन्दगी नहीं जीने देगा। वह उसे पढ़ाएगा। स्वयं अनपढ़ सुक्खा शिक्षा के महत्त्व को समझता है। सुक्खा चन्दन को पढ़ा-लिखाकर बड़ा आदमी बनाना चाहता है। रमिया भी उनका पूरी तरह हौसला बढ़ाती है। परिस्थितियों के कारण रमिया घबड़ाती है तो उसे समझाते हुए सुक्खा कहता है—"चुप रह पगली, कोई पेट से बड़ा बनकर आता है। पढ़ लिखकर बड़े बनते हैं सब। क्या पता हमारा चन्दन भी कल को कलक्टर या दरोगा बन जाए। अपनी चिंता छोड़, हमें थोड़े दुःख उठाने पड़ रहे हैं तो क्या, दुःख के बाद सुख आता है। हमारे दिन भी बहुरंगी, कभी-न-कभी।"[1]

चन्दन शहर में पढ़ने के लिए जाता है तथा वह जहाँ पर रहता है वह एरिया सन्तनगर की झोपड़पट्टी का है। वहाँ के लोगों में हरिया के व्यक्तित्व का चित्रण लेखक ने बखूबी किया है। शहर और गाँव में दलितों-गरीबों की जिन्दगी की करुणा को प्रस्तुत किया है। गाँवों और शहरों की स्थिति का अन्तर बताते हुए लिखा है—"शहर की कल्पना कैसी थी चन्दन की, और वह क्या पाता है। वह सोचता था शहर को लेकर कि —न वहाँ गाँवों की तरह आर्थिक तंगी होगी, न रोटी और कपड़े की समस्या। न पुलिस और कानून का आतंक होगा, न ठाकुर जमींदारों की हिंसा और आतंक का मनमाना राज। न सेठ साहूकारों के सूद की निर्मम मार होगी, न ऊँच-नीच और छुआछूत की जगह चोरी, डकैती या अन्य तरह की असुरक्षा ही।"[2] लेकिन गाँव और शहर के लोगों की स्थिति में अन्तर नहीं था।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यहाँ भी बड़े लोग इनका शोषण करते थे। सन्तनगर में हरिया के यहाँ चन्दन रहता था। हरिया के द्वारा झौपड़पट्टी में रहने वाले दलित-गरीबों की अच्छाइयों-बुराइयों का हमें पता चलता है। हरिया हमेशा शराब के नशे में चूर रहता है। लोग चीखते हैं, चिल्लाते हैं, भजन आदि करते हैं। दलितों में सबसे बड़ी बुराई यह है कि वे लोग जितना कमाते हैं, उसका बड़ा हिस्सा शराब या जुए आदि में बर्बाद कर देते हैं। अधिकांश लोग व्यसन के शिकार हैं। हरिया में अच्छाई भी है कि वह बिना कुछ लिए चन्दन को रहने के लिए कोठी देता है। अपने बेटे जैसा बर्ताव करता है। पढ़ने-लिखने या शिक्षा का महत्त्व हरिया समझता है। वह चन्दन से किराया भी नहीं लेता तथा कहता है कि, "धरती पर बोझ नहीं होता आदमी, आदमी पर बोझ होता है। कैसी व्यवस्था है, यह कैसी सोच है—हे भगवान्!"[3]

हरिया के द्वारा चन्दन की आवश्यकताओं का ध्यान एक पिता से अधिक रखता है। फीस न दे पाने के कारण वह जब चन्दन की पढ़ाई छूटती देखता है तो चन्दन की शिक्षा का खर्च अपने ऊपर ले लेता है। हरिया को भी एक उम्मीद थी कि चन्दन पढ़ लिखकर बड़ा आदमी बने। वह एक स्थान पर कहता भी है—"पढ़ो बेटा, पढ़ो, पूरी मेहनत से पढ़ो। मन लगाकर पढ़ो, ऊँची तालीम पाओ और बड़े हौंदे तक पहुँचो।"[4]

चन्दन इस मोहल्ले में दलितों के नंगे, मलिन वस्त्रों में आवारा घूमते बच्चों के लिए स्कूल खोलकर उनमें शिक्षा रूपी मन्त्र फूँकता है और उन्हें सामाजिक गुलामी का एहसास कराता है। उनके मन में मानवीय चेतना के प्राण संचारित करता है। वहाँ स्कूल में चन्दन की मुलाकात एक कमला नामक युवती से होती है। कमला सामूहिक बलात्कार की शिकार हुई हरिया की ही बेटी है। वह बलात्कार से पैदा हुए अपने बेटे खिलाड़ी को पढ़ाना चाहती है। धीरे-धीरे चन्दन और कमला वैचारिक और भावात्मक रूप से एक-दूसरे के नजदीक आते हैं। दूसरी ओर रजनी भी चन्दन के प्रति भावात्मक स्तर पर जुड़ी हुई है। इस उपन्यास में भी फिल्मी दृश्य की भाँति हीरो बना चन्दन मंच पर जनसभा को सम्बोधित करता है। वह जैसे ही नीचे उतरता है दूषित मानसिकता वाले लोग चन्दन के सिर पर लाठियों से प्रहार करते हैं, लेकिन कमला ने जैसे ही देखा, वह द्रुतगति से आगे बढ़ी और चन्दन को धक्का देकर स्वयं उस वार को सह गई जिसके कारण घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

'छप्पर' का चन्दन पढ़ लिखकर वास्तव में कलक्टर बनना नहीं चाहता, बल्कि खुद शिक्षित होकर शिक्षा और ऊर्जा हासिल करके अपने वर्ग को, अपनी जाति के निष्कलंक लोगों को परिधि से केन्द्र में लाने का सपना संजोता है। सवर्ण रूपी कसाइयों के सामने ये मौन रहकर जान देनेवाले गरीब निम्न वर्ग के लोगों को खुद के अस्तित्व को चेताकर मुख्यधारा में लाने का प्रयास करता है। इसके लिए वह शिक्षा की अनिवार्यता महसूस करता है क्योंकि शिक्षा ही वह साधन है जिसके माध्यम से अपमानित, शोषित, पीड़ित हाशियेकृत इन्सान अपने अस्तित्व को परख सकते हैं।

चन्दन अपने समुदाय में परिवर्तन लाना चाहता है। उपेक्षित व अपमानित लोगों को उनका जन्मसिद्ध अधिकार दिलाना चाहता है। वह जानता है कि स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए उनको खुद लड़ना है। एक सन्दर्भ में वह रजनी से कहता है—"हिंसा का जवाब हिंसा नहीं है रजनी! हिंसा का जवाब अहिंसा से दिया जाना चाहिए। हमारा संघर्ष न्याय और समानता के लिए है। अतीत में हमारे साथ कैसा सलूक किया गया है। हम उस पर जाना नहीं चाहते, क्योंकि उससे कोई अच्छा परिणाम निकलने की आशा नहीं है। हम विरोध नहीं सामंजस्य चाहते हैं।"[5]

दलितों का उत्थान, समाज उत्थान और मानवता की स्थापना उपन्यास के केन्द्र में है। उसके लिए जो कुछ करना पड़े, करने के लिए चन्दन तैयार है। चन्दन की जातिगत चेतना जागृत हो चुकी है। वह खुद को समझ गया है। समाज, धर्म, अर्थ एवं शिक्षा इन क्षेत्रों को वह पहचान गया है। अत: अपने मित्रों—रामहेत, रतन और नन्दलाल चूँकि अलग-अलग क्षेत्र के जानकार हैं, समाज के लिए कार्य करना चाहते हैं। अत: वे लोग दलितों को यथासम्भव मदद करने को तत्पर हैं। चन्दन कहता है—"हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम चाहे जिस क्षेत्र में जाए लेकिन अपने लोगों का ध्यान रखें और उनकी मदद करें।"[6]

चन्दन का आन्दोलन शहर से होता हुआ गाँवों तक पहुँचता है। मातापुर में रजनी, जो ठाकुर हरनाम सिंह की बेटी है, बचपन से आज तक असमानता को देखती आई है, उसे दलितों के प्रति हमदर्दी है। रजनी को परिपक्व-समझदार-संवेदनशील युवती के रूप में दिखाया गया है। वह एक स्थान पर कहती है कि, "कौन कहता है व्यवस्था को बदला

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

नहीं जा सकता। आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई सारी व्यवस्थाएँ और सारी व्यवस्थाएँ आदमी के लिए ही है।"[7]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि छप्पर उपन्यास एक उद्देश्यपूर्ण रचना है लेखक इसमें एक मिशन लेकर आगे बढ़ा है। बाबा साहब के त्रयी स्लोगन, 'शिक्षित बनो! संगठित रहो! संघर्ष करो' का इसमें पूर्णतया निर्वाह हुआ है। इसमें अम्बेडकर की विचारधारा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुई है। यह उपन्यास नए दलित रचनाकारों को भी अपरोक्ष रूप से सन्देश देता है कि लेखन उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। इन्हीं विशेषताओं के कारण इसकी रचना सहज, सरल और सामान्य भाषा में होने के कारण पाठक को बाँधती है। इस उपन्यास ने दलित कथा-लेखन की हिन्दी में प्रवृत्ति को तेज किया। मिशनरी विचारधारा के तहत लिखा गया, यह पहला सफल प्रयोग है। उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम का यह महत्त्वपूर्ण योगदान है।

4.3 मिट्टी की सौगन्ध : प्रेम कपाड़िया

प्रेम कपाड़िया के इस उपन्यास में दलितों के साथ अन्याय का विरोध दिखाया गया है। मदन सिंह गाँव का दबंग जमींदार है। उसकी हवेली में गरीबों की औरतों के शरीर के साथ खिलवाड़ होता है। मदनसिंह का लड़का विजेन्द्र सिंह पिता के कृत्य से दु:खी है। एक दिन विधवा गंगा की बेटी शीला के साथ बलात्कार करता है। यह देखकर बृजेन्द्र सिंह दु:खी होता है। शीला मर जाना चाहती है लेकिन उसकी मौसी और विजेन्द्र उसे जीने का हौसला देते हैं तथा गाँव के दलित ठाकुर मदनसिंह से बदला लेना चाहते हैं। विजेन्द्र उनका साथ देते हुए उनकी मदद करता है। विजेन्द्र शीला को न्याय देने के लिए उससे विवाह करता है। इससे नाराज होकर मदन सिंह अपने बेटे पर हमला करवाता है। विजेन्द्र अपने पिता को दण्ड देते हुए दस साल के लिए जेल भिजवा देता है।

इस उपन्यास की कहानी में एक वास्तविकता यह है कि खलनायक मदन सिंह के चरित्र में चमत्कारिक परिवर्तन नहीं दिखाया गया है बल्कि उसका असली रूप अन्त तक दिखाई देता है। वहीं उसके पुत्र विजेन्द्र को उतना ही उदार हृदय और क्रान्तिकारी दिखाना नाटकीय अवश्य लगता है जो पिता के दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त स्वयं करता है। यह अपवाद है, समाज की सच्चाई नहीं है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

4.4 जस–तस भई सवेर : सत्यप्रकाश

सत्य प्रकाश का उपन्यास 'जस–तस भई सवेर' शीर्षक से ज्ञात होता है कि जैसे–जैसे सवेरा हुआ यानी दलितों में चेतना जागी है, अज्ञान की काली रात खत्म हो रही है और ज्ञान से जागृति का सवेरा हो रहा है। इस उपन्यास में लेखक ने दलित वर्ग के बीच व्याप्त अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास और आपसी फूट को बताते हुए सवर्णों द्वारा किये जा रहे दलितों के शोषण को उजागर किया है। इसमें दलित पुरुषों के साथ दलित महिलाओं का शोषण भी होता है।

उपन्यास की भूमिका में बताया है—"इन भेड़ियों में पंडें, पुजारी, भगत और सूदखोर महाजन भी है। वे दलित पिछड़े वर्ग का शोषण अपने तरीके से लगातार कर रहे हैं। शिक्षा और ज्ञान से दूर दलित वर्ग उनके बहकावे में आकर स्वयं का नुकसान करता है।"[8]

यह उपन्यास एक तरफ समाज में व्याप्त अशिक्षा, अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा का चित्रण करता है तो दूसरी तरफ लेखक ने चौधरी देवीपाल सिंह, भगत हरसन्ना जैसे चरित्रों का निर्माण करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि ये दोनों खलनायक हँसा और सुनहरी को धर्म की आड़ में मूर्ख बनाते हैं। उन्हें कर्ज में फँसाते हैं। हँसा के जागरूक भाई को भी झूठे आरोप में जेल भेजते हैं। दोनों भाइयों के बीच दूरी बनाने का षड्यंत्र करते हैं। चौधरी व भगत की धूर्तता यहीं समाप्त नहीं होती है। वे दलित समाज की स्त्री पात्रों—धुसिया, सन्नो, रामरती सुमरिन आदि महिलाओं का शारीरिक शोषण करते हैं। उपन्यास में दलित औरतें चौधरी केआगे पराजित हैं। वे शीघ्र ही हथियार डाल देती है। जब सन्नो चौधरी के कुकृत्य का विरोध करती है और बचने का प्रयास करती है तो रामरती सन्नो को उसकी ताकत का एहसास इस प्रकार कराती है—"सन्नो! तुम किस–किस की इज्जत बचाओगी? तुम अपनी इज्जत की चिन्ता करो। चौधरी ने धुसिया को तेरे या मेरे कहने से छोड़ भी दिया तो उसकी वासना का शिकार तुझे या मुझे बनना पड़ता। चौधरी को औरत चाहिए। हम गरीबों की तो कहीं भी सुनवाई नहीं है। वह चौधरी है, चौधरी। किसकी मजाल है कि गाँव भर में उसके सामने मुँह खोल सके। हमें तो चौधरी की दया पर जिन्दा रहना है।"[9]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यह समाज का कड़वा सत्य है। कितनी ही दलित स्त्रियाँ इस तरह दुष्टों की हवस का शिकार होकर अपनी जान से हाथ धो बैठती हैं। कानून उनके लिए बहरा और अन्धा है। धुसिया की हत्या के बाद चौधरी देवीलाल रामरती के साथ अनैतिक सम्बन्ध बनाता है। रामरती का सात वर्षीय बेटा मुन्ना उन्हें आपत्तिजनक स्थिति में देख लेता है। भय से चौधरी मुन्ना की हत्या करके उसे कुएँ में डाल देता है। पुलिस देवी पाल से रिश्वत लेकर मामले को दबा देते हैं। चौधरी अपने काले कारनामों के सबूत मिटाने के लिए उनकी हत्याएँ कर डालता है। एक स्थान पर वह कहता है, "सुनो रंडियों, तुममें से जिसने भी मुँह खोला उसका भी यही हश्र होगा और उसके परिवार की भी खैर नहीं है।"[10] दैहिक शोषण की शिकार महिलाए व उनके परिजन पुलिस कार्यवाही की माँग करते हैं तो थानेदार दहाड़ता हुआ कहता है, "साले मादरचोद, हराम की औलाद तुम लोग इज्जतदार और शरीफ लोगों के खिलाफ झूठे मामले बनाते रहते हो, हरिजन एक्ट का दुरुपयोग करते हो। अरे नालायक के बीज तेरी इज्जत क्या है, जो बिगड़ जायेगी।"[11]

उपन्यास में आगे कथा का नेतृत्व मंगल पहलवान करता है। वह नायक की तरह चौधरी और भगत से बदला लेता है। वह चौधरी से नाक रगड़वाता है और थूँकी चटवाता है। सुनहरी के पैरों में गिराकर उसे बहन कहकर माफी मँगवाता है। भगत के भी हाथ-पैर तोड़ देता है। वह कहता है—"आ-जा भगत, आज तेरी भी भगताई निकाल दूँ।"[12] देवी पाल और भगत दलित बस्ती में आग लगाने जाते हैं और दलितों को मारते पीटते हैं। मंगल अपने चेलों के साथ उनका सामना कर भगाता है। पुलिस मंगल से कहती है—"पहलवान तुम्हें जिस पर शक हो, रिपोर्ट करवाओ। कानून अपना काम करेगा।"[13] देवी पाल और भगत की गिरफ्तारी होती है। इसी दौरान धुसिया का पति मनसुख भगत पर गोली चलाकर मार देता है। मनसुख को भी पुलिस ले जाती है। मंगल शिवदास और मनसुख के लिए केस लड़ता है। इस प्रकार मंगल (दलित) सवर्णों से संघर्ष करके दलितों को विजयी बनाता है। दलितों के लिए यह प्रेरणा का संदेश है।

4.5 मुक्तिपर्व : मोहनदास नैमिशराय

'मुक्तिपर्व' मोहनदास नैमिशराय जी का चर्चित उपन्यास है। देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति को लेखक ने देश की गुलामी का मुक्तिपर्व कहने के साथ इसे दलितों का मुक्तिपर्व

बताया है। देश को आजादी मिलने के साथ दलित वर्ग में यह विश्वास जागता है कि वे भी अब विषमतावादी सामाजिक और आर्थिक शोषण से मुक्त हो जायेंगे। कोई उनसे बेगार नहीं करायेगा, कोई उन्हें बन्धुआ मजदूर बनाकर नहीं रख सकेगा, कोई उन पर अत्याचार नहीं करेगा। लेकिन क्या दलितों का यह सपना पूरा हो सका? देश की आजादी अंग्रेजों के शासन से देश की मुक्ति थी, दलित वर्ग की मुक्ति नहीं।

लेखक ने उपन्यास की भूमिका में यह सवाल उठाया है—"मुक्तिपर्व किसे कहें? जब देश आजाद हुआ उसे या जब किसी या कुछ जातियों को आजादी मिली उसे।"[14]

देश की आजादी की लड़ाई के अन्तिम चरण के कालखण्ड में राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के विवरण के साथ लेखक ने उत्तर भारत के कस्बाई शहर के शोषित व पीड़ित दलितों के जीवन की कथा बताई है। "देश का बँटवारा कुछ बरस पहले ही हुआ था। बँटवारे की पीड़ा धीरे-धीरे कम हो रही थी, पर हर एक के मन में जैसे टीस अभी शेष थी। आजादी की लड़ाई का यह अन्तिम चरण था। पूरे देश में मार-काट खून-खराबे का सबब था। हर शहर जैसे छावनी बन गया था।"[15]

दलित बस्ती का विवरण देते हुए बताया है कि "बस्ती में अधिकांश घरों में जूते-चप्पलों का व्यवसाय होता है। शेष मजदूरी करते थे, नवाबों की हवेलियों पर या जमींदारों के खेतों में।"[16] यहीं पर चमार बस्ती का बंसी नवाब अलीवर्दी खाँ की हवेली में काम कर रहा था। बंसी की माँ छमिया और पत्नी सुन्दरी है। कुछ दिन से ही सुन्दरी को प्रसव पीड़ा हो रही थी। आजादी की सुबह निकलते ही सुन्दरी को बेटा पैदा होता है। बंसी ने नवाब अली की हेवली पर सुना था कि आजादी मिलने वाली है। आजादी मिलने से पहले आजादी का संघर्ष जारी था,मगर नवाब और जमींदार, गरीबों और दलितों का शोषण कर रहे थे। नौकर चाकरों पर तरह-तरह के जुल्म ढहाये जा रहे थे। एक समय थूकदान न मिलने पर नवाब बंसी पर गरजते हुए कहता है—"ला हथेली कर इधर। (बंसी ... मरता क्या नहीं करता) नवाब साहब ने उस पर अन्दर का बलगम थूक दिया। ढेर सारी खकार बंसी के हथेली पर उगल दी थी।"[17] नवाब साहब का यह कृत्य घोर अमानवीय और घृणीय है, जो मानवीय संवेदना को झकझोर देता है। इससे जाहिर होता है कि हिन्दू वर्णवाद की जड़े इतनी गहरी है जिसका प्रभाव दूर तक होता है। यहाँ पर नवाब साहब का

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यह कृत्य और इधर आजादी का बिगुल उसकी संवेदना को झकझोर देता है। उसमें विद्रोह जन्म लेता है। वह कहता है—"जनाबे अली, हम न गुलाम थे और न गुलाम हैं और न गुलाम रहेंगे।"[18] यह कहकर बंसी अलीवर्दी खाँ की हवेली से नौकरी छोड़ देता है। उसके बाद उसे आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है। जब जीवन ही मरण जैसा हो तो विद्रोह करना ही बेहतर है। बंसी ने ऐसा ही विद्रोह किया। उसमें मुक्ति की चेतना जागती है।

आजादी के दिन बेटे का जन्म होने पर इसे भी मुक्तिपर्व कहा गया है क्योंकि वह बच्चा गुलाम देश में पैदा नहीं हुआ था। आजादी का दिन उसके लिए मुक्तिपर्व था। देश की आजादी के साथ दलितों में भी हिम्मत आयी थी। वे भी अब बोलने लगे थे, अपनी स्थिति और सवर्णों के अन्याय के बारे में सोचने लगे थे। स्थिति कुछ इस तरह बदलने लगी थी—"धर्म की बिसात उलट गई थी इसलिए कि आज एक पण्डित बाजी हार गया था और दलित जीत गया था।"[19] इसी वजह से बंसी अपने बेटे का नाम किसी पण्डित से पूछकर नहीं रखते बल्कि स्वयं ही उसका नाम सुनीत रखते हैं। बंसी के बेटे के जन्म की बात मालूम होने पर नवाब अलीवर्दी स्वयं बंसी के घर मिलने आता है। साथ ही कहता है—"... और तुम तो हमारे ही आदमी हो। अब हमारे घर चाकरी नहीं करते तो क्या हुआ, इसे तो हमारी हवेली पर काम करने भेजना।"[20]

बंसी जवाब देता है—"नवाब साहब, न अब मैं किसी की गुलामी करूँगा और न मेरा बच्चा।"[21] बंसी की स्वाभिमान की भावना अब जागृत हो चुकी थी। आजादी के बाद बंसी यह समझने लगा था कि अब न कोई गुलाम है और न कोई मालिक। सब बराबर हैं लेकिन व्यावहारिक जीवन में यह दिखाई नहीं देता। एक दिन स्कूल से लोटे सुनीत को उदास देखकर बंसी कहता है—"बेटे, कितनी भी परेशानी आये, कभी आँसू मत बहाना। यह दुनिया किसी गरीब के आँसू देखकर रोती नहीं बल्कि हँसती है।"[22]

हाईस्कूल में छठी कक्षा में पहले दिन ही सुनीत को जाति के अपमान के बाद एक खुशी भी मिली थी कि सुमित्रा ने उसके पास आकर सहानुभूति के साथ बातें की ओर उसकी मित्र बनी। सुमित्रा आर्य समाजी शर्मा जी की बेटी जात-पाँत को न मानते हुए सुनीत से मित्रता करती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

हिन्दी दलित उपन्यासों में दलित शुभचिन्तक आर्य सामाजिकों का जिक्र मिलता है। बंसी को रामलाल पर पूरा विश्वास है। वह उसे अपना शुभचिन्तक मानकर अपने की छटपटाहट उसे बताता है। रामलाल बंसी को समझाता है—"बंसी भैया आजादी का सूरज उग चुका है। अब अधिक दिनों तक नहीं चलेगा यह सब। ... मैं तो कहता हूँ अब तुम्हें ही खुद आगे आना होगा और अपनी बात स्वयं अपने मुँह से कहनी होगी। आखिर भला तक हम कहते रहेंगे और तुम सुनते रहोगे।"[23]

उपन्यास में करतारा भंगी के बेटे उछालसिंह और बेटी भूरी का भी उल्लेख है। कक्षा पाँचवीं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण दलित लड़की बाला का भी उल्लेख है। करतारा उछालसिंह का एडमीशन करवाने स्कूल जाता है। पाण्डे मास्टर स्कूल में उसे दाखिला नहीं देता। सुनीत उसे हेड मास्टर के पास ले जाकर उछाल सिंह का एडमीशन करवा देता है। लेकिन सवर्ण शिक्षक पाण्डे विरोध करता हुआ कहता है—"हैडमास्टर साहब, यह स्कूल कोई भंगी चमारों का स्कूल नहीं है जो चाहे गिरे पड़े किसी को भी दाखिला दे दो।"[24] यह सवर्णों की मानसिकता थी। उन्होंने कभी नहीं चाहा कि भंगी चमारों को भी शिक्षा पाने का अधिकार मिले। मगर हैडमास्टर आर्य समाज से प्रभावित थे। वे जानते थे कि, "हिन्दू धर्म को बचाना है तो उदारता से ही काम लेना पड़ेगा। सनातनियों की कट्टरता हिन्दू धर्म को कहीं का नहीं छोड़ेगी।"[25]

सुनीत की स्कूल में आचार्य के अलावा सब अध्यापक द्रोणाचार्य के ही वंशज थे, जिनकी एकलव्य को शिष्य बनाने में रुचि नहीं थी, बल्कि उसका अंगूठा कटवाने में दिलचस्पी थी। इस तरह इस उपन्यास में आजादी के पूर्व और आजादी के बाद दलितों की स्थितियों में आए परिवर्तनों को चित्रित किया गया है। देश आजाद हुआ किन्तु आजादी मिलने के बाद भी दलितों को न्याय नहीं मिल पाता है। ऐसी स्थिति में दलित सोचने को मजबूर होता है। आखिर उसे कब मुक्ति मिलेगी, उसका 'मुक्तिपर्व' कब आएगा? इसी के आस-पास 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का कथानक घूमता है। 'मुक्तिपर्व' की कथा संघर्षशील दलित परिवार की ऐसी कहानी है जिसमें उपन्यास का नायक सुनीत विषम परिस्थितियों के बीच भी संघर्ष करके पढ़ता है। वे शिक्षित होकर बस्ती के लोगों को शिक्षित करने का प्रयास भी करता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

4.6 आज बाजार बन्द है : मोहनदास नैमिशराय

मोहनदास नैमिशराय जी का यह उपन्यास वेश्याओं के जीवन पर आधारित है। नारी उत्थान के आन्दोलन के साथ वेश्या समस्या का समाधान भी अम्बेबडकरवादी समाज परिवर्तन के आन्दोलन का एक भाग रहा है। नारी जागृति के लिए अनेक संस्थाएँ काम कर रही हैं। फिर भी वेश्या समस्या का निदान और पुनर्वसन पूरी तरह नहीं हो सका है। अनेक प्राचीन साहित्यकारों ने, पुरातन साहित्य के आधार पर, गणिका और नगरवधू के रूप में, पुरुषों के सुख और सन्तुष्टि के लिए उनका होना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक बताया है। आधुनिक युग में सामाजिक-राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन की परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन हुआ है। फिर भी वेश्याओं की समस्या और उनके जीवन की वीभत्सता की स्थिति वैसी ही है। लेखक ने यह उपन्यास राष्ट्र की उन बेटियों को समर्पित किया है जिनके अन्दर मुक्ति की चाह है। उपन्यास की वेश्याएँ गरीबी और अभाव का जीवन जीने वाली शोषित पीड़ित है। परिस्थितियों ने किसी को वाचाल बना दिया है तो किसी को बेशरम। फिर भी उपन्यास में शबनम बाई जैसी वेश्या भी है जो वेश्या जीवन का सन्ताप भोगते हुए जीवन के प्रौढ़ता के चरण पर साहसपूर्ण कदम उठाती है। धोखा देकर नई लाई गई लड़की को वेश्या न बनाकर वह उसे आजाद कर देती है। इसी प्रकार पार्वती को नवयुवक साथी मिलने पर उन्हें विवाह कर लेने के लिए प्रोत्साहित करती है।

उपन्यास का आरम्भ 'थाने पर पथराव किया रंडियों ने'—इस घटना के साथ होता है। अखबारों के मुख पृष्ठ पर यह खबर सुनकर पूरे शहर में हलचल मच गई है, "शहर के सभी थानों में यह खबर चर्चा का विषय थी। पुलिस कर्मचारियों से लेकर अधिकारियों के बीच रंडियों के कोठों से सटे 'इबादतपुर' थाने में तैनात कर्मचारियों के बीच लेन-देन पर अच्छी-खासी चर्चा थी। कौन कितनी रिश्वत देकर ऐसे कमाऊ थानों में अपनी पोस्टिंग करवाता है, इसबात परविशेष तूल दिया जा रहा था।"[26] वेश्याओं का आक्रोश थानेदार और सिपाहियों पर था। इनके जुल्म और अन्याय से बिफरकर ही वेश्याओं ने थाने को घेरकर पथराव किया था। यह कल की बात थी, आज सही जानकारी पाने के लिए पत्रकारों ने थानेदार और सिपाहियों को घेरा। उन्होंने सामूहिक रूप से पूछा—"हम पूछते हैं कि कल रात थाने का वेश्याओं ने घेराव क्यों किया?"[27]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

पत्रकारों को पुलिस द्वारा सही जवाब नहीं देने पर अन्त में निराश होकर पत्रकार समूह के लोग वेश्याओं के कोठे पर उनसे बात करके जानकारी हासिल करते हैं। 'प्रजातंत्र' की प्रेस रिपोर्टर रश्मि भी पत्रकार समूह के साथ वेश्या कोठे पर जाती है। उनको उम्मीद थी कि वे स्टोरी को फोटो सहित छाप सकेंगे। उपन्यास में वेश्याओं के कोठों के प्रति भावना इस तरह व्यक्त हुई है—"इस बाजार में नीचे पानी बिकता था, ऊपर आग। आग घौसलों में सुरक्षित थी, घौंसले जलते न थे। वहाँ कुछ और ही जलता पिघलता था। लोग आते और इस उफनती नदी में डुबकी लगाकर चले जाते। यहाँ गंगा भी थी, यमुना भी, इबादतपुर की इस नदी में भी अलग-अलग रूप/रंग/रस स्वभाव की नदियाँ थीं, जो नजदीक आने वालों को लुभातीं तथा खूब उत्तेजित करती थीं। ... आग और पानी के रिश्ते सभी मौसम में जारी रहते हैं। आग पानी के पास कभी नहीं जाती है। यहाँ भी वही दस्तूर है। पानी खुद-ब-खुद आग बुझाने पहुँच जाता है।"[28]

एक वेश्या रश्मि से कहती है—"इन मर्दों ने ही तो हमारे जिस्मों को भट्टी बना दिया है। हम बाहर-भीतर से खूब जलती हैं। कहते-कहते वह भावुक-सी होने लगी थी।"[29] वेश्याएँ अश्लीलता के साथ रश्मि और अन्य पत्रकारों से बातें करती हैं। यह पूछने पर कि—"कैसा लगता है नया शहर?" वे कहती हैं—"नई ससुराल की तरह। हर रात में मरद आते हैं, तपाते हैं, सतातें हैं और तड़पते हुए हमें छोड़ जाते हैं साले। हर रात हमारे लिए नई होती है।"[30]

शबनम बाई के कोठे पर जाने से पत्रकारों को जानकारी मिलती है कि शबनम मुसलमान नहीं हिन्दू थी, इतिहास विषय में एम.ए. थी। एक नवाबजादे ने प्रेम करके बेवफाई की और उसे वेश्या बना दिया था।

पार्वती नाम की वेश्या हिन्दू थी। उसके प्रेमी ने उसे देवदासी बनाया फिर उसे कोठे में भेज दिया।

इस उपन्यास में अनेक वेश्याओं का चित्रण किया गया है। वेश्याएँ दु:खी हैं, अभावग्रस्त हैं, रोटी के लिए देह व्यापार करती हैं। मगर बेईमानी नहीं करती। एक समय सुबह कमरा साफ करते समय पलंग के नीचे पार्वती को दस हजार रुपये मिलते है, जिसे शबनम और पार्वती ग्राहक की अमानत मानकर लौटा देती हैं। हल्ले द्वारा लाई गई लड़की

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

को शबनम कैद में रखकर वेश्या नहीं बनाती बल्कि उसे वहाँ से निकल जाने का अवसर देती है।

इन वेश्याओं की समस्याओं का समाधान राष्ट्रीय स्तर पर किया जाये, इस संदेश के साथ लेखक ने वेश्या मुक्ति की प्रेरणा का सन्देश दिया है।

उपन्यास के माध्यम से लेखक ने सिर्फ वेश्यावृत्ति की आड़ में छिपे सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों का पर्दाफाश ही नहीं किया है, इन वेश्याओं को एक इन्सान बनाने की पहल भी की है। अपने अन्दर के छिपे अस्तित्व और अस्मिता के संघर्ष के लिए उन्हें जागरूक भी किया। पुरुष सत्तात्मक समाज के खिलाफ अपने होने का एहसास भी कराया कि हम वेश्याओं को भी औरों की तरह डर, खुशी और कभी-कभी गम भी होता है, हम भी इन्सानों की तरह सम्मानपूर्वक प्रेम और खुशी की आकांक्षा रखते हैं।

4.7 मिस रमिया : कावेरी

यह कावेरी जी द्वारा रचित पहला उपन्यास है। 2007 में प्रकाशित यह उपन्यास हिन्दी में दलित लेखिका का अभी तक आया पहला उपन्यास है। इसके केन्द्र में नारी है। इस उपन्यास की नायिका भी दलित लड़की मिस रमिया है जो अपने समाज के बच्चों की स्थिति को लेकर चिन्तित है। इसलिए उनको एकत्र करके पढ़ाती है। बाद में यह प्रयास स्कूल में तब्दील होता है। इस प्रकार यह एक जिम्मेदार प्रतिबद्ध और संघर्षशील स्त्री की गाथा है। शिक्षा की मशाल लेकर रमिया निकलती है जो उसे बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों के नजदीक खड़ा कर देती है। यही इसकी सार्थकता है।

'मिस रमिया' दो नारियों की दोस्ती की कहानी है। यह दलित-गैर दलित भेदभावों को मिलकर एक नये समाज की स्थापना की दास्तान है। रमिया दलित टोली की है और श्यामली कायस्थ टोली की। इन पात्रों के जरिए कावेरी ने नारी जीवन, नारी मन और उसकी शक्ति पर प्रकाश डाला है, साथ-साथ अपनी समस्याओं से जूझने का हौसला भी बढ़ाया है।

दलितों में भी दलित स्त्री पर अनेक प्रकार से शोषण होता है क्योंकि वह समाज व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर खड़ी है। "दलित महिलाएँ अपने ऊपर कई तरह से हिंसा व उत्पीड़न सहती हैं। पहला, उस पर हिंसा का कारण महिला होना, दूसरा उसका

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

दलित होना, तीसरा गरीब होना तथा चौथा घर में भी लिंग-भेद के कारण उस पर हिंसा होना है।"[31] रमिया को भी स्कूल से लेकर नौकरी तक में सर्वत्र शोषण और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। स्कूल में एक बार प्यास लगने पर स्कूल के बागान में बने कुएँ से पानी पीने के लिए ऑफिस के सामने "रमिया दौड़कर बाल्टी उठा लाई। उठाते ही उसे एक गर्जन भरी डाँट सुनायी पड़ी, 'अरे तू कौन है? बाल्टी छू दी।' बगुली वाला डंडा को गर्दन में फंसाकर टीकाधारी मास्टर ने उसे अपनी ओर खींचा और तड़ातड़ दो झापड़ जड़ दिये।"[32] दलित स्त्रियों के साथ इस प्रकार की हिंसा आम बात है। इस पर हमें विचार करना चाहिए।

मैट्रिक की पढ़ाई के बाद रमिया अपने ही गाँव के बच्चों को एकत्र कर निशुल्क पढ़ाने लगती है। यहाँ भी सवर्ण माधो चाचा की नजर रमिया के इस काम पर पड़ जाती है और वे रमिया द्वारा मेहनत कर एकत्र किए गए सौ बच्चों की इस पाठशाला से फायदा उठाना चाहते हैं जिसके लिए चार साल का झूठा रिकार्ड बनाकर सरकारी मान्यता प्राप्त करने में कामयाब हो जाते हैं तथा इस स्कूल में सवर्ण जाति की मधु को प्रधानाध्यापिका नियुक्त किया जाता है और रमिया एक मामूली शिक्षिका बनकर रह जाती है। जबकि मधु दलित बच्चों के साथ छुआछूत, भेद-भाव, मार-पीट और गाली गजौज भी करती है। रमिया जब इसका विरोध करती है तो ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रस्त और उच्च जाति के दंभ से आपूरित मधु कहती है—"रमी, तुम हमको आँख दिखायेगी। आखिर मैं कितना भी हूँ तुमसे जाति की ऊँची हूँ। इस नीच गधे को मारूँ नहीं तो और क्या? सब कुत्ते गंगा नहायेंगे तो बर्तन कौन दुनदुनायेगा। ये लोग पढ़-लिखकर क्या करेंगे।"[33]

शिक्षिका का प्रशिक्षण लेने के लिए श्यामली और रमिया गया जाती हैं। वे हॉस्टल के एक कमरे में साथ रहकर पढ़ती और खाना खाती हैं। अन्य सवर्ण छात्राएँ एवं प्राध्यापिका श्यामली से कहती है कि वह एक अछूत लड़की के साथ क्यों रहती है। मगर श्यामली अपनी हिम्मत से उनका विरोध करते हुए रमिया का साथ देती है। ट्रेनिंग के बाद रमिया राँची के कम्पनी स्कूल में शिक्षिका बन जाती है और श्यामली गाँव के स्कूल में ही पढ़ाती है।

उपन्यास में चमार टोले का बैजू मुख्य पात्र हैं जो रमिया और श्यामली के साथ पढ़ता है, खेलता है। श्यामली बैजू के प्रति आकर्षित है। वह मन-ही-मन बैजू की दुल्हन

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

बनने का सपना देखती है। मगर उसका विवाह कायस्थ लड़के से कर दिया जाता है। उपन्यास में सहृदयता, सद्भावना और समानता की बातें श्यामली ही करती है। लायब्रेरी से पुस्तक लेते समय श्यामली बैजू से कहती है—"अरे पढ़ना है तो डॉ. अम्बेडकर की जीवनी पढ़ो। मैंने एक बार पढ़ी, वे कितना संघर्ष से आगे बढ़े थे।"[34]

बाद में श्यामली बैजू से कहती है—"दूसरे देश चाँद-सितारों पर घर बसाने जा रहे हैं, यहाँ तो भारतीय अपनी जातीयता की सड़ी दुर्गन्ध से सड़ रहे हैं। कौन उतारेगा इन्हें ढोंगीपन से।"[35]

राँची के कम्पनी स्कूल में गणतन्त्र दिवस के अवसर पर ए.के. सिंह रमिया के प्रश्न का जवाब न देकर उसे 'चुप, चुप एकदम चुप' कहता है। रमिया इसे अपना अपमान समझकर उससे प्रतिवाद करती है। तब सिंह तैश दिखाते हुए कहता है—"हरामजादी, अपने आप को क्या समझती है?"[36] रमिया इस अपमान का बदला लेती है और उससे माफी मँगवाती है। रमिया को इंस्पेक्टर पासवान मदद करता है। इंस्पेक्टर पासवान शादीशुदा और बाल-बच्चों वाला है। रमिया उससे प्रेम करती है तथा पासवान रमिया को सहयोग देने के साथ प्रेम भी करने लगता है। श्यामली रमिया को फोन पर समझाती है कि शादीशुदा पुरुष से प्रेम करके लफड़े में मत पड़ों। श्यामली कहती है—"अरे पागल, ऐसे रहना और शादी करना दोनों में काफी अन्तर है।"[37]

मिस रमिया इन्स्पेक्टर पासवान के प्रेम और सहयोग के साथ केवल अपने गाँव नहीं बल्कि पूरे देश की सेवा करना चाहती है। "डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मानवतावाद का नारा दिया था। उस नारे को बुलन्द रखते हुए वह पूरे देश की सेवा करेगी।"[38] रमिया यदि स्त्री मुक्ति के लिए आजीवन अविवाहित रहकर और अम्बेडकरवादी विचारधारा का अनुसरण कर अपने समाज में व्याप्त 'अज्ञानता' को दूर करना चाहती है तो श्यामली भेद-भाव से परे समाज निर्माण में सदैव उनका साथ देना चाहती है। इस प्रकार लेखिका ने एक ऐसे 'काम्य संसार' की सृष्टि की है जहाँ अलग-अलग वर्ग की स्त्रियाँ मिलकर 'स्त्री-मुक्ति' का प्रयास कर रही हैं।

कुल मिलाकर यह उपन्यास दलित मिशन को ध्यान में रखकर लिखा गया है। कथा दलित समाज के लिए प्रेरणीय है। तत्कालीन साहित्यिक राजनीति और गुटबाजी से

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

बिल्कुल मुक्त है। दलित स्त्रियों का एक बड़ा हिस्सा आज भी समाज की मुख्यधारा से पूर्णतया कटा हुआ होने के साथ-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति में बदहाली की स्थिति में जी रहा है। आत्मसम्मान से जीना इस वर्ग के लिए दिवास्वप्न जैसा है। संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के लक्ष्य से यह कोसों दूर है।

4.8 उधर के लोग : अजय नावरिया

उधर के लोग अजय नावरिया का उपन्यास है। इस उपन्यास का शीर्षक राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' की तर्ज पर रखा गया है। उपन्यास की शुरुआत आलीशान और वातानुकूलित रेस्तरां में पार्टी से होती है। शराब और शबाब के बीच डूबकर जातियों के बजाय दलित-उपजातियों का विमर्श करना ही इस उपन्यास का केन्द्रीय विषय रहा है।

उपन्यास का पहला डायलॉग अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है जो लेखक की दार्शनिकता और मानसिकता का परिचय देता है। उपन्यास का नायक प्रोफेसर शेक्सवर्कर दोस्त आयशा से कहता है—"जिन्दगी को, तुम एक छोटे बच्चे की आँख से, सिर्फ अचम्भे की तरह देखो।"[39]

राना डोम है, प्रोफेसर खटीक है, दोनों ही दलित हैं। इस उपन्यास के दलित पात्र उच्च पदों पर आसीन धनाढ्य और सुविधाभोगी पात्र हैं। वे दलितों पर होने वाले अन्याय और शोषण की अपेक्षा दलितों के बीच जाति भेद पर अधिक चर्चा करते हैं। जैसे दलित उत्पीड़न की चर्चा इसी बिन्दु पर केन्द्रित हो कि सवर्णों की तरह चमार भी अन्य दलित जातियों के साथ जातिभेद और अन्याय करते हैं। उपन्यास का पात्र प्रोफेसर अपने दोस्तों के साथ शराब पीते समय ही इस विषय पर चर्चा करता है। जैसे शराब के साथ इन बातों का भी अपना मजा हो। वेदप्रकाश ब्राह्मण है, सुशील चूहड़ा है और जयन्त चमार है। फिरोज और असलम मुस्लिम हैं। वे इस चर्चा में भाग नहीं लेते हैं। प्रोफेसर के उकसाने पर सुशील बार-बार चमार विरोधी बातें कहता है जिसका जवाब जयन्त देता है। शराब का नशा बढ़ने पर सभी अपनी भड़ास निकालते हैं। उनके बीच वाद-विवाद को भड़काने का काम प्रोफेसर करता रहता है। प्रोफेसर चाहे जितना शान्त रहे या सज्जनतावश उन्हें लड़ने से रोके, फिर भी उसकी दुष्टता साफ नजर आती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

राना की दलित जाति की अवहेलना करते हुए अपमानजनक बातें कही गई हैं। आयशा कहती है—

"पर वह राना है न, वह तो राक्षस है साला।"

"ये डोम लोग ऐसे ही होते हैं?"

"और क्या ... ये एस.सी. लोग डोम ही होते हैं।"

"देखकर तो मक्खी नहीं निगली जा सकती न मास्टरजी।"[40]

आयशा रामचौधरी बंगाली ब्राह्मण के जातीय गर्व को देखकर प्रोफेसर गुस्से में कहना चाहता है—"साली, हरामजादी, दो पैसे की रंडी। देख, तेरे सामने दूसरा डोम खड़ा है जिसके लिए तू मरी जा रही है।"[41] मगर आयशा के सामने खुद शरम आने के कारण प्रोफेसर यह बात नहीं कह पाता है क्योंकि वह आयशा से दोस्ती और प्यार करता है। अपमान सुनकर चुप रह जाता है केवल इसलिए कि वह उस सवर्ण वेश्या से प्यार करता है। आयशा प्रोफेसर को बताती है—"औरतें आदमी की तुलना में कम छिनाल होती हैं।"[42] प्रोफेसर का विचार है—"मादाओं के ये विराट बाजार नरसत्ता की विजय की स्मृतियाँ ही हैं। शायद नरों के ये नये बनते बाजार भी, मादाओं के विजय स्मारक हैं, भले ही लघु।"[43]

कालरा की बातें स्त्री गरिमा के खिलाफ हैं, पत्नी के महत्त्व के खिलाफ है, ये बातें आपत्तिजनक हैं। भले ही प्रोफेसर ने इन बातों का विरोध भी किया है मगर फिर भी लेखक की मर्जी से ही ये कथन और विचार उपन्यास में आये हैं।

कालरा कहता है—"बीबी एक स्थायी और एकमुश्त वेश्या से ज्यादा और क्या है?"

"यह फफूँद घर में क्यों रखें? जब चाहो, बाजार में सिक्के उछालो, घर में लक्ष्मी बनकर छम-छम करती आएगी। मनमर्जी का काम लो और तानकर सोओ।"[44]

आज का साहित्य विशेष रूप से स्त्री विमर्श और दलित विमर्श पर केन्द्रित है जहाँ इस उपन्यास में कालरा के स्त्री विरोधी विचार नारी जागृति के विरुद्ध हैं। यहाँ पर पत्नी और वेश्या में कोई अन्तर ही नहीं है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

उपन्यास में लेखक ने दलित वर्ग की प्रगतिशीलता का परिचय दिया है लेकिन यह सम्पूर्ण दलित वर्ग की प्रगतिशीलता नहीं है। दलित वर्ग के कुछ प्रतिशत लोग ही उच्च पदों पर हैं। वे ऐसा शराबी और अय्याश का जीवन नहीं जीते। यह अपवादस्वरूप हो सकता है।

यहाँ पर प्रोफेसर जैसे व्यक्ति का चित्रण नायक के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है तो अन्याय, अत्याचारों से पीड़ित, गरीब, अभावग्रस्त, अनपढ़, मजदूर दलित वर्ग की पीड़ा को कौन समझेगा? कैसे समझेगा?

उपन्यास में उन लोगों का जिक्र हैं जो शिक्षित, सम्पन्न और गरीबी के अभाव से मुक्त हैं, जिनमें आयशा, कालरा, राना और प्रोफेसर जैसे लोग हैं। यहाँ पर लेखक ने उधर के लोगों की बात कही है, इधर के लोगों की नहीं। इधर के लोगों में दलित वर्ग के वे लोग हैं जो षड्यंन्त्र के साथ शिक्षा से वंचित रखे गये हैं, जो भूख और गरीबी से जूझते हुए, दिन-भर पसीना बहाकर भी दो वक्त की रोटी नहीं खा सकते हैं। जो आज भी अपने मानवीय अधिकारों के लिए तरस रहे हैं तथा जिनकी बहन-बेटियाँ, पत्नी और माँ का शोषण किया जा रहा है। क्या इन सब बातों की ओर लेखक का ध्यान बिल्कुल भी नहीं गया। वह तो सेक्स वर्कर आयशा के नग्न सौन्दर्य को देखकर ही अभिभूत है। वह शराब के नशे में अपने दोस्तों से कहता है—"तुमने इसे नंगा नहीं देखा, वरना गश खा जाते।"[45]

सुशील प्रोफेसर से कहता है—"तुम्हारे भीतर ब्राह्मणों के प्रति अतिरिक्त प्रेम है। वन्दना से शादी करना भी तुम्हारी यही कमजोरी थी।"[46]

प्रोफेसर की माँ संगीता की जगह अपनी जाति की ही बहू लाना चाहती है मगर प्रोफेसर के पिता अम्बेडकरवादी विचारधारा के हैं, वे नहीं माने। वे दलितों के बीच अन्तरजातीय विवाह से दलित एकता लाना चाहते हैं। जो भावना और विचारधारा दलित नायक में होनी चाहिए वह उनके पिता में है।

उपन्यास का अन्त प्रोफेसर और पत्नी संगीता में सुलह से होता है। प्रेम का भाव उदित होता है। प्रोफेसर जो बात शुरू में आयशा से कहता है, अन्त में वही बात बेटी माया से पूछता है—"क्या जिन्दगी को हम, तुम्हारी तरह, सिर्फ अचम्भे की तरह ही देख सकते हैं, क्यों माया?"[47]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

बेटी के जन्म के बाद प्रोफेसर की कथा को ठहराव मिलता है। यहाँ प्रोफेसर के व्यक्तिगत जीवन को ही उभारा गया है। उसके सुख-दु:ख, परिवार और परिवेश का ही चित्रण किया गया है। यहाँ नायक के जीवन का कोई उद्देश्य दिखाई नहीं देता।

4.9 थमेगा नहीं विद्रोह : उमराव सिंह जाटव

उमराव सिंह जाटव का पहला उपन्यास 'थमेगा नहीं विद्रोह' में दरियापुर गाँव के पात्रों की कथा बताई गई है। इसमें अलग-अलग पात्रों की अलग-अलग स्वतन्त्र कहानी है। इस उपन्यास के नायक के विषय में, उपन्यासकार ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए स्वयं ही लिखा है, "एक खब्ती खयाल मेरे मन में जाग उठा है कि यह गाँव 'दरियापुर' जिसका नाम है और जिसमें उपर्युक्त वर्णित तथा अन्य बहुतेरे व्यक्ति बसते हैं, नायक, नायिका, खलनायक अपने आप में स्वयं ही हैं। इस गाँव को ही मेरी इस कथा का नायक, खलनायक बनना होगा। इसके अलावा अन्य कोई चारा नहीं दिखता मुझे। अब चाहे तो पाठक या चाहे यह गाँव मुझे खब्ती कहें सो कहें!"[48]

उपन्यास का नायक दरियापुर गाँव का बताया गया है। इसी गाँव में दरियाव नाम का पात्र भी है जो उपन्यास की कुछ कथाओं में नजर आता है लेकिन उसे उपन्यास का नायक या सहायक नायक नहीं कह सकते। दरियाव दरियापुर की जाटव बस्ती का एक बच्चा है, जो किशोरावस्था में अधभरिया रूप में कहीं भागमली को झूला देता है, कहीं भागमली की ससुराल सिंजारा लेकर जाता है। थोड़ा बड़ा होने पर वह रात के अन्धेरे में चावली के पास दरियापुर की दबी ढँकी कहानियाँ सुनने जाता है। अन्त में, दरियापुर से जुड़ी उसकी बचपन की यादों को बताया गया है। इसके साथ दरियाव दरियापुर से हताश-निराश होकर वहाँ से पलायन करने की बात सोचता है। दरियाव ने उपन्यास में कहीं-कहीं सूत्रधार की भूमिका निभाई है। यहाँ लेखक ने दरियापुर को धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक परिचय देने के लिए दरियापुर के अलग-अलग पात्रों की स्वतन्त्र कथा बताई है।

काल खण्ड की दृष्टि से उपन्यास की कथा भारत की आजादी से पहले की है जब अंग्रेजों का राज्य था तबसे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के 10-15 वर्षों का काल है। मुण्डा के कथा प्रसंग में देवीचरण को फाँसी देने का विवरण और चावली प्रसंग इसके प्रमाण हैं।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

उपन्यास में जाटवों के कुएँ की विद्रोह कथा महत्त्वपूर्ण है। कथा-प्रसंग 'जाटवों का कुआँ' में दलितों पर होने वाले अन्याय, अत्याचारों का चित्रण करते हुए उनमें जागी विद्रोह की भावना वर्णित है। उन्होंने सवर्ण जाटों से लड़कर और कानून की ताकत से कुएँ पर अपना अधिकार सिद्ध करने में सफलता पाई। उपन्यास में यह दलितों के विद्रोह की शुरुआत थी।

उपन्यास का अन्तिम प्रसंग—'लौटना दरियापुर तक और फिर से पलायन' में दरियाव लगभग पन्द्रह वर्ष के बाद जब शहर से अपने गाँव आता है तब उसे निराशा मिलती है। न तो वह पहले का दरियापुर देख पाता है, न ही लोग उसे पहचान पाते हैं। अपने घर-परिवार में पहुँचकर स्वयं को बेगाना-सा महसूस करता है। वह दरियाव जाटवों के उस कुएँ को भी नहीं खोज पाता है जिसके लिए जाटवों ने विद्रोह किया था। जिस संघर्ष और विद्रोह के आधार पर उपन्यास को शीर्षक दिया गया—वह प्रमुख मुद्दा था। विषय वस्तु ही गुम हो जाती है। यहाँ दरियाव निराश है और दरियापुर गाँव असमर्थ। यहाँ हृदय थम-सा जाता है। दरियाव और परिवार की एक अलग स्वतन्त्र कथा सामने आती है। उदास दरियाव सोचता है—"ऐसे इस दरियापुर से और मिलने की उसकी इच्छा समाप्त हो गई।"[49]

दरियाव कहीं 'मैं' के रूप में अन्य कथाओं और पात्रों की जानकारी देता है, कहीं उपन्यासकार के रूप में। कहीं दरियाव के नाम में लगता है कि उपन्यासकार ही दरियाव है। यह पहेली उलझी हुई लगती है। उपन्यास की अपनी मूल कथा भी नजर नहीं आती। इस दृष्टि से 'थमेगा नहीं विद्रोह' उपन्यास की उपेक्षा स्वतन्त्र कथाओं का संग्रह प्रतीत होता है। ये सभी कथाएँ दरियापुर के दलितों के दीन-हीन और शोषित-पीड़ित अभावग्रस्त जीवन को अभिव्यक्त करती है।

4.10 रेत : भगवानदास मोरवाल

हिन्दी कथा में अपनी अलग और देशज छवि बनाए और बचाए रखने वाले चर्चित लेखक भगवान् दास मोरवाल के इस नये उपन्यास 'रेत' की रचना एक विमुक्त जनजाति कंजर (यानी कानन चर अर्थात् जंगल में घूमने वाला), जो अपने लोक-विश्वासों के लोकाचारों की धुरी पर अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

करती है, को केन्द्र में रखकर की गई है। यह उपन्यास स्त्री की छवि को पाठक के सामने बदलता है। यह ऐसे समुदाय पर केन्द्रित उपन्यास है जिसमें महिलायें वेश्यावृत्ति करती हैं। इसलिए इस उपन्यास में महिलायें ही प्रमुख हैं। राजस्थान के गाजूकी कस्बे में बसे हुए कंजर समुदाय को आधार बनाकर लिखे गये इस उपन्यास के कथानक को बताने से पूर्व उपन्यास में आये दो शब्द 'भाभी' और 'बुआ' को समझना आवश्यक है।

भाभी—'रेत' उपन्यास में जिस पद के लिए भाभी शब्द का प्रयोग किया गया है वह भी ब्याहता है। भाभी वेश्यावृत्ति करने वाले समुदाय की वह स्त्री है जो वेश्या नहीं है। यह विवाहिता स्त्री वेश्यावृत्ति नहीं करती।

बुआ—'रेत' उपन्यास में बुआ शब्द वेश्या के लिए रूढ़ हो गया है। बुआ बनने का अर्थ वहाँ वेश्यावृत्ति अपनाना है। इस उपन्यास में औरतें वेश्यावृत्ति को अपनाती हैं, वे बुआ कहलाती हैं और जो वेश्यावृत्ति को नहीं अपनातीं, शादी करती हैं वे भाभी बन जाती हैं।

इस उपन्यास की कथावस्तु कमला सदन के आस-पास बुनी हुई है, जहाँ माया, रुक्मिणी, वन्दना, पूनम, कमला, पिंकी, सुशीला आदि ये सभी वेश्याएँ हैं। ये कमला सदन में रहती हैं।

बैदजी इस सदन में आने वाला कज्जा यानी ग्राहक है पर वह इस सदन का सदस्य बन चुका है। सन्तो इस घर की भाभी है। कमला सदन में रहने वाली सभी स्त्रियाँ सन्तो से दिन-रात काम करवाती हैं। घर में काम करती सन्तो जब अपनी ननदों को देह व्यापार में लिप्त और ऐश-ओ-आराम की जिन्दगी जीते देखती है तो उसमें भी देह बनने की ललक जागती है। कमला बुआ के भाई की मृत्यु पर पूरा परिवार सन्तो को घर की रखवाली के लिए घर पर छोड़ हरिद्वार नहाने चला जाता है तो वेश्याओं की अनुपस्थिति में आया ग्राहक सन्तो के मन में देह बनकर अपनी जिन्दगी को अपने अनुसार जीने का बीज डाल देता है। सन्तो ग्राहक के साथ भाग जाती है।

उपन्यास के माध्यम से लेखक ने आपराधिक समुदायों में स्त्री की दशा का चित्रण किया है। सामुदायिक वेश्यावृत्ति में औरत वेश्या बनती है। यदि वह वेश्या नहीं बनती तो उसे भाभी बना दिया जाता है। भाभी घर में आने वाली वधू हैं। सन्तो और अनीता का यहाँ

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

पर यही पद है। भाभी मानो घर में रखी गई कोई वस्तु हो जिसे जब चाहे उपयोग में लिया जा सकता है।

'रेत' उपन्यास में सन्तो की शादी के बहाने यह दिखाया गया है कि लड़के वाले लड़की वालों को पैसे देते हैं। सामुदायिक वेश्यावृत्ति वाले समुदायों में औरत या तो वेश्या बनती है या ब्याहता। ऐसे में जो लड़की शादी कर रही है उसको वस्तु बनाया जाता है जिसका कारण है कि यदि वह वेश्यावृत्ति करती तो अपने माँ-बाप का पेट भरती या वह शादी कर रही है इसलिए वेश्या बनकर पैसा नहीं कमा सकती इसी कारण उसके (लड़की) परिवार को लड़के वाले जीवनयापन के लिए लाखों की रकम देते हैं।

सामुदायिक वेश्यावृत्ति में अधिकतर लड़कियाँ वेश्यावृत्ति को ही अपनाती हैं क्योंकि भाभी बनकर यानी शादी करके कुछ हासिल नहीं होता, दिन-भर चाकरी और बच्चे पैदा करने के अलावा। कमला बुआ अपनी बहू सन्तो के लिए बैद जी से कहती है—"क्या मिलता है ब्याह करके। जिन्दगी भर खसम और औलाद के साथ-साथ भाभी बनी सास-ननदों की चाकरी ही तो करनी पड़ती है। मरी, बुआ बनी रहती तो उम्र भर मजे करती।"[50]

सामुदायिक वेश्यावृत्ति में लड़कियाँ घर चलाती है। वह दिन-रात अपनी देह नुचवाकर भी घर की वंश बेल नहीं बन पाती। यह पद तो सिर्फ भाभी के लिए ही होता है। कमला बुआ कहती है—"वैसे भी वैदजी, वंश बहुओं की औलाद से चलना है, बेटी-बुआ या धेवता-धेवतियों से नहीं...।"[51]

भाभी की बच्ची भी बड़ी होकर वेश्या ही बनती है। यदि वह वेश्या नहीं बनती तो शादी करती है। लड़की शादी के समय उसके नैन-नक्शे को देखकर भी पैसे दिये जाते हैं। भाभी बनी लड़की पर भले ही सामुदायिक वेश्यावृत्ति को अपनाने वाला समाज आश्चर्य जताता हो पर वंश बेल बढ़ाने के लिए इसी भाभी की आवश्यकता होती है। यदि लड़का हुआ तो वंश बढ़ेगा, लड़की हुई तो धन।

"असल बात यह है बैदजी की छोरी सुन्दर बहुत है। कम-से-कम यह खिलावड़ी तो अपनी तरह जनेगी।"[52] अर्थात् लड़की किसी भी रूप में रहें, वह रहेगी एक मशीन ही।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

पैसे छापने की मशीन या बच्चा पैदा करने की मशीन। यह वह सोच है जो दिखने में मातृसत्तात्मक समाज की है, किन्तु पितृसत्ता को दिखाती है।

जब सन्तो भी इस परेशानी से तंग आकर ग्राहक के साथ भाग जाती है तो इस विषय में वैदजी चिन्ता करते हुए कमला बुआ से पूछते हैं—

"पर बुआ, वह अब क्या करेगी?"

"करेगी खिलावड़ीपना।"

"क्याऽऽऽ"

"तो क्या वह घर बसाने की गरज से भागी है। घर बसाना होता तो यही ना बसाती।"[53]

देह और पैसों के आकर्षण ने सन्तो को भले ही खिलावड़ी बनने पर मजबूर कर दिया पर उसके बाद सन्तो का क्या हुआ, यह पाठक के मन में रहता है। सन्तो अपनी इसी चाकरी से तंग आकर अपनी बेटी को बुआ बनाना चाहती है ताकि वह भाभी बनकर उसकी तरह जीवन न जिये।

"बैदजी, बुआ ही ठीक है—भाभी बनके कम-से-कम मेरी तरह नरक तो न भोगेगी।"[54]

बुआ बनने की इच्छा उस छोटी-सी बच्ची में आना कोई अनावश्यक नहीं है। बच्ची पूरे दिन देखती है। माँ-बुआ में तुलना करती है। वह माँ की जिन्दगी नहीं जीना चाहती। वह 4-5 वर्षीय पिंकी समझती है कि बुआ बनकर वह क्या पायेगी।

"पर क्यों बनेगी बुआ?" बैदजी ने अबोध पिंकी की आँखों में इस निरपेक्षता के साथ देखा कि वह उलझ गई।

"बताऊँ, बुआ रोज अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती हैं। लेटकर टीवी देखती है और..."

"और क्या?" वैदजी ने उठाकर पिंकी को इस बार गोद में बिठा लिया।

"और बुआ के पास जो अंकल आते हैं न वो कितना रुपया देकर जाते हैं।"[55]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

पिंकी के उत्तर की ट्रेजडी यह है कि उसने अपनी माँ द्वारा घर में भोगे जा रहे नरक को देखा था। वही छोटी-सी बच्ची घर में बुआ के महत्त्व को समझती है।

आगे उपन्यास में 'मात्था ढकाई' की रस्म का वर्णन भी किया गया है। 'मात्था ढकाई' की रस्म में किसी अच्छे (मोटे) ग्राहक को देखकर लड़की की मात्था ढकाई की जाती है। वह लड़की का पहला ग्राहक होता है। वह इस रस्म के बदले खूब पैसे खर्च करता है। इस रस्म में जो व्यक्ति लड़की को अपनाता है वह एक तरह से उसी आदमी की ब्याहता हो जाती है। वह इज्जतदार (ग्राहक) जब चाहे लड़की के पास आकर रह सकता है, उससे सम्बन्ध बना सकता है। वेश्या की जिन्दगी जीती औरतें भी यही सोच रखती हैं कि स्त्री जीवन का परम सुख माँ बनने में है। माँ बनकर औरत को दूसरा जीवन मिलता है। 'रेत' उपन्यास की रतना ऐसी ही पात्र है जो वेश्यावृत्ति करती है तथा चाहती है कि एक बार उसकी गोद भर जाए तथा वह माँ बनने पर पूरे कस्बे को न्यौता देती है।

"कुआँ ही नहीं पुजवाया रतना ने लेकिन छठी के दिन पूरी गाजूकी को जिमाया। अपने माँ बनने की खुशी में रतना ने अपने जी भर कर चाव-चोंचले पूरे किए ... और भूरा, इसके बाद रतना सिर पाथे पर रखती।"[56]

यहाँ इस उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि औरत चाहे वह किसी भी समाज की क्यों न हो उसे हमेशा पितृसत्तात्मक सोच से दमित होना ही पड़ता है। भाभी और बुआ दोनों की स्थिति अलग-अलग है। भाभी पीड़ित है, बुआ शोषक, पर कहीं-न-कहीं भाभी के साथ वही करती है जो समाज उसे देता है। यह औरत के शोषण के अनेक पक्षों को उजागर करता है।

4.11 बाबल तेरा देश में : भगवान दास मोरवाल

भगवादास मोरवाल का मुस्लिम परिवेश को आधार बनाकर लिखा गया यह एक सामाजिक उपन्यास है, जो एक प्रकार से आख्यान है। इस उपन्यास में स्त्री के उन दुःखों का वर्णन है, जो घर के असुरक्षित वातावरण के बन्धन में बँधी हुई है। इसकी रेहलगी बजबजाती अन्धी सुरंगों में कहीं पिता, तो कहीं भाई, कहीं ससुर, तो कहीं-कहीं पति के रूप में एक पहरेदार हर नाके पर तैनात है। यह उपन्यास एक प्रकार से स्त्री विमर्श ही न होकर स्त्रियों की अपनी निजता और शुचिता बचाए रखने का लोमहर्षक उपाख्यान भी है

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

जिसमें पितृसत्तात्मक और परम्परागत दीवार और मेहराबों के बीच दादी, जैतूनी, असगरी, जैनब, मैना, शकीला, शगुफ्ता, सकीना, मुमताज का मौन प्रतिवाद है वहीं बाहर की दुनिया से नहीं बल्कि हाजी चाँदमल, दीन मोहम्मद, हनीफ, फौजी जगनप्रसाद, मुबारक अली तथा कलन्दर जैसे अपने घरों के पहरूओं से है।

उपन्यास में जब फत्तू पारो को अपनी घरवाली बनाकर लाता है तो गाँव की अन्य स्त्रियाँ छींटाकशी करती हैं—"मोरे तो पहले ही सक हो के जरूर ई को हिन्दुआणी ए करके लायो है। हमारी कौम में छोरी-छापरीन को काल पड़गो हो जो ई पाहे उचके (सिर पर रखना) लायो है।"[57] इसी कारण अन्य महिलाएँ पूरे परिवार के साथ भेद-भाव करने लग जाती है और इसकी शुरुआत अक्सर गाँव के कुएँ से होती है—"बहाण, दूसरान को दीन खराब करना सू बढ़िया है ये दोनू सास-बहू अपना कुआँ पे कांई नू ना चली जाए ... सिरकार ने बनवा तो राखा है, चिमार-चुहड़ान का अलग कुआँ।"[58] यहाँ पर यह सब कहने वाली भी मेव जाति की हैं और सुनने वाली भी।

उपन्यास में पारो और बत्तो के बीच कहासुनी में यही घटनाएँ रहती है—"बत्तो को पारो की जो बात बुरी लगी, वह यह कि उसे चौके में जूतियों समेत नहीं आना चाहिए था। कम-से-कम उन्हें तो बायने पर उतार कर आती।"[59]

'बाबल तेरा देश में' में कुम्हार जाति का पूरा ब्यौरा भी देखने को मिलता है। "वैसे रामचन्दर या जात का नाम भी घणाई है। कहीं याहे कुम्हार कहवे हैं, तो कहीं कुमावत। कहीं कुम्भकार कहवे हैं तो कहीं कुलाल। कहीं कुमार कहवें हैं तो कहीं पटेल और भग्गजी, परजापति, (प्रजापति) या परजापत तो तुमने सुन ही रखा है। मजा की तो ई है कि बिहार में बहुत-सा कुम्हार अपना नाम के पीछे पंडुत पंडित लिखे हैं।"[60]

सोनदई हिन्दू स्त्री है। वह लालदास के मन्दिर जाती है। वह लालदास को एक मन्दिर और उस जगह को मन्दिर जानकर जाती है। पर जब उसे पता चलता है कि उस मन्दिर का पुजारी एक मुसलमान है तो उसे उबकाई आने लगती है। एक व्यक्ति जो स्वयं जातीय विषमता का शिकार हो, मौका पड़ने पर वह दूसरों के साथ अपना जातीय गौरव दिखाने से नहीं चूकता। पारो ज नई-नई मेवों के बीच आई तो लोगों को पता चला वह हिन्दू है तो कुएँ पर जाते वक्त लोगों ने दबे स्वर में उसके खिलाफ आवाज उठाई परन्तु

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यह विरोध धीरे-धीरे ठंडा पड़ गया। वहीं पारो जब मेवों के कुएँ पर हरिजन स्त्रियों को आते देखती है तो बोल पड़ती है—"तमने खुद ही सोचनी चाहिए के कहाँ जाए और कहाँ न जाएँ। जब सिरकार ने तिहारो कुआँ अलग बनवा राखो है तो फिर तम वाही पे जाके क्यों ना मरो।"[61]

वस्तुत: भगवान् दास मोरवाल के इस उपन्यास में सामाजिक विषमता के अन्तर्गत अनेक पहलुओं को उजागर किया गया है। वहीं यह उपन्यास पूर्णतया उस अवधारणा का भी खण्डन करता है कि आजादी के बाद मुस्लिम परिवेश को आधार बनाकर उपन्यास नहीं लिखे जा रहे हैं।

4. 12 डंक : रूपनारायण सोनकर

रूपनारायण सोनकर द्वारा रचित इस उपन्यास में विश्व में फैली अनेक प्रकार की समस्याओं को उजागर किया है यह एक दलित उपन्यास है लेकिन हिन्दी के लेखकों ने 'डंक' को उपन्यास के साथ एक यात्रावृत्तान्त भी माना है। इसे एक प्रकार से ऐतिहासिक दस्तावेज भी बताया जो दलितों पर घट रही अमानवीय घटनाओं को उजागर करने में अग्रणी है। इस रचना को प्रकाशक ने उपन्यास कहा है। यह रचना उपन्यास-लेखन की कौन-सी शैली में है, यह समझना मुश्किल है। इस सम्बन्ध में रूपनारायण सोनकर जी का स्पष्टीकरण है—"साहित्य की सभी विधाओं में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। मैंने भी उपन्यास विधा में यह नया प्रयोग किया है। जिस तरह से इब्नबतूता ने भारत भ्रमण पर वृत्तान्त लिखा है उसी तरह मैंने भी भ्रमण वृत्तान्त पर उपन्यास लिखा है।"[62]

इस उपन्यास में विराट और सन्ध्या भ्रमण (देश भ्रमण) के लिए निकले हैं। जैसे विदेशी अपनी-अपनी प्रेमिकाओं के साथ भारत भ्रमण के लिए आते हैं और यहाँ की भूख, गरीबी, अभावों को नंगी तस्वीर लेकर उन पर कहानी या फिल्म बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार पाते हैं उसी प्रकार सैलानियों की तरह वे भी अपने देश भ्रमण पर निकले हैं और भारतीय जनजीवन की अनेक विचित्र स्थिति-परिस्थितियों को देखते हैं। उन्होंने अलग-अलग प्रसंगों को अलग-अलग शीर्षक भी दिये हैं, जैसे—'रीक्ष और आदमी का भयंकर युद्ध', 'आदिवासी युवक का अपनी प्रेमिका को डंडा बनाकर रस्सी पर चलना', 'एन.आर.आई. लोगों की एनीमल कल्चर', 'पहाड़ी सवर्णों के घरों में दलित

जीवन भर के लिए बन्धक', 'सवर्णों और दलितों के पानी पीने के अलग-अलग झरने', 'प्रधान पति', 'ठाकुर महाराज सिंह', 'तिल्लियों से मछली पकड़ना', 'गाँव के ब्राह्मण शिक्षा के प्रेरणा स्रोत बने', 'भगतुआ और बहू कंचनिया', 'पुजापा' आदि ऐसे अनेक शीर्षक हैं जिनकी अलग-अलग कथाएँ हैं, जो आपस में कहीं नहीं मिलती।

उपन्यास में संगृहीत अलग-अलग कथा प्रसंगों को देखते हुए इस कृति को उपन्यास कहने की अपेक्षा 'लघुकथा संग्रह' या 'कथा संग्रह' कहना ज्यादा ठीक होगा। लेखक पहले विराट के नाम से कथा बताते हैं फिर वे 'मैं' के रूप में स्वयं ही कथा में उपस्थित रहते हैं।

उपन्यास के मुखपृष्ठ के फ्लेक्स पर छपा है—"साहित्य जगत् में ऐसी बहुत कम रचनाएँ आती हैं, जो साहित्य प्रेमियों को, उनकी चेतना को एक साथ झकझोर देती हैं, उन्हें चकित, विस्मित कर देती है। 'डंक' इसी तरह का प्रयोगात्मक उपन्यास है जो कथ्य, भाषा-शिल्प के स्तर पर वैविध्य से भरपूर है।"[63]

लेखक ने उपन्यास में सामाजिक जीवन में व्याप्त छुआछूत, जातिभेद, अपमान, अत्याचार, दु:ख, गरीबी, अभाव की मार्मिक कथाएँ लिखी हैं जो सवर्णों के अन्याय, दुराभाव और दुष्टता को प्रकट करती है। 'रिन्द नदी के पुल बनाने में दलितों की बलि', 'राजस्थान के ऐतिहासिक महलों की नींव में दलितों की बलि', 'पानी पीने के अलग-अलग झरने', 'दलित ग्राम प्रधान और ठाकुर' आदि प्रसंगों में सवर्णों के अन्याय के विरुद्ध विद्रोह है।

उपन्यास में लेखक ने अनेक ऐसे प्रसंगों का वर्णन किया है जिनके माध्यम से समाज को कोई शिक्षा या सन्देश नहीं मिल पाता है। जैसे—सेक्स सम्बन्धी प्रसंगों में सेक्स बढ़ाने वाली दवा 'वियाग्रा' के सेवन, अपनी प्रेमिका सन्ध्या के साथ छह वर्ष के सेक्स सम्बन्धों को बताते हुए यह भी बताया कि किस तरह के उपाय द्वारा सन्ध्या को गर्भ नहीं ठहरने दिया तथा बूढ़े पुरुष द्वारा किये जाने वाले 'ओरल सेक्स' के विषय में भी लिखा है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 'डंक' में संगृहीत आपत्तिजनक प्रसंगों, सेक्स विवरण, विचार, कटुभाव से लिखी आलोचनात्मक बातें और आत्मस्तुति की बातों का

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

उपन्यास में कोई औचित्य नहीं रह जाता तथा यह आवश्यक है कि दलित साहित्यकार स्वास्थ्य और सार्थक कृतियों का सृजन करें और दलित साहित्य भण्डार के साथ अपना गौरव भी बढ़ायें।

4.13 सुअरदान : रूपनारायण सोनकर

रूपनारायण सोनकर द्वारा लिखित इस उपन्यास में गाँव में विदेश से शिक्षा ग्रहण कर आये चार दोस्तों की कहानी है, जो कि गाँव में पिगरी फार्म खोलते हैं। लेखक रूपनारायण सोनकर के इस उपन्यास के पात्र रामचन्द्र त्रिवेदी, सज्जन खटीक, घसीटे चमार और सलवंत यादव उत्तर प्रदेश के सिंहासन खेडा गाँव में एक पिगरी फार्म खोलते हैं तथा गाँव के विकास के लिए अपना जीवन अर्पण करते हैं। ये चारों मानवतावादी विचारधारा तथा विश्व बन्धुत्व में यकीन रखते हैं। दूसरी तरफ अपराधिक प्रवृत्ति का एक ग्राम प्रधान है जो अपने आतंक के सहारे गाँव में राज करता है तथा अपना विरोध करने वाले लोगों को मरवा देता है। वह अपंग है और व्हील चेयर पर चलता है। समाज विरोधी व वर्चस्व की समस्त गतिविधियाँ, बावजूद अपंगता, वह अपने सहयोगियों के साथ व्हील चेयर पर बैठे-बैठे सम्पन्न कराता है। वह गाँव के एक कमजोर वर्ग की लड़की का अपहरण कराकर उसे रखैल बना लेता है। वह प्रेगनेंट हो जाती है। यह उपन्यास का सुपर विलेन है। पिगरी फार्म के पार्टनर अपने पिगरी फार्म में अमेरिका के वैज्ञानिकों की मदद से नये-नये वैज्ञानिक प्रयोग करते रहते हैं। सुअर और गाय के संगमन से एक नयी बीड सूगाय उत्पन्न करते हैं तथा सुअरदान का एक पात्र सज्जन खटीक अमेरिका के न्यूजर्सी शहर में भारतीय मूल के डॉक्टर स्नेही लाल से मिलता है। पुजारी दयाशंकर की लाइलाज बीमारी एड्स का इलाज करवाता है।

4.14 ढोलन कुंजकली : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

'ढोलन कुंजकली' राजस्थानी परिवेश का सच्चा विद्रूप रूप प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने नारी की वास्तविक स्थिति और हमारे तथाकथित प्रगतिशील समाज की मानसिकता पर तो प्रश्न चिह्न लगाया ही है साथ ही बलिदान का ठेका तथाकथित सभ्य समाज में रहने वाले लोगों का नहीं है बल्कि आत्मोसर्ग की भावना कभी-कभी निचले स्तर के लोगों में से कुछ विस्मयजनक रूप से

आती है, जिनके बारे में साधारणत: सोचा भी नहीं जाता। इस उपन्यास में हमारे हिन्दू समाज की वर्ण-व्यवस्था की देन सामन्ती शासन द्वारा शोषित, पीड़ित एवं अपमानित एक दलित नारी की करुण कथा है, जो किसी वीरांगना से कम नहीं थी। इतनी पीड़ाएँ, इतने अपमान सहकर भी दलित नारियाँ अपनी देशभक्ति और शौर्य में किसी से कम नहीं है। ऐसे चरित्र भी दलित नारियों में ही मिलते हैं, 'ढोलन कुंजकली' इसका सटीक उदाहरण है।

निष्कर्ष

समकालीन दलित उपन्यासों में दलितों की शोचनीय एवं दर्दनाक सामाजिक स्थिति का चित्रण करके पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। इन उपन्यासों में दलितों की पीड़ा और संघर्ष को व्यक्त करते हुए उपन्यासकारों ने उन्हें जागरूक करने का प्रयास किया है जिसमें दलित चेतना के विभिन्न आयामों पर सूक्ष्मतापूर्ण दृष्टि गई है। इसमें उनकी सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक परिदृश्य, राजनैतिक दृष्टिकोण और आर्थिक संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति मुखरित हुई है।

सन्दर्भ

1. जयप्रकाश कर्दम — छप्पर, राहुल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9
2. वही, पृ. 10
3. वही, पृ. 15
4. वही, पृ. 25
5. वही, पृ. 107
6. वही, पृ. 39
7. वही, पृ. 82
8. सत्यप्रकाश — जस-तस भई सवेर (भूमिका से)
9. वही, पृ. 14
10. वही, पृ. 16
11. वही, पृ. 50
12. वही, पृ. 122
13. वही, पृ. 126
14. मोहनदास नैमिशराय — मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका से।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

15. वही, पृ. 17
16. वही, पृ. 8
17. वही, पृ. 24
18. वही, पृ. 28
19. वही, पृ. 31
20. वही, पृ. 38
21. वही, पृ. 38
22. वही, पृ. 61
23. वही, पृ. 68
24. वही, पृ. 103
25. वही, पृ. 104
26. मोहनदास नैमिशराय — आज बाजार बन्द है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 10-11
27. वही, पृ. 12
28. वही, पृ. 19
29. वही, पृ. 26
30. वही, पृ. 28
31. अनिता भारती — समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध, पृ. 135
32. कावेरी — मिस रमिया, आकाश पब्लिशर्स एवं डिस्टीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 7
33. वही, पृ. 81
34. वही, पृ. 18
35. वही, पृ. 23
36. वही, पृ. 96
37. वही, पृ. 102
38. वही, पृ. 108
39. अजय नावरिया — उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 5
40. वही, पृ. 26
41. वही, पृ. 26
42. वही, पृ. 23
43. वही, पृ. 23
44. वही, पृ. 17
45. वही, पृ. 105
46. वही, पृ. 75

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

47. वही, पृ. 186
48. उमराव सिंह जाटव — थमेगा नहीं विद्रोह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 21
49. वही, पृ. 319
50. भगवान् दास मोरवाल — रेत, राजकमल प्रकाशन, पृ. 22
51. वही, पृ. 23
52. वही, पृ. 22
53. वही, पृ. 183
54. वही, पृ. 11
55. वही, पृ. 12
56. वही, पृ. 68
57. भगवानदास मोरवाल — बाबल तेरा देस में, पृ. 20
58. वही, पृ. 27
59. वही, पृ. 48
60. वही, पृ. 65
61. वही, पृ. 118
62. रूपनारायण सोनकर — भ्रमण ध्वनि से बातचीत।
63. रूपनारायण सोनकर — डंक, अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली (फ्लैप पर)

❑

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

पंचम अध्याय

समकालीन दलित कविता

5.1 भूमिका

साहित्य सामाजिक परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण हथियार होता है, जो मानसिक रूप से विचारों को बनाने-बिगाड़ने का कार्य करता है। दलितों ने भी इसी हथियार का सहारा लेकर समाज में नए मूल्य स्थापित करने की कोशिश की, जिसकी तीव्र रचनात्मक अभिव्यक्ति दलित साहित्य की प्रथम प्रमुख विधा कविता में देखने को मिलती है। दलित कवियों ने हिन्दू धर्म, वर्ण व्यवस्थाजन्य जाति भेद से उत्पन्न समता और एकता विरोधी तमाम तत्त्वों को अपनी रचनाओं में नकारा है। वर्ण-व्यवस्था से उपजे संकटों को वे चुपचाप सहन करने को तैयार नहीं है। दलित कविता को सम्मानपूर्वक जीवन जीने और युगीन मानवीय अधिकारों का पक्ष प्रस्तुत करती है। दलित कवि कविता के लिए कविता नहीं लिखते, बल्कि कविता उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। वे इसी मुक्ति के लिए कविता लिखते हैं। मुक्ति उसका साध्य और कविता साधन है।

इसी सन्दर्भ में श्री रनजीत साहा कहते हैं, "दलित कविता समूचे दलित साहित्य की केन्द्रीय विधा ही नहीं दलित चेतना का सम्बल संवाहिका रही है। दलित भावोन्मेष के लिए कविता सशक्त माध्यम रही है और इसी चेतना में उसकी प्रक्रिया और आत्म सम्मान का पर्याय बनी कविताओं में विद्रोह, विरोध, क्षोभ और आक्रोश तथा पीड़ा, कुण्ठा, बंचना और वेदना के साथ बहिष्कृत जाति दंश और सामाजिक शोषण को मार्मिक और तार्किक अभिव्यक्ति मिली। इन कविताओं का स्वभाव न तो किसी अप्रिय समझौते के लिए तैयार है न किसी मनचाही मध्यस्थता के लिए। इस कठोर मुद्रा ने ही इसकी उत्तरजीवन्तता के लिए उपयुक्त और उर्वरक जमीन तैयार की थी।"[1]

इसी क्रम में कविता की सार्थकता को स्वीकार करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं—"जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हौसला दे, वही तो कविता है। कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा, गतिशीलता की संवाहक है।"[2]

कविता की इसी ताकत को पहचानते हुए वर्तमान दौर के दलित रचनाकारों ने कविता को ही अपनी अभिव्यक्ति का मुख्य आधार बनाया है। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में दलित समाज को अब तक तमाम सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों से वंचित किया गया है। हिन्दी दलित कविता इसी व्यवस्था के प्रति दलित समाज की वेदना को प्रकट करने के साथ-साथ विद्रोह प्रकट करती है जिसमें दलित कवियों ने अस्पृश्यता, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया है।

दलित कविता में आक्रोश, संघर्ष, नकार, विद्रोह, अतीत की स्थापित मान्यताओं से है। वर्तमान के छद्म से है, लेकिन मुख्य लक्ष्य जीवन में घृणा की जगह प्रेम, समता, बन्धुता, मानवीय मूल्यों का संचार करना ही दलित कविता का मुख्य लक्ष्य है।

5.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएँ

दलित साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। उनकी कविताओं में वेदना की तीव्र अभिव्यक्ति मुखरित होती दिखाई देती है, जिनमें उनके द्वारा रचित काव्य संग्रहों में दलित की स्थिति का, उनकी अहमियत तथा उनके मूल्यों का यथार्थपरक चित्रण किया है।

"जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गन्दगी से भरी बाल्टी-कनस्तर
किसी हाथ में, मेरी रगों में
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ।
आँखों में उतर आता है
इतिहास का स्याहपन
अपनी आत्मघाती कुटिलताओं के साथ।

असंख्य मूक पीड़ाएँ
कसमसा रही हैं।
मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई।
बस्स!
बहुत हो चुका।
चुप रहना।"[3]

इन पंक्तियों में वाल्मीकि जी ने बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। इसमें उन्होंने यह बतलाने की चेष्टा की है कि ऐसा क्या कारण था जिसके कारण दलित अत्याचारों का विरोध नहीं कर पा रहे थें। उनको क्या खोने का डर था। क्या झाड़ू-टोकरा, राँपी, सुतारी और जूता गाँठने के घृणा से सने उपकरण खोने का डर था। खोने के लिए दु:खों, अपमानों और यातनाओं के सिवाय और था ही क्या?

"बड़ी यन्त्रणा होती है ...
इच्छाओं के विरुद्ध जीना
उन क्षणों का
जिसमें हँसा जा सकता था
गुनगुनाया जा सकता था
हवाओं की तरह।"[4]

दलितों का अतीत आज उनका पीछा नहीं छोड़ता है। उनकी यातना बनकर उन्हें सताता है। वे अपने पूर्वजों की यातनाओं की स्मृति को ताजा करते रहते हैं तथा यह महसूस करते हैं कि कितना कष्टप्रद होता है इच्छाओं के विरुद्ध जीना।

"नहीं मिला दूध इसे
सफेद काली गाय का
नहीं खाया उसने दही मक्खन कभी
नहीं सोया गद्दे बिस्तर पर
लगातार लड़ा है वह
बेहया मौसम से"

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

दलितों का जीवन हमेशा संघर्ष में गुजरा है। वे हमेशा अभावों से ग्रसित रहें तथा सामन्ती सोच की वर्चस्ववादी राजनीति से वे हर बार पराजित हुए।

"ये भूखे प्यासे बच्चे एक दिन
बाहर आयेंगे एक दिन
बन्द अन्धेरी कोठरियों से,
कच्ची माटी की गन्ध
साँसों में भरकर।"[5]

यहाँ पर एक आशा के माध्यम से कवि ने यह बतलाया है कि एक-न-एक दिन उनको अपने अधिकार मिलेंगे तथा वे समर्थ होंगे।

"मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत
तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन।
कितने ताज्जुब की बात है
जबकि प्रजनन क्रिया एक ही जैसी है।
वह दिन कब आएगा
जब बामन नहीं जनेगी बामन
चमार नहीं जनेगी चमार
भंगी नहीं जनेगी भंगी
तब नहीं चुभेंगे
जातीय हीनता दंश।"[6]

कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि जी उस दिन का इन्तजार कर रहे हैं जब समानता का अधिकार न सिर्फ कानूनी तौर पर बल्कि वास्तविक रूप में लागू हो जायेगा तथा समाज में व्याप्त जातीय भेद-भाव, छूत-अछूत एवं अनेक प्रकार के दलित उत्पीड़न खत्म हो जायेंगे।

"तुम्हारे रचे शब्द
तुम्हें ही डँसेंगे साँप बनकर
गंगा किनारे

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

कोई वटवृक्ष ढूँढकर
भागवत का पाठ कर लो
आत्मतुष्टि के लिए
कहीं अकाल मृत्यु के बाद
भयभीत आत्मा
भटकते-भटकते
किसी कुत्ते या सुअर के मृतदेह में
प्रवेश न कर जाये
या फिर से पुनर्जन्म की लालसा में
किसी डोम या चूहड़े के घर
पैदा न हो जाये।"[7]

इसमें कवि भगवान्, भाग्य, प्रारब्ध, पुनर्जन्म जैसे कर्मकाण्डों में न पड़कर इस रूढ़िवादी सोच से बाहर निकलने का आह्वान करता है कि वर्तमान समय के कुकर्मों के कारण पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले ब्राह्मणों को अगले जन्म में सुअर, कुत्ता, डोम या चूहड़ा बन जाने की भविष्यवाणी करके उनको भयभीत करने का प्रयास करता है।

"स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना मृत्यु के बाद
तुम्हारे स्वर्ग में
वहाँ भी तुम पहचानोगे मुझे
मेरी जाति से ही।"[8]

दलित वर्ग के शोषण में अनेक तरह की घिनौनी मानसिकता से संचित रूढ़ि एवं परम्पराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन्होंने भाग्य, भगवान् का भय दिखाकर दलित वर्ग का शोषण किया। इसीलिए दलित भगवान्, भाग्य, स्वर्ग, नरक आदि संकल्पनाओं का तिरस्कार करते हैं।

"चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

तालाब ठाकुर का
भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरे खेत का
खेत ठाकुर का
बैल ठाकुर के
हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी
फसल ठाकुर की
कुआँ ठाकुर का
खेत खलियान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या
गाँव?
देश?"[9]

दलित कवि अपनी कविता में उस विडम्बनापूर्ण एवं त्रासद स्थिति का चित्रण करना चाहता है जिसमें वह यह तय नहीं कर पा रहा है कि यह देश किसका है? या मैं किस देश का हूँ? ऐसी दोहरी मानसिकता यहाँ पर मौजूद है जिसमें यहाँ पर दो देश—एक सवर्ण समाज तथा दूसरा दलित समाज—वाली अवधारणा चित्रित की गयी है।

"मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद लिया है संघर्ष
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोंपड़ी से उठते धुएँ में
तनी मुट्ठियाँ तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास रचेगी।"[10]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अब हम लोगों को सम्पूर्ण तथा पूरी तरह से क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहिए जहाँ पर करुणा, दया के स्थान पर विद्रोह एवं संघर्ष की आवश्यकता है। अब हमको आँसू नहीं बहाने है बल्कि एक समतामूलक समाज की एक नई इमारत खड़ी करके इतिहास रचना होगा।

"दोस्तो
इस चीख को जगाकर पूछो
कि अभी और कितने दिन
इस तरह गुमसुम रहकर
सदियों का सन्ताप सहना है।"[11]

यहाँ पर ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने पारम्परिक मान्यताओं को नकारते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है कि इस तरह चुपचाप बैठकर अपना शोषण करवाते रहोगे या कभी इन झूठी आडम्बरपूर्ण मान्यताओं का विरोध भी करोगे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का सन् 2009 में 'अब और नहीं' काव्य संग्रह पाठकों के सामने आया। इसमें कवि ने पारम्परिक मान्यताओं, वर्ण-व्यवस्था, जातीयता, ऊँच-नीच आदि पर अपनी कलम के माध्यम से प्रहार किया है, साथ ही दलितों को अपनी आवाज उठाने की प्रेरणा दी है।

"जाति आदिम सभ्यता का
नुकीला औजार है
जो सड़क चलते आदमी को
कर देता है छलनी
एक तुम हो
जो अब तक चिपके हो जाति से।"[12]

हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था में रंग एवं जाति के नाम पर दलितों की पहचान की जाती है। यह घोर अन्याय से ग्रसित जाति आधारित व्यवस्था आदमी से आदमी को दूर करने की व्यवस्था है।

"अस्थियों के बीच रखे सिक्कों
और दक्षिणा के रुपयों पर

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

विसर्जन से पहले ही
झपट्टा मारने के लिए बाज की तरह।"[13]

कवि को ब्राह्मणवादी वर्ण–व्यवस्था के खिलाफ जाना दहकते अंगारों के समान लगता है जिसमें उन्होंने हिन्दुओं की पारम्परिक मान्यताओं को नकारा है तथा ब्राह्मणवादी सोच पर प्रहार किया है। यहाँ पर ब्राह्मणों की धन लोलुपता भी दर्शायी है।

"एक रोज मैंने
जुटाई हिम्मत
और पूछ लिया उससे
वही सवाल
देखा उसने मेरी ओर
बोला मैं जन्मा हूँ ब्रह्मा के मुख से
इसलिए श्रेष्ठ हूँ।
ताज्जुब है।
मनुष्य का जन्म तो होता है
सिर्फ माँ के गर्भ से
फिर आप कैसे पैदा हो गए
ब्रह्मा के मुख से?"[14]

आजादी के 6–7 दशक गुजरने के उपरान्त भी सवर्ण के मन में दलितों को लेकर वैमनस्य भरा हुआ है। आज भी देश में जाति की प्रधानता है तथा लोकतान्त्रिक आजाद भारत में वर्ण–व्यवस्था के सर्वश्रेष्ठ मानने वालों की कमी नहीं है। इन लोगों में अन्धविश्वास व पाखण्ड कूट–कूट कर भरा हुआ है।

"वे पसन्द नहीं करते
'जाति' पर बात करना
क्योंकि वे नहीं है
पासी–चमार
भंगी–महार

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

जबकि वे हर रोज करते हैं

इस्तेमाल

इन जातियों को गाली की तरह।"[15]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी कविता 'आइना' में लिखते हैं कि सवर्ण लोग जाति समस्या पर बात करने को तैयार नहीं है बल्कि दोहरे मापदण्ड अपना कर जाति समस्या को 'विमर्श' का विषय बनाकर इस समस्या की उम्र बढ़ा रहे हैं।

"सदियों से पीड़ित

दलित

मेरा हृदय बन गया है—

ज्वालामुखी

फट पड़ने को लालायित

भीतर ही भीतर

मुझे हिला रहा है।

सूर्य की एक किरण

घने बादलों के बीच चमककर

मुझे जमा गई है

मेरे हाथों की शक्ति

सहनशीलता, फौलादी दृढ़ता

हिलादेगी जाति-व्यवस्था को

बहुत हो चुका

शोषण

प्रताड़ना

और उपेक्षा

बस, अब मेरा ज्वालामुखी फट पड़ेगा।"[16]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यहाँ वाल्मीकि जी ने अपनी कविता 'ज्वालामुखी' में वर्णाश्रित जातिवादी व्यवस्था, पौराणिक आख्यान एवं तथाकथित ऐतिहासिक वृत्तान्तों की आलोचना करते हुए इनके प्रति आक्रोश व्यक्त करते हैं तथा यह कहना चाहते हैं कि दलित साहित्य पूर्व साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की बात करता है। पूर्व साहित्यकारों की रचनाओं को अपने दृष्टिकोण से देखना चाहता है तथा इन गलत प्रस्थापनाओं की व्याख्या करता है, जो मानव विरोधी है।

"वर्ण-व्यवस्था को तुम कहते हो आदर्श
खुश हो जाते हो
... ...
कभी सोचा है
गंदे नाले के किनारे बसे
वर्ण-व्यवस्था के मारे लोग
इस तरह क्यों लगते हो उन्हें
कभी सोचा है।"[17]

हिन्दू धर्म की वर्ण आधारित जाति-व्यवस्था समाज को किस तरह से खोखला करके नफरत का जहर घोल रही है इस पर हमें सोचना बहुत जरूरी है। वह वाल्मीकि जी की कविता 'कभी सोचा है' में सवर्णों को सोचने एवं इस जाति-समस्या पर विचार करने के लिए विवश करते हैं।

"हजारों साल का मैल
रगड़-रगड़कर निकालने में
समय जाया मत करो
भीड़ भरी सड़कों पर
यातायात के बीच अपनी जगह बनाकर
रूकने का संकेत पाने से पहले
लालावती का चौराहा पार करता है
सुन चुके अर्थहीन तर्क भी।"

यहाँ कवि ने भ्रष्ट व्यवस्था को नकारा है। वह अब वर्तमान समय में दलितों पर हो रहे अत्याचार को बर्दाश्त नहीं करना चाहता है जिसमें दलित हजारों सालों से मैली जिन्दगी जीने को मजबूर हो रहे हैं इसलिए वाल्मीकि जी ने अपनी कविता के माध्यम से अदम्य साहस और अपरिमित धैर्य के माध्यम से दलितों में ऊर्जा का संचार किया है।

इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएँ दलितों को एक नई दिशा प्रदान करती है तथा दलितों द्वारा भोगे हुए जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करती है जिसमें दलित की पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता की छटपटाहट आवश्यक रूप से स्पष्ट होती है।

5.3 जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ

जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ परम्परावादी और यथास्थितिवादी समाज के परिवर्तन की पक्षधर हैं। इनकी कविताएँ बहुत बोलती नहीं, बल्कि अन्दर से झकझोरती है और अन्दर ही अन्दर विद्रोह के लिए तैयार करती है।

"असमानता और अन्याय के
ये सारे किले
मेरी आँखों में गड़े हैं
इन किलों में बन्द है
मेरी चीखें
इनके मेहराबों में सजे हैं
मेरी यातनाओं के फानूस
मेरे रक्त से रंगे हैं
इनके ध्वज और
और इनकी दहलीजों में दफन है
मेरा वजूद।"[18]

यहाँ कर्दम जी ने वर्णवादियों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि यदि दमन और शोषण का यही हाल रहा तो मेरे हाथ हरकत में अवश्य आयेंगे और क्रान्ति का अंकुर स्वत: ही फूट पड़ेगा।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

"जी करता है
ध्वस्त कर दूँ इन किलों को
चिन्दी-चिन्दी कर दूँ
इनका वजूद ...।"[19]

वे 'किले' नामक कविता में बताते हैं कि इस परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश तथा दासता से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना, जिससे समाज में मानवीय मूल्य को स्थापित किया जा सके।

"गूँगा नहीं था मैं
कि बोल नहीं सकता था
जब मेरे स्कूल के
मुझसे कई क्लास छोटे
बेढंग से एक जाट के लड़के ने
मुझसे कहा था—
ओ ओ मोरिया!
ज्यादै बिगड़ै मत,
कमीज कू पैन्ट में दबा के मत चल।
और मैंने चुपचाप अपनी कमीज
पैन्ट से बाहर निकाल ली थी।"[20]

जयप्रकाश कर्दम द्वारा अपनी कविता 'वर्णवाद का पहाड़ा' में एक स्वर्ण जाति का स्कूली बालक भी दलित वर्ग के छात्र पर शासन करने की वर्ण-पोषित मन स्थिति के संवाद स्थापित करता है।

"समाज को प्रगतिशील बनाना है
जाति के जहर को मिटाना है
तो इन तथाकथित धर्मग्रन्थों को
आग लगानी होगी
नकारना होगा

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

वर्णित उस ईश्वर को
जो कर्मानुसार
फल देता है
और मोक्ष भी वर्णों के अनुसार
जगानी होगी शुद्ध प्रज्ञा
ध्वस्त करने होंगे
विषमताओं के संरक्षण।" [21]

यहाँ पर कवि अनेक प्रकार की विषमताओं से ग्रस्त समाज को प्रगतिशील बनाने के लिए, ईश्वर के अस्तित्व को नकारकर शुद्ध प्रज्ञा के लिए आडम्बरपूर्ण इन धर्मग्रन्थों का अस्तित्व मिटाने का आह्वान करता है क्योंकि जब तक समाज में वर्ण–शुचिता रहेगी तब तक समाज विद्वेष एवं विघटन से नहीं बच सकेगा।

"फड़कने लगी है मेरी भुजाएँ
फावड़ा कुल्हाड़ी और हथौड़ा पकड़े
मेरे हाथ
काट फेंकने को
उन हाथों को जिन्होंने
बरसाए हैं अनगिनत कोड़े
मेरी नंगी पीठ पर
छीना है मेरे मुँह का ग्रास।" [22]

दलित कविता ऐसी सामाजिक असमानता का खण्डन करती है जिसमें आजाद भारत में लोकतान्त्रिक विचारों, मूल्यों और समानता के अधिकारों के बावजूद भी जातिवाद अर्थात् ब्राह्मणवाद समाज का अपरिहार्य अंग बना हुआ है जिसके फलस्वरूप निरन्तर अन्याय, अत्याचार, पीड़ा और आक्रमण को सहन करते–करते दलितों का मन निरन्तर प्रतिशोध के लिए तैयार हो जाता है।

"यानि हर जगह
तुम्हारा आरक्षण उचित है

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

मेरा अनुचित है
तुमको हराम का हलवा उचित है
मुझको ईमानदारी और मेहनत की
रोटी भी अनुचित है
नहीं, तुमको सारा मक्खन
और मुझको छाछ भी नहीं
यह सब नहीं चलेगा
अब हर क्षेत्र में होगी
समान रूप से हिस्सेदारी–
शासन–प्रशासन से लेकर
मैला ढोने, जूती गाँठने
और झाड़ू लगाने तक के काम में भी
बाँटनी होगी समानता।"[23]

सवर्णों को दलितों का आरक्षण कांटे की तरह चुभता है। यहाँ कवि ने इस प्रकार की घिनौनी मानसिकता का पर्दाफाश किया है जहाँ पर वर्णवादी सामाजिक व्यवस्था की सभी सुविधाएँ सवर्णों के लिए आरक्षित हैं, बाकी असुविधाएँ दलितों के हिस्से में। इस अव्यवस्था को दलित समाज उलटना चाहता है।

"तेरी भावनाओं को कुचला जाएगा
तेरी आवाज को निगला जाएगा
जब तक मुँह बन्द किए चुपचाप
सब कुछ सहती रहेगी
तब तक ठीक है अन्यथा
तुझे छूरे से रेतकर
किरोसीन से जलाकर या
तंदूर ये दूर कर दिया जाएगा।"[24]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

जहाँ पर वर्णवाद दलित उत्पीड़न का कारण है वहीं यह स्त्री शोषण का मुख्य कारण भी है, जिसमें दलित युवती ब्राह्मणों की दासी बनकर रहती है तब तो ठीक है लेकिन जिस दिन वह उनके खिलाफ विद्रोह करेगी, उसी दिन उसकी जिन्दगी का स्वर समाप्त कर दिया जायेगा।

"नोचे गए हैं निर्ममता से
बेबस स्त्रियों के उरोज और नितंब
उनकी योनियों में ठोके गए हैं
जातीय अंह के खूँटे।"[25]

आज समाज की विडम्बना यह है कि किसी दलित से बदला लेना है तो उसकी माँ, बहिन-बेटियों के साथ सामूहिक बलात्कार जैसे घोर कृत्य किये जाते हैं और इस अन्याय का विरोध करने की दलित समाज ने जब भी आवाज उठाई, तो सवर्ण समाज ने अपनी ताकत के बल पर उनकी आवाज को दबा दिया।

"काम से अधिक बात बोलती है
मुँह से अधिक लात बोलती है
आदमी से अधिक जाति बोलती है।"[26]

यहाँ कवि ने 'देवभूमि' कविता के माध्यम से यह बतलाया है कि दलितों पर अत्याचार कभी धर्म के नाम पर, कभी भगवान् के नाम पर, कभी जाति व्यवस्था के नाम पर उनको सदियों से गुमराह किया जा रहा है लेकिन वास्तविकता यह है कि यह सारी बातें वर्ण-व्यवस्था के जनक एवं उनके समर्थकों की साजिश थी जिसमें काम का कोई महत्त्व नहीं है, बल्कि जाति महत्त्वपूर्ण है।

"जब खून शरीर के अन्दर होता है
सवर्ण-अवर्ण सछूत-अछूत
न जाने कितने रंगों में बँटा होता है
शरीर से बाहर आता तो
सबका खून एक जैसा होता है
ऐसा क्यों होता है?"[27]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

'ऐसा क्यों होता' कविता के माध्यम से कवि पाखण्डी और खोखली जाति-व्यवस्था पर करारा प्रहार करते हुए कहते हैं कि मनुष्य को मनुष्य न मानकर अपने निजी स्वार्थों के लिए अमानवीय व्यवस्था निर्मित करने वाले से कवि ने यह सवाल पूछा है, जहाँ पर इनकी स्वार्थी पाखण्डी व्यवस्था की खोल खुलती है।

"मगरमच्छ के अश्रुओं का
सच जान चुके हैं हम लोग
अपनेपन का खेल न खेलो
अपनापन दिखलाओ तुम।"[28]

कविता 'दलित वेश में' में कवि कहना चाहता है कि 'फालतू की बातों में हमें उलझाने की आवश्यकता नहीं है। सीधा-सीधा बताओ कि तुम दलित का रूप धारण करके किस इरादे से हमारी बस्ती में आये हो।' यहाँ पर कवि ने दलितों के प्रति दिखावटी सहानुभूति रखने वाले लोगों का पर्दाफाश किया है।

" उठो झटककर फेंक दो ये दासता की बैंड
समता और सम्मान की अगर चाहे हो भोर।"[29]

यह कविता दलितों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है जिसमें कवि कहता है कि दलितों को कभी देश में इन्सान नहीं माना गया। इसके लिए दलितों को अपनी मुक्ति के लिए राजकीय सत्ता प्राप्त करना अनिवार्य है क्योंकि समाज में जब तक जाति रहेगी, तब तक दलितों का दमन होता रहेगा।

यहाँ जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ दलित चिन्तन को एक नई दिशा और मजबूती प्रदान करती हैं वहीं दूसरी ओर कोमल संवेदनओं को भी अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

"मेरे शब्दों
केवल शब्द मत बने रहो,
अपने अर्थों में आ जाओ,
तीर तलवार में बदल जाओ
धरती आसमान को हिला दो

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अन्याय की दुनिया में
आग लगा दो
क्रान्ति का बिगुल बजा दो।" [30]

डॉ. जयप्रकाश कर्दम की कविता 'क्रान्ति का बिगुल बजा दो' में समाज को चेतना का सन्देश दिया गया है जिसमें समाज को सामाजिक परिवर्तन के लिए निरन्तर प्रयास करना होगा तथा अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए तत्परता एवं सजगता लानी होगी।

"ठाकुर के खेत से
सेठ की तिजोरी तक
मेराही लहू बहता है
वही सबसे सस्ता है।" [31]

यहाँ एक स्वाभाविक बात यह है कि कवि जिस समाज से है उसके काव्य में उसी समाज की वस्तुगत सच्चाई देखने को मिलती है जिसमें विकास की अनेक ऊँचाईयों को छू लेने वाले समाज से दलित व्यक्ति और उसका समाज निचले पायदान पर खड़े हैं।

"सूरज की गर्मी से
नहीं झुलसाता मेरा शरीर
उसे झुलसाता है
यंत्रणाओं का सूरज।" [32]

भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में दलित व्यक्ति आज भी अनेक रूपों में ज्यादा शोषित, प्रताड़ित और अपमानित है। आधुनिकता के छलावेपूर्ण आइने में वह अभी भी सबसे ज्यादा उपेक्षित और प्रताड़ित महसूस करता है।

"करोड़ों दलित वंचित है
सदियों से
बहुत सारे मानव-अधिकारों से
किन्तु नहीं बनते वे कभी विषय
मानव-अधिकारों के पक्षधरों की चिन्ता का

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

क्यों मूक बनी रहती हैं
दलितों के उत्पीड़न के खिलाफ
मानव-अधिकारों की पक्षधर एजेंसियाँ
क्यों नहीं दिखाई देता उनको
दलितों का दर्द ...।"[33]

यहाँ पर दलित कविता यह बयान करती है कि दलित साहित्य में उठा विद्रोह मूलत: दलित और अन्य पीड़ित तबकों के अस्मिताबोध, संघर्ष, अन्याय तथा समाज की अत्याचारी व्यवस्था में परिवर्तन लाने का पक्षधर है लेकिन यह परिवर्तन तब ही आ सकता है जब दलितों को उनका अधिकार और सम्मान मिलें। इसके लिए दलितों को अपने अधिकारों की लड़ाई लड़नी होगी, जिससे समाज में दलितों की मौजूदगी और अहमियत पा सके।

"... सीखना होगा दलितों को भी
कलम का महत्त्व
हथियार के रूप में उसका प्रयोग
क्योंकि कलम से लिखे जा सकते हैं
परिवर्तन के गीत,
ध्वस्त किए जा सकते हैं
अन्याय के किले।"[34]

यहाँ पर कवि ने उनके प्रतिनिधि चिन्तक के रूप में दलितों को कलम का महत्त्व समझाया है जिसमें दलितों को शिक्षा के माध्यम से शोषण, जातिगत भेद-भाव और वर्चस्व की संस्कृति के खिलाफ खड़ा होने के लिए कलम के द्वारा ही गाँव-शहर तथा जनता के बीच यह सन्देश भेजना होगा कि अपने अधिकारों की लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती, इसके लिए हम सबको एकता और बन्धुत्व की भावना जगानी होगी।

"... अम्बेडकर करोड़ों दलितों की
अस्मिता का प्रतीक है
उनके जीवन का संगीत है

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

आंबेडकर एक जीवंत विचार है
श्रद्धा के आवेग में
जीवन्त विचार को मत दबाओ
आंबेडकर को भगवान् मत बनाओ।" [35]

दलितों को जातीय शोषण से मुक्ति दिलाने का साहित्यिक प्रयास वास्तव में डॉ. अम्बेडकर के क्रान्तिकारी विचारों से अभिप्रेरित है जिन्होंने जीवन भर वंचित समाज को अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए शिक्षित व संगठित होकर संघर्ष करने की प्रगतिशील विचारधारा प्रदान की।

5.4 श्यौराज सिंह बेचैन की कविताएँ

उनका काव्य संग्रह 'क्रौंच हूँ मैं' में कवि स्वानुभूति या भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है तथा इसमें रचनाकार किसी अन्य की पीड़ा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बना रहा है, बल्कि स्वयं को क्रौंच पक्षी मान रहा है जिसका बहेलिया वध करता है। यहाँ पर स्वानुभूति और सहानुभूति में मौलिक अन्तर दिखाई पड़ता है।

"क्रौंच हूँ मैं!
भुक्तभोगी मैं तुम्हारे तीर का,
दर्द मेरा औ' मेरा सन्ताप दूसरों के
पाप का मैं भोगता अभिशाप।" [36]

यहाँ कारुणिक अभिव्यक्ति ही कवि द्वारा स्वयं भोगे हुए यथार्थ की स्वानुभूति है।

"लफ्फाजी के दंश मारकर
करे व्यवस्था के
शरीर पर वार करारे
लाठी, गोली
या कि शब्द को
किसी तोप का गोला बोले
लफ्फाजी बातें

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यथास्थिति में तो कोई हस्तक्षेप
नहीं हो पाता।" [37]

'और खून का' कविता में सफेदपोश लोगों की काली मानसिकता पर गहरा व्यंग्य किया गया है। लफ्फाजी बातों में लेखक उन लोगों पर तीखा प्रहार करता है जो रचनाकार होने के धर्म से कोसों दूर है क्योंकि सिर्फ बात करने से स्थिति में परिवर्तन नहीं हो सकता।

"वह उठाकर
फेंक भी दे, इतनी क्षमता
भी नहीं
मौत भी हल्की नहीं
और जिन्दगी भारी भी है।
माना डेमोक्रेट है
निज देश की आबोहवा
दूसरी शक्लों में
'होरी' पर जुल्म जारी भी है।" [38]

'हस्तक्षेप' कविता पर्यावरण की चिन्ता व्यक्त करती है जिसमें आम आदमी द्वारा अन्धाधुन्ध तरीके से वनों का दोहन करने से बेघर हुए परिन्दों के लिए कहीं भी आशियाना नहीं है। 'जुल्म जारी भी है' में वही स्थिति बेरोजगारों के साथ भी है जो अनेक प्रकार से शोषित होकर 'गोदान' के पात्र धनिया और होरी के रूप में चरितार्थ हो रहे हैं।

"उठें कि जुल्म फिर मजाल
हो कि सिर उठा सके
सदा दबे-पिसे अवाम
से जुड़े रहे हैं हम
नहीं रूकेंगे अब हमारे
साथियों के ये कदम।" [39]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यह कविता समाज में परिवर्तन की बात करती है, जिसमें जुल्मों को खत्म करने के लिए चेतना का आह्वान किया गया है तथा जाति–भेद, स्त्री–पुरुष समानता एवं हिन्दू मुस्लिम एकता की चाह भी रखी गयी है।

"लेकिन हम पाकर
आज़ादी
खुद ही बन खड़े
फरियादी
सारा अन्धकार
पी बैठे
भूखों के बेटे
बढ़ती भूख
उन्हें खा जाये
हे प्रभु!
ऐसी प्रलय न आये।"[40]

'खून हमारा' कविता में वर्तमान देश की स्थिति के बारे में बतलाया गया है। आजादी के बाद भी दलितों, पीड़ितों, उपेक्षितों की स्थिति में परिवर्तन नहीं आया है।

"न दहेज को सहमत होगी
कौम की कारा तोड़ेगी
घुट–घुट कर
अब नहीं मरेगी
मंच पै चढ़कर बोलेगी
समय और शिक्षा
ने उसके चिन्तन का रूख
मोड़ दिया।"[41]

'लड़की ने डरना छोड़ दिया' कविता में प्रतिरोध का सार्थक स्वरूप सामने आता है क्योंकि यदि लड़कियाँ अगर शिक्षित है तो वह अपने अधिकारों के लिए लड़ सकती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

कवि ने यहाँ एक ऐसी लड़की का चित्र प्रस्तुत किया है जो समाज की जड़ता को तोड़ने में काबिल है। वह अपने को पराया धन स्वीकार नहीं करती है तथा अपनी अस्मिता की कीमत समझती है।

5.5 सूरजपाल चौहान की कविताएँ

इनकी कविताओं में राष्ट्रीय भावना व ग्रामीण संस्कारों की झलक तथा धार्मिक व ऐतिहासिक विसंगतियों के प्रति आक्रोश दिखाई देता है जिसमें आम आदमी की पीड़ा, दलितों पर होने वाले अमानुषिक अन्यायों आदि के प्रति कवि ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

"मेरा गाँव कैसा गाँव?
न कहीं ठौर न कहीं ठांव,
कच्ची मड़ैया, टूटी खटिया
घूरे से सटकर
बिना फूंस का मेरा छप्पर
मेरे घर न पेड़ की छांव
मेरा गाँव कैसा गाँव?
न कहीं ठौर न कहीं ठांव।"[42]

हमारे देश की आजादी के 70 साल बाद भी भारतीय गाँव की दशा कितनी खराब है इसके बारे में 'मेरा गांव' कविता के माध्यम से कवि ने गाँवों की स्थिति जिसमें निजीकरण की तरह सिलिंग आदि से बचने के लिए जमींदारों, सामंतों और पूँजीपतियों ने नयी-नयी तकनीक विकसित कर मनोरंजन के साधन और रेस्ताराओं को विकसित किया जिसके कारण गाँवों में अशिक्षित मेहनतकश मजदूर विवश होकर गुलाम बनते गए।

"हरिजन' से हरि बहुत दूर है
शबरी राम की करते बात।
दलितों का सब शोषण करते
जात जात में यहाँ जात।"[43]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यहाँ कवि ने जाति व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर किया है कि जन्म के आधार पर ऊँच और नीच का निर्धारण सामाजिक द्वेष का महत्त्वपूर्ण कारण है, जिसको गैर दलितों ने सदैव ही नकारा है।

"सारा शहर बुहारा करते
अपना ही घर गन्दा रखते
शिक्षा से रहे कोसों दूर
दारू पीते रहते चूर,
बोतल महँगी तो क्या है
देशी थैली सस्ती है,
यह दलितों की बस्ती है।"[44]

'यह दलितों की बस्ती है' कविता के माध्यम से दलितों में व्याप्त घोर कुरीतियों, अशिक्षा, अन्धविश्वास आदि को कवि ने स्पष्ट किया है तथा पूरे दलित समाज को बदलाव का सन्देश देते हुए दलितों में व्याप्त घोर अन्धविश्वास पर कटाक्ष किया है।

"उनका दूल्हा चढ़ घोड़े पर
घूमे सारा गाँव गली।
मेरी बेटी की शादी पर
कैसी आफत आन पड़ी।
जिन पैरों पर चल घोड़ी चढ़ आया वो
अलग पड़े हैं दोनों पाँव
मेरा गाँव, कैसा गाँव?
न कहीं ठौर, न कहीं ठांव।"[45]

यहाँ कवि द्वारा दलितों पर हो रहे सामाजिक हमलों के बारे में बतलाया है कि दलितों की शादी–समारोह अच्छी प्रकार मनाने पर गैर दलित उनसे जलते हैं और उन पर अनेक प्रकार से हमले कर उनको प्रताड़ित करते हैं।

"भोर होने से पहले
सड़क पर

झाड़ू लगाती
मेरी माँ
जैसे खरोंच रही हो
चुपचाप सीने को
फौलादी व्यवस्था के
अपने नाखूनों से।"[46]

'मेरी माँ' कविता में दलित स्त्रियों की स्थिति और उन पर हो रहे अत्याचारों का वर्णन किया है। जहाँ दलित स्त्रियों के श्रम एवं दूसरों की गन्दगी साफ करने जैसे घिनोने कार्य, हिन्दू धर्म में व्याप्त सामाजिक वर्ण-व्यवस्था पर प्रश्न खड़ा करते हैं।

"और मैं -
पढ़-लिखकर
बन गया -
मजिस्ट्रेट, डॉक्टर, इंजीनियर
फिर भी कहलाता हूँ भंगी-चमार
वाह रे हिन्दू धर्म
तेरा -
अजब चमत्कार।"[47]

दलित कवि सूरजपाल चौहान जातीय व्यवस्था पर अपने शब्दों का प्रहार करते हुए कहते हैं कि कोई दलित जब पढ़-लिखकर अच्छे पद पर पहुँच जाता है फिर भी वह दलित होने के कारण गैर दलितों की दृष्टि में उसकी हैसियत एक भंगी-चमार तक ही सीमित रह जाती है।

"आखिर क्यों व्याप्त है
तुम्हारी सोच में असफलता का भूत?
जूझने की हिम्मत पैदा कर
आशा और विश्वास के बीज बो

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

आगे बढ़
और अपनी सोच बदल।"[48]

'सोच बदल' कविता के माध्यम से कवि सामाजिक परिवर्तन की राह प्रशस्त करता हुआ, दलितों को यह सन्देश देना चाहता है कि सामाजिक न्याय, एकता, समानाधिकार, जागरूकता, शिक्षा आदि के द्वारा हम अपने अधिकारों का समुचित प्रयोग कर सकते हैं तथा समाज की धारणा को परिवर्तित कर एक नयी सोच विकसित कर सकते हैं जिसके द्वारा दलित में आशा एवं विश्वास का संचार होगा।

5.6 मोहनदास नैमिशराय की कविताएँ

मोहनदास नैमिशराय अपनी कविताओं में दलितों से सामाजिक परिवर्तन का आह्वान करते हैं तथा वर्णवादी घिनौनी सामाजिक कुरीतियों का विरोधकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए दलितों में चेतना का संचार करते हैं।

"ईश्वर की मौत
उस पल होती है
जब मेरे भीतर उठता है सवाल
ईश्वर का जन्म
किस माँ की कोख से हुआ
ईश्वर का बाप कौन?"[49]

कवि दलित जनता को इस सत्य से परिचित कराना चाहता है कि ईश्वर ब्राह्मणवादियों की कुटीलता और कमीनेपन की सृष्टिमात्र है, धर्म के नाम पर धन्धा करने वाले लोगों का व्यापार मात्र है। अत: दलित कवि इसे अवैज्ञानिक सोच बतलाता है तथा कविता के माध्यम से ईश्वर का तार्किक एवं वैज्ञानिक खण्डन भी करता है।

"दलितों के सीने जब
छलनी होते हैं
शब्द उभरते हैं
शब्द बनते हैं धारदार
जहर बुझे चाकू की तरह

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

शब्द ही तो थे
जो मनुस्मृति में लिखे गये
राम राज चला गया
पर शंबूक की चीख की
अनुगूंज अभी बाकी है
जैसे दलितों के पीठ पर चोट का निशान
शब्द सिसकते नहीं बोलते हैं
चोट करते हैं
जैसे दलित से हरिजन
और हरिजन से दलित।" [50]

अब वह समय आ गया है जिसमें दलित लोग शब्दों में निहित गूढ़ अर्थ को भी समझने लगे हैं जिसके कारण दलितों पर आक्रमण होते हैं। इसके बदले में दलित कवि शब्दों के माध्यम से प्रहार करना चाहते हैं तथा शब्दों का सही इस्तेमाल करके समतावादी समाज की स्थापना का प्रयत्न भी करते हैं।

"कलम के साथ
हर समय
तुम्हारे पास बन्दूक होनी चाहिए
शब्दों का विरोध करने वाले माफिया का
सामना करने के लिए
मेरी मानो
एक हो जाओ
चाहे तुम मजदूर हो या किसान
शिक्षित हो या अशिक्षित
पार्टी की हदों से
बाहर आ जाओ।" [51]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

मोहनदास नैमिशराय की यह कविता मजदूर, किसान और दलितों को यह सन्देश देती है कि तुमको पार्टी की सीमाओं से बाहर आकर एक मंच का निर्माण करना चाहिए, जिससे वर्णवादी विचारधारा को खत्म किया जा सके।

"कल मेरे हाथ में झाड़ू था
आज कलम
कल झाड़ू से मैं तुम्हारी गन्दगी हटाता था
आज कलम से।
मैं तुम्हारे भीतर की गन्दगी धोऊँगा
तुम वाचाल हो
मुझे मालूम है।
तुम चतुर हो
मुझे एहसास है
तुम धूर्त और व्यभिचारी हो
मैं भुक्तभोगी हूँ।" 52

यहाँ कवि का दृष्टिकोण संघर्ष एवं मानवता से प्रभावित है। वे इस बात को समझते हैं कि दलित समाज को किस तरह अपना हक हासिल करना है। इसके लिए कवि कलम के माध्यम से युद्ध की तैयारी के साथ मैदान में डटा है तथा उसका संघर्ष एक व्यापक मानवीय बोध में बदलने लगा है।

5.7 सुशीला टाँकभौरे की कविताएँ

सुशीला टाँकभौरे न केवल दलित कवयित्री है बल्कि दलित विमर्शकार भी है। उनकी कविताएँ दलित और स्त्री दोनों को संबल प्रदान करती है तथा सामन्वादी व्यवस्था पर प्रहार करती है जिसने दलित एवं स्त्रियों को अपने कब्जे में दबाकर रखा।

"पिंजरे में बन्ध मैना को
किस्सागोई पाठ पढाते रहे
लाज-शर्म का हिसाब लगाते रहे
तालाबन्द का हक जताते रहे

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

आज वह खुद्दार औरत
अपने आपको पहचान गई है
इसे यूँ न सताओ
वरना यह भी
नंगेपन पर उतर आयेगी
तुम्हारे सर्वस्व को नकारकर
तुम्हें नीचा दिखाएगी।"[53]

समाज ने जिस स्त्री को पराधीन और उपेक्षित बनाये रखा लेकिन अब समय आ गया है कि स्त्री अपने अस्तित्व को पहचान गई है और वह स्वयं अपने बन्धन तोड़ने के लिए समाज की घिनौनी मानसिकता पर प्रहार करती है।

"तू आज है
क्योंकि कल तू लड़ी थी
मौत के तूफान में
जिन्दगी की खातिर अड़ी थी
तू ऐसी ही पली
घुप्प अन्धेरे में जुगनू-सी जली
नई सुबह की आशा भरी कली।"[54]

दलित नारी का सभी क्षेत्रों में शोषण हो रहा है किन्तु वर्तमान समय में वह शोषक सामाजिक व्यवस्था को तोड़ना चाहती है। इस कार्य के लिए लेखिका नारी में संघर्ष चेतना भरने की कोशिश कर रही है।

"सदियों की गुलामी है
ऊपर देखने की आदत ही नहीं है
कैसे देखेंगे क्रान्तिसूर्य को
कैसे समझेंगे
जागृति और परिवर्तन के प्रकाश को।"[55]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यहाँ कवयित्री अपनी कविता 'हमारे हिस्से का सूरज' में यह बताती है कि हमारे हिस्से का सूरज कहाँ छिपा है और उस क्रान्ति सूर्य के माध्यम से दलितों को जागृत करने का प्रयास करती है तथा आगे यह भी कहती है कि दलित समुदाय अपनी स्थिति को समझे और डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को अपने भविष्य के विषय हेतु समझने का प्रयास करे।

"बरसों से
उसकी पैरों में वही है
दासता की बेड़ियाँ
हाथों में वही है
नरक सफाई के औजार
सिर पर भी वही है
त्याज्य अपवित्रता का बोझ
कोई परिवर्तन नहीं।"[56]

'यह कौन–सा समाज है' कविता में कवयित्री कहना चाहती है कि दलित समाज अभी तक परिवर्तित नहीं हुआ है। इस विषय पर वह आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है। कब तक तुम इस तरह की शोषित सामाजिक व्यवस्था में घुटते रहोगे, अब तो जागो और अपने अधिकारों के लिए लड़ो। कब तक इस तरह गन्दा कार्य करते रहोगे।

"मेरे भीतर के आकाश में
बवंडर गूँजता है
आँतों की ऐंठन
कलेजे को कचोटती है
सुनने की अकुलाहट में
श्रवण शक्ति
स्वयं के प्रश्न
हर बार
यही इतिहास दोहराया जाता है।"[57]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सुशीला टाँकभौरे यहाँ उन बिन्दुओं को रेखांकित कर जवाब चाहती है जिनके कारण औरत को गुलाम बनाया जाता है। उनका कहना यहाँ समीचीन प्रतीत होता है कि समाज ने नारी को अनेक प्रकार के बन्धनों में जकड़ रखा है जिसके कारण वह प्रताड़ित होती है।

"माँ-बाप ने पैदा किया था
गूँगा!
परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही
निश्चित परिपाटी पर
बैसाखियों के सहारे
कितने पड़ाव आये।" 58

भारतीय समाज की सनातनी व्यवस्था में औरत हमेशा किसी-न-किसी के संरक्षण में रहती आयी है। माँ, बेटी, पत्नी और बहन तक तो उसे स्वीकार करते हैं पर एक स्त्री के रूप में स्वीकार कर पाना पुरुष समाज के लिए कठिन लगता है। इसलिए लेखिका यहाँ बतलाती है कि समाज में हर लड़की गूँगी पैदा होती है तथा हमारा सामाजिक परिवेश उसे लंगड़ी बना देता है। यहाँ सुशीलाजी ने लड़की की वेदना का चित्रण करते समय दलित या गैर दलित में भेद नहीं दर्शाया है।

"सदियों से शोषित पीड़ित
दिवा स्वपनों को साकार करना चाहते हैं
बाबा साहब के सपनों को
जीवन में यथार्थ करना चाहते हैं।" 59

कवयित्री अपनी कविता 'दिवा स्वप्न' के माध्यम से शोषित-पीड़ित जनता को परिवर्तन और जागृत करने का सपना दिखाती है जिसमें वे बाबा साहब के सपने को साकार करने के लिए प्रयत्न करती है और सामाजिक बुराइयों को त्याग कर नये जीवन की शुरुआत करने की प्रेरणा देती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

5.8 कंवल भारती की कविताएँ

दलित कविता को एक नया स्वर देने वाले कवि कंवल भारती की पहचान इसलिए भी है कि उन्होंने अनेक भाषाओं में लिखी जाने वाली कविता को समकक्ष रखकर हिन्दी दलित कविता का मूल्यांकन करने का आधार तैयार किया। वे दलित कवियों की तरह वर्ण–व्यवस्था का विरोध करते हैं तथा सामाजिक समानता पर बल देते हैं।

"शायद ऐसा हो कि तुम्हारे हृदय में
धधकी कोई ज्वाला
भस्म करने को वर्जनाएँ
कि तभी कोई बदली मर्यादा की
बरस गयी होगी
और तुम्हारा अन्तर्मन शीतल हो गया होगा।"[60]

यहाँ कवि को एक शिकायत है कि यदि मार्क्सवादियों ने सामन्तवादी व्यवस्था को सैद्धान्तिक रूप में न देखकर व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में देखा होता तो आज भारत की समाज व्यवस्था का परिदृश्य कुछ अलग होता। फिर कवि का यह मानना है कि हमें निराश न होकर समय के साथ समस्याओं को समझना है तथा एक होकर सामाजिक–आर्थिक बदलाव के लिए संघर्ष करना है।

"वह चिड़िया भूख से नहीं
चिड़िया होने से पीड़ित थी
कवि इस अनुभव से गुजरा नहीं था
उसकी श्रेणी जन्म से पूज्य थी
वह कैसे जानता
गरीबी नहीं
सामाजिक बेइज्जती अखरती है!
वह कैसे जानता
वह चिड़िया भी इसलिए गुनहगार थी
चिड़िया जो मारी गयी।"[61]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

यहाँ गोरख पाण्डेय की कविता का हवाला देकर अपनी बात दोहराते हैं। जहाँ कवि ने भूख से ज्यादा इज्जत को महत्त्व दिया है। इस कविता में प्रमुख मुद्दा गरीबी नहीं, सामाजिक बेइज्जती है इसलिए आज का दलित भी यही सोचता है कि गरीब होने का इतना दु:ख नहीं है जितना दु:ख उसे सामाजिक अपमान का है।

''चिड़िया जो मारी गई' कंवल भारती की एक विशिष्ट कविता है, जिसमें गोरख पांडेय एक व्यक्ति नहीं, विचार की तरह आते हैं। जनवादी चेतना और दलित चेतना के बीच की सीमा को यह कविता परिभाषित कर देती है।"[62]

"आइए, इस नव वर्ष में
बहिष्कार करें,
ब्राह्मणवाद, सामन्तवाद और
पूँजीवाद का
इससे जन्मे जातिवाद और
फासीवाद का,
बहिष्कार करें उस राजनीति का
जो निभा रही है पुष्यमित्र की भूमिका।"[63]

आज इतिहास गवाह है कि दलित जातियों के विरुद्ध सवर्ण जातियों के बीच का गठबन्धन सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर मजबूत रहा तथा आजादी के बाद यह और भी मजबूत हो गया, इसलिए दलित कवि उन सभी वादों का बहिष्कार करने का फैसला लेते हैं जिसमें ब्राह्मणवाद, सामन्तवाद और पूँजीवाद, जातिवाद आदि व्यापक स्तर पर पनपे और राजनीति ने इनको संरक्षण दिया।

5.9 पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की कविताएँ

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का प्रसिद्ध काव्य संग्रह 'मूक माटी की मुखरता' के माध्यम से दलितों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण और वर्ण-व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त किया।

"उसने ही तो मुझे
अपने शस्त्र और शास्त्र के बल पर

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

शोषित, अपेक्षित प्रवंचित दलित बनाये रखा है।
फिर भी अभिशिप्त केवल मैं ही हूँ, वह नहीं।
क्योंकि भ्रम मेरा टूटा है, उसका नहीं
भाल तो वह भी तिरस्कृत
करने को परिधि में जा पहुँचा है।
और मेरा मान अस्मिता दर्पण
तिरस्कृत होकर मेरे पाँवों में
किरच-किरच हो बिखरा है
पर मेरा क्षोभ-क्रोध
इस सदियों के सन्ताप के अन्याय के विरुद्ध
सीने में सुनलगते ज्वालामुखी सा सुलग रहा है।" [64]

कवि हृदय इन अत्याचारों से विदीर्ण हो गया है और वह आक्रोशित होकर कहना चाहता है कि इन्हीं शैतानों ने मुझे शस्त्र और शास्त्रों का भय दिखाकर गुलाम बनाये रखा। लेकिन अब मैं जागृत हो गया हूँ, मेरा सन्ताप अब खौल चुका है। कवि के मन में सामाजिक शास्त्रों को जला कर नया शास्त्र रचने की आशा संचरित हो चुकी है क्योंकि उसके मन में उठे आक्रोश ने ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया है, जिससे परिवर्तन होकर रहेगा।

"हिचकोले है दु:ख के ऐसे
हमारी दृढ़ छाती भी दरक गई
स्नेह पार के गीतों की बांसरी भी
वर्ण जाति के सम्बोधन सुन-सुनकर
होठों से सरक गई क्योंकि
तुम्हारे दिल में सदियों से
भरी हुई थी जो आग घृणा की
आजादी के बाद भी वह लावा बनकर बह निकली।" [65]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

'घृणा की आग में' कविता के माध्यम से कवि ने सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। आजादी के 70 वर्ष बाद भी दलित घृणा, हिंसा, अपमान, अन्याय और शोषण का शिकार हो रहा है। उसके दु:ख उसे किसी भी तरह से यह अनुभव नहीं होने देते कि वह आजाद है, बल्कि वह अपने आप को हर प्रकार से पराधीन महसूस करता है, यहाँ कवि का मूल उद्देश्य वर्ण-व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करना है।

"मुझे उसी एक शब्द से अपमानित-प्रताड़ित किया
तो मेरा यह हंसिया-हथौड़ा तुम्हें बींध देगा
अपने तीखे गेंती से नाखूनों पर
मैं तुम्हारे तोंदिल शरीर को उछाल दूँगा
तुम्हें जमीन पर पछाड़ दूँगा
मैं तुम्हें अपने दमदार दाँतों से काट लूँगा
तुम्हारा कटि-प्रदेश कुचल दूँगा
यदि मुझे फिर अपमानित किया।"[66]

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी अपनी कविता 'मेरी भी सुनो' में अपनी आवाज में आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि दलितों का शोषण इसी तरह से होता रहा तो वे उग्र रूप धारण कर लेंगे और उनके अन्दर का सोया हुआ स्वाभिमान जागृत होकर शोषण करने वाले लोगों का कभी भी दमन कर सकता है। इस कविता में शिकस्त का शोक न होकर अस्मिता और हकदारी का जज्बा दिखाई देता है।

"तुम्हारी इसी सत्ता-व्यवस्था ने
सार्वजनिक कुओं-तालाबों से पानी लेने
सड़कों पर चलने
अपनी पसन्द के कपड़े और जेवर पहनने
खाना खाने
स्कूलों में पढ़ने
गाँव-बस्ती में घर बनाकर रहने का

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अधिकार छीनकर
इसको छुओ मत, इसके साथ खाओ मत
और इसके साथ विवाह मत करो की
वर्जनाओं–प्रतिबन्धों की काल–कोठरी में
कैद किया और अस्पृश्य बना दिया मुझे
भारत के इतिहास का यह सच
सामाजिक स्तर की सत्ता का
सच बना हुआ आज भी
आजादी के दशकों बाद
इसीलिए तो
तुम्हारा अलगाव चोट करता रहता है
सामने से भी
पीछे से भी
मेरे शिक्षित संगठित
और संघर्ष करते वजूद पर।"[67]

कवि ने अपनी कविता 'अलगाव की चोट' के माध्यम से सामाजिक असमानता, धर्म और जाति–व्यवस्था का खुलकर खण्डन किया है, क्योंकि जिस तरह से सवर्ण लोगों ने दलितों का शोषण किया है, उनके अधिकारों का हनन किया है, न उनको पीने का पानी, सड़कों पर चलने की अनुमति, खाना खाने, पढ़ने, घर बनाने जैसे मूल अधिकारों से वंचित रखा। इसके अतिरिक्त उन्हें सामाजिक रीति–रिवाजों और वर्जनाओं की काल–कोठरी में अस्पृश्य बनाकर कैद रखा।

"एक आदमी
अपने सिर पे
मैला–तसला रखे
कब से धरती को
नापता ही जा रहा है
एक औरत अँधेरे में

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

खरीटे भरती हुई गली–सड़क पर
झाड़ू–बुहारा करती
आँखों में सपना सजाती
शताब्दियों से दौड़ रही है
अपनी देह को ढंकते हुए।"[68]

'देह को ढंकते हुए' कविता में कवि कहना चाहता है कि मैं दलितों को देह ढंकते हुए कब देखूँगा अर्थात् इस घिनौनी कार्य से उन्हें कब मुक्ति मिलेगी। कवि उम्मीद लगाये बैठे हैं कि मेरी आँखें सदियों से एक ही सपना देख रही हैं कि दलितों को इन गन्दे कार्यों से कब मुक्ति मिलेगी।

5.10 कुसुम वियोगी की कविताएँ

कुसुम वियोगी की कविता 'हरिजन' में समाज की इस व्यवस्था पर आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं कि समाज में अनेक प्रकार की बुराइयाँ हैं जिनके कारण दलितों की स्थिति पशु–पक्षियों से भी बदतर है।

"कुत्ते, बिल्ली अथवा कोई जानवर,
मन्दिर, कुओं, पोखर एवं तालाबों में,
पानी पी सकते हैं।
परन्तु! हरिजन, आज भी!
उस पर
चढ़ नहीं सकते।"[69]

यहाँ कवि हमारी सामाजिक व्यवस्था पर विक्षोभ प्रकट करते हुए कहते हैं कि सदियों से सामाजिक आर्थिक संसाधनों पर सवर्ण लोगों का अधिकार रहा है तथा निम्न वर्ग को इन साधनों का उपयोग करना वर्जित है। सवर्ण समाज द्वारा दलित लोगों को कुत्ते बिल्ली से भी बदतर समझा जाता है।

"कितना चालाक है! रे।
साले ने बाँट कर रख दिया,
आदमीयत को चार वर्णों में

ब्राह्मण! क्षत्रिय! वैश्य! शूद्र!
हमारी तो कर दी गिनती
अन्त्यज और अछूतों में।" [70]

'राष्ट्रीय के नाम पर' कविता में मनुवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था का सच उजागर करते हुए बतलाते हैं कि इस वर्ण-व्यवस्था ने हमारा बँटवारा करके, हमको जाति-उप जातियाँ में बाँट दिया और मानवीय मूलभूत अधिकारों से आज तक वंचित रखा। यह दलित वर्ग की विडम्बना ही कही जा सकती है जिसके कारण शूद्र वर्ग जातियों के आगे भी उप-जातियों में बँटा हुआ है। यहाँ कवि का उद्देश्य मानवाधिकारों की माँग से है।

"कुछ करने के नाम पर
मिल जाती है तुम्हें
गली मुहल्ले से
इक्ट्ठी की जूठन, साक, तरकारी और बासी रोटिया।"[71]

वियोगी जी ने अपनी कविता 'जूठन' में दलितों की व्यथा का चित्रण किया है, जिसमें दलितों को गन्दगी साफ करने के लिए श्रम के रूप में मात्र जूठन मिलती है और यह झूठन सवर्ण समाज के लोगों द्वारा किए भोजन के उपरान्त बचा जूठा खाना होता है।

"मुझे ही घुमाया जाता है
निर्वस्त्र!
देखने को गुप्तांग
अपनी ही माँ-बहनों के सदृश्य
और बुझाना चाहते हो,
अपनी कुंठाओं की हवस।" [72]

दलितों की दयनीय स्थिति ही दलित नारी के शोषण का कारण बनती है क्योंकि आर्थिक और सामाजिक अभावों के कारण इन्हें सवर्ण परिवारों के काम करना पड़ता है जहाँ सवर्ण पुरुष इनको अपनी हवस का शिकार बनाते हैं। इस संवेदनशील नारी की दयनीय स्थिति को अपनी कविता 'सभ्यता के गाल पर' में चित्रित किया है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

"जब भी कभी
चढ़ाना चाहा आस्था का फूल
तुम्हारे ही मन्दिरों में
तो मुझे ही अछूत कहकर
दुत्कार दिया
तुम्हारी पाखण्डी व्यवस्था ने।" [73]

यहाँ मनुवादी व्यवस्था ने दलितों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा रखे हैं, जिनमें वे न तो विद्यार्जन, न मन्दिर प्रवेश, न अनुष्ठान आदि कर सकते हैं। वास्तविक रूप से वे इस हिन्दू धर्म का हिस्सा ही नहीं है। ऐसी भयानक स्थिति में दलितों का दमन आज भी जारी है।

"जिल्लत। अभाव के वातवरण में
भरपेट रोटी न मिलने पर
मरोड़ती हुई आँतों से
उठती हुई चिंगारी को
पानी से शान्त कर
कोल्हू के बैल-सा
ईंट-गारा ढोता
बाल मजदूर।" [74]

कविता 'बाप की व्यथा' में कवि बाल-मजदूर की दयनीय स्थिति का चित्रांकन करते हुए कहते हैं कि जहाँ एक दलित बालक के हाथ में पुस्तक, पैन, पैन्सिल व स्लेट होनी चाहिए थी वहाँ उसके हाथ में ईंट व गारा है। वह शिक्षा के मौलिक अधिकार से वंचित है, क्योंकि गरीबी के कारण बच्चे अपनी पढ़ाई नहीं कर पाते हैं और बचपन में ही काम में लग जाते हैं।

"मिमियाने, गिड़गिड़ाने की भाषा
क्रूरता नहीं जानती
गिड़गिड़ाने से

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

हो गया है कितना बौना
सामन्तियों के हाथों
बनकर रह गया है खिलौना
अच्छा हो उठ
बोल अधिकार की भाषा
तब स्वयं समझ जाएगा
परिवर्तन की भाषा?" 75

कुसुम वियोगी 'सामन्ती' कविता के माध्यम से अपना भाव स्पष्ट करना चाहते हैं कि दलितों का शोषण तब तक होता रहेगा, जब तक कि वे उसका सामना खुलकर नहीं करेंगे क्योंकि इन्होंने अपने आप को सवर्ण लोगों के हवाले कर दिया है और सवर्ण लोग इनकी मजबूरी का फायदा उठाकर इनका हर प्रकार से शोषण करते हैं। अत: कवि का यहाँ कहने का आशय यही है कि गिड़गिड़ाने से कोई फायदा नहीं होने वाला, अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए हमको परिवर्तन लाना होगा तथा सामन्ती व्यवस्था का खुलकर विरोध करना होगा।

"अब हम आजादी की साँस लेना सीख रहे हैं।
युग बदला है
परिभाषाएँ बदली हैं
खूद बदला है, जनून बदला है
अब उनकी बन्दूकें
हमारी छातीयों पर नहीं तनेंगी
वरन् हम ही फटेंगे, बनके 'बारूद'
जब तुम्हारे घर-बस्तियों व आँगन में
लेने को प्रतिशोध
सोचो! तब तुम्हें कैसा लगेगा?" 76

'प्रतिशोध' नामक कविता में यह बतलाया गया है कि दलित समाज अब जागृत और शिक्षित होकर अन्याय व अत्याचार का प्रतिकार करना सीख गया है तथा वे अब

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अपने अधिकरों के प्रति जागरूक हो गये हैं। यहाँ कवि ने दलित चेतना व संघर्ष को कविता के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया है।

5.11 लक्ष्मीनारायण सुधाकर की कविताएँ

दलित साहित्य में लक्ष्मीनारायण सुधाकर का नाम काफी चर्चित रहा है। इनके लेखन का प्रमुख क्षेत्र कविता है। इनकी कविताओं में व्यक्त आक्रोश और विरोध का स्वर तीखा होते हुए भी संयत, शालीन और रचनात्मक है। यह इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है।

"अश्वमेघ–गौमेघ यज्ञ से दूषित धरा–गमन था।
वर्ण–व्यवस्था जन्म जाति का कलुषित कुटिल चलन था।
मिथ्या मत–सिद्धान्त साधना अपनी–अपनी ढपली।
वाद–विवाद विवेक शून्य जन साधारण कठपुतली।।
'जनमेजय' के वरमेध यज्ञ को 'नागयज्ञ' बतलाया
शम्बूक सन्त का स्वयं राम ने वध कर अपयश पाया।।" [77]

सुधाकर जी ने अपनी कविता संग्रह 'उत्पीड़न की यात्रा' में सदियों से शोषित–प्रताड़ित दलित–दमित लोगों में स्वाभिमान सम्मान जगाने के लिए जाग्रत किया और शोषकों के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। आदिकाल से चली आ रही अन्याय–अत्याचारों की यात्रा को कवि ने अपने शब्द–बाण के माध्यम से रोकने का प्रयास किया है।

"जीव–जन्तु पशु–पक्षी–पौधे भिन्न घने हैं।
लेकिन मानव सभी एक से भूतल पर जितने हैं
फिर कैसा यह जाति–भेद मानव–मानव में माना
मिथ्याडम्बर का पूरा है किसने ताना–बाना?
रक्त–मांस के काले–गोरे नर–नारी समरूप
सब की है उत्पत्ति एक–सी मात कोख अनुरूप।" [78]

'मानव ही मानव का सबसे बड़ा शत्रु है' इस कथन को कवि ने यहाँ चरितार्थ किया है। मानव–मानव के बीच जो भेद होता है वह भेद जीव–जन्तु, पशु–पक्षी में नहीं है। इसका प्रमुख कारण विषमतामूलक सामाजिक–व्यवस्था है। इसका दुष्परिणाम दलित वर्ग

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

ने लम्बे समय से भोगा है जिसके कारण दलित कवि का मन गुस्से और आक्रोश से भरा है।

"मौका पाकर पापी हमको, जिन्दा ही बींध जलाते हैं।
दलितों के घर में आग लगा, ये होली रोज मनाते हैं।।
ये नीच कर्म करने पर भी, औरों को नीच बताते हैं।
आगरा बेलची-कांड यहाँ, हर रोज सताए जाते हैं।
नेता कोरा आश्वासन दे, घड़ियाली अश्रु बहाते हैं।
देते हैं दुहाई समता की, मन में न तनिक सकुचाते हैं।" [79]

कवि ने अपनी कविता 'स्वराज्य' में आक्रोश व्यक्त किया है कि यह युग दलितों के लिए काला युग है। यहाँ पर सभी जगह दलितों पर बार-बार अत्याचारों का सिलसिला जारी रहता है। इस शोषण, अत्याचार से मुक्ति के लिए दलितों को एकता के सूत्र में मजबूत बनकर अन्धकार रूपी इस युग को हटाना होगा।

"बलात्कार नारी से अब भी पुरुष निरंकुश करता है।
नारी के तन का मोल-भाव करने से कब वह डरता है।।
कितनी ही यहाँ द्रौपदियों का नित चीर-हरण अब होता है।
एकलव्य-कर्ण के साथ सदा अब भी धोखा ही होता है।।
बहू-बेटियाँ नित दहेज की बलि चढ़ाई जाती है।
सुहाग रात आने से पहले चिता चिनाई जाती है।।" [80]

यहाँ कवि ने 'आजादी' कविता के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि आज नारी पर अत्याचार जारी है और नारी तो दलितों में दलित मानी जाती है। उसका हर जगह मानसिक, शारीरिक शोषण होता रहता है। उसको किसी भी प्रकार कोई आजादी नहीं है।

"दलितों को पद-दलित बनाने का षड्यन्त ही जारी है।
आरक्षण से वंचित करने की पूरी अब तैयारी है।।
पढ़-लिखकर कुछ दलित पा गये ऊँचे पद सरकारी हैं।
पूँजीपति-सामन्त सवर्णों को खलते अति भारी है।।" [81]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधाकर की कविता 'वामन फिर आ रहा है' के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि आजादी के बाद दलितों की स्थिति में सुधार हुआ था लेकिन अब इस भूमण्डलीकरण के दौर में दलित फिर अपने आप को बौना–सा महसूस कर रहे हैं।

"बीत गई वह साल, घाव पर दिल के अभी हरे हैं।
कैसे स्वागत करूँ नई का, नैनन नीर भरे हैं।
बेकारी–भूखमरी–जहालत, कब तक और चलेगी?
नये साल में क्या सबको अब रोटी–दाल मिलेगी?" 82

'नई साल' शीर्षक कविता के माध्यम से उस समय का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। जब आजादी आने वाली थी तथा दलित जनता इधर–उधर ढूँढ़ रही थी कि पराधीनता और साधनहीनता में उत्सवों का आनन्द नहीं लिया जा सकता है। यहाँ कवि के द्वारा दलितों की दर्द भरी अनुभूति को महसूस किया गया है।

"धरती यह कर्म क्षेत्र पावन, मत बनो निकम्मे 'कर' वालो,
कल की पल की है आश नहीं। कल जो करना वह आज करो,
कल–कल करते कल जाता है, कल आ पाता है हाथ नहीं।" 83

कवि सुधाकर जी 'कर्मक्षेत्र' कविता के माध्यम से सवर्ण एवं सामन्तवादी व्यवस्था का विरोध करते हुए दलितों को भी कर्म करने का सन्देश देते हैं तथा साथ में यह भी कहते हैं कि जो भी करना है, उसको टालो मत, तुरन्त करो और कर्मवीर बनकर अपना उद्धार करों।

"दीपक ले ढूँढता हूँ, उजाले कहाँ है?
भूखों के वास्ते निवाले कहा हैं?" 84

इन पंक्तियों में दलितानुभूति का पक्ष उजागर किया गया है कि जब तक देश में एक बच्चा अनपढ़ रहे और किसी को भूखा पेट सोना पड़े, तब तक इस देश की विकास प्रक्रिया पर प्रश्नचिह्न ही लग जाता है क्योंकि अभी भारत की बड़ी आबादी शिक्षा से वंचित है, वहीं बहुत–से लोगों को एक समय का खाना नसीब नहीं होता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

5.12 डॉ. तेज सिंह की कविताएँ

डॉ. तेज सिंह प्रमुख दलित कवियों में से एक है उन्होंने अनेक दलित विषयक रचनाएँ लिखी तथा देशी-विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख भी प्रकाशित हुए।

"वह अन्धा युग था
जिसमें बंद थे शूद्रों की उन्नति के मार्ग
यदि करता था कोई शूद्र आत्मबल से अपना विकास
उसको कुचलने के लिए तैयार रहते थे
कपटी ब्राह्मण-दास-सम्राट्
सुनों, इस देश के ब्राह्मणवादी कवियों
सतयुग, द्वापर या त्रेता
सिर्फ तुम्हारे लिए 'स्वर्ण युग' थे
दलितों के लिए ये मरण युग थे
उनके लिए श्रेष्ठ है यह वर्तमान
जिसे तुम बताते हो कलियुग
शासक आज भी वही है,
आज भी होते हैं दलितों पर जुल्म
किन्तु दलित अब विद्रोह कर सकते हैं
उन्हें सत्ता से हटा कर
खुद शासक बन सकते हैं।"[85]

'आज का समय' कविता संकलन में तेज सिंह जी समाज में फैली अव्यवस्था पर करारा व्यंग्य करते हुए आक्रोश व्यक्त करते हैं कि समाज में दलितों पर परम्परा एवं पुरानी रूढ़ियों के द्वारा निरन्तर हमले होते हैं। इसलिए कवि यहाँ दलितों को यह सन्देश देता है कि दलित अन्धे युग की अन्धी गलियों में भटक न जाए। सतयुग, द्वापर, त्रेता ये युग ब्राह्मणवादियों के लिए स्वर्ण युग थे, दलितों के लिए तो मरण युग ही थे इसलिए कवि दलितों में यह चेतना जागृत करना चाहता है कि हमारा तो वर्तमान ही श्रेष्ठ है और इसके लिए हमको एक होकर विद्रोह करके इनकी निरंकुश सत्ता को ध्वस्त करना होगा।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

"अब कोई नहीं रोक सकता हमें दिन के उजाले में ग्राम–नगर घूमने से
अब कोई नहीं रोक सकता हमें, किताब पढ़ने, प्रवचन सुनने से
अब कोई को कोई नहीं टो सकता, समृद्धि धूप के टुकड़े बटोरने पर
लुटाते रहे जो सदियों से चाँद तारे, वे ही अब सजीला–गगन माँगते हैं
मिले तृप्ति पाकर जिससे चातक को, उसी स्वाति का एक कण माँगते हैं।[86]

डॉ. तेज सिंह ने अपनी कविताओं में शोषण से मुक्ति का सन्देश दिया है। अपनी कविता 'समता–सुधा का वरण माँगते हैं' में बतलाया है कि अब हम लोगों को कोई भी नहीं रोक सकता, न शिक्षित होने से, ग्राम–नगर में घूमने से, समद्धि के टुकड़े बटोरने से तथा अनेक प्रकार के स्वैच्छिक कार्य, जिनसे हमारी मूलभूत आवश्यकता पूरी होती है।

"यानि हर जगह
तुम्हारा आरक्षण उचित है
मेरा अनुचित
तुमको हराम का हलुवा उचित है
मुझको ईमानदारी और मेहनत की
रोटी भी अनुचित है
नहीं, तुमको सारा मक्खन
और मुझको छाछ भी नहीं
यह सब नहीं चलेगा
अब हर क्षेत्र में होगी
समान रूप से हिस्सेदारी
शासन प्रशासन से लेकर
मैला ढोने, जूती गाँठने
और झाड़ू लगाने तक के काम में भी
बाँटनी होगी समानता।"[87]

दलितों को मिले हुए आरक्षण से सवर्ण लोग चिढ़ते हैं। उनको यह काँटे की तरह चुभता है जबकि अब तक की सारी वर्णवादी सामाजिक व्यवस्था में सुविधाएँ सवर्णों के

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

लिए आरक्षित थी तथा सभी असुविधाएँ दलित, पिछड़े वर्ण के लिए। यहाँ दलित कवि की मानसिकता जाति, वर्ण–भेद–भाव मिटाकर एक समतावादी समाज के निर्माण की दिखाई देती है।

5.13 पूनम तुषामड की कविताएँ

पूनम तुषामड एक युवा दलित कवयित्री है। इनका काव्य संग्रह 'माँ मुझे मत दो' 2010 में प्रकाशित हुआ। इनकी कविताओं के बारे में जयप्रकाश कर्दम की मान्यता है कि "ये कविताएँ सवाल उठाती हैं और चेतना को झकझोरती हैं।"

"झाड़ू तसली और
कूड़े की विरासत
माँ मुझे मत दो।
मुझको पढ़ना, आगे बढ़ना
खुद को नये साँचे में गढ़ना
और सबको है जगाना
माँग कर खाने की आदत
और नसीहत
माँ मुझे मत दो।"[88]

दलित कवियों का एक ऐसा वर्ग उभरकर सामने आ रहा है जो परम्परावादी सामाजिक वर्ण–व्यवस्था के सभी आयामों को धिक्कारता है तथा सदियों से चली आ रही दलितों के शोषण की कहानी को रोकने का प्रयास करता है। दलितों द्वारा किये जाने वाले गन्दे कार्य, मैला ढोना, झाड़ू लगाना, जूते सिलना और दुनिया भर के गन्दे काम करना, जिनको करते–करते सदियों से दलितों की कई पीढ़ियां उसी में समा गयी लेकिन दलितों के शिक्षित होने के परिणामस्वरूप उनके अन्दर आत्माभिमान और आत्मचेतना की भावना जागृत हुई जिससे उन्होंने अपने असली वजूद को पहचाना।

"मुझमें है लड़के की ताकत
मुझमें है पढ़ने की हिम्मत
मुझमें है रचने की क्षमता

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

बेटी हूँ ये कह के
मुझको रोको न तुम।" [89]

अब वह समय आ गया है कि दलित स्त्रियाँ भी जाग्रत और शिक्षित होकर अपने ऊपर होने वाले अत्याचार और शोषण का मुकाबला करने को तैयार है तथा वे अपनों से कहती हैं कि मुझे परम्परागत रूढ़ियों के बन्धन में मत बाँधो।

"पर खबरदार!
अब मेरे समाज के हाथ में
भी चाबुक है शक्ति का
जो तुम्हारे दंभ को चूर-चूर करने का
रखती है हौसला।" [90]

अब दलित समाज भय से मुक्त और साहस से युक्त है। इन्होंने अब अन्याय और अत्याचार करने वालों को खुली चुनौती देना आरम्भ कर दिया है तथा सवर्ण लोगों से दो-टूक शब्दों में यह कह देते हैं कि अब ये झूठा अहंकार छोड़ दे, अन्याय, अत्याचार करना छोड़ दें वरना दलित समाज भी अब 'ईंट का जवाब पत्थर' से देना जानता है।

"बाबा! तुम सोचते होंगे
क्यों पैदा हुआ ऐसा पुत्र?
पर बाबा! मैं भागा
क्योंकि मुझे मंजूर नहीं
कोई करे मेरा अपमान
अछूत कहकर
माँ ढोए सर पर मैला
घर-घर जाकर
बिना वजह ही
मास्टर जी बरसाएँ मुझ पर डंडे
और दे मुझे गाली मुर्गा बनाकर

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

मैं भागा नहीं भगाया गया हूँ
गाँव में इतना सताया गया हूँ।" [91]

यहाँ दलितों पर अन्याय, अत्याचार इस तरह से किए जाते हैं कि उसे अपने बचाव के लिए मजबूरी में गाँव छोड़ना पड़ता है। लेकिन दलितों को अपने मान और अपमान का एहसास होता है। फिर भी उसकी मजबूरी उसे लाचार बना देती है और वह विवश होकर अन्याय सहन करता है या वहाँ से पलायन कर जाता है। यहाँ कवयित्री ने दलितों के अपमान और उसकी मजबूरी/विवशता को वाणी प्रदान की है।

5. 14 अन्य कवियों की कविताएँ

डॉ. एन. सिंह

डॉ. एन. सिंह के द्वारा रचित 'सतह से उठते हुए' काव्य संग्रह एक प्रकार से उनके द्वारा भोगी हुई जिन्दगी का काव्यमय चित्र है।

"मैं लिखता हूँ सच को सच, बकवास नहीं लिखता।
सपने तो सपने स्वप्निल, इतिहास नहीं लिखता।।
कलम लिखे वह गीत, जिसे सुन पर्वत हुंकार भरे।
मैं शब्दों में ढाल काम की प्यास नहीं लिखता।।" [92]

यहाँ कवि अपने लेखन के उद्देश्य स्पष्ट करना चाहता है कि वह अपनी कलम से कोरी बकवास नहीं लिखता है। वह ऐसा लिखना चाहता है जिससे समाज में परिवर्तन हो तथा शोषित मानव अपने बारे में सोचने पर विवश हो कि इस प्रकार की अव्यवस्था का अन्त किस प्रकार किया जाय।

"जिस तरफ भी जाइए ये शोर है।
इस शहर के लोग आदम खोर हैं।।
रक्तरंजित हाथ खादी में छिपाए
घूमते निर्द्वन्द्व लम्पट चोर हैं।" [93]

यहाँ कवि कहना चाहता है कि कहीं पर भी शान्ति नहीं है। जहाँ भी जाओ चारों ओर अराजकता का माहौल है। इन्होंने विशेषकर नेताओं पर व्यंग्य किया है कि वे अपने

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

रक्तरंजित हाथों को खादी की ओट में छिपाए निश्चिन्त घूमते रहते हैं तथा समाज में अनावश्यक अव्यवस्था पैदा करते हैं।

"शाम होते ही मुखौटे बदलने लगते हैं लोग
रंग गिरगिट–सा बदलकर टहलने लगते हैं लोग।" [94]

कवि ने यहाँ ऐसे लोगों की तरफ इशारा किया जिनका निरन्तर नैतिक पतन होता जा रहा है। वे व्यक्ति अन्दर से कुछ और तथा बाहर से बहुरुपिये बनकर समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं तथा ऐसे लोग कहते कुछ और करते कुछ और हैं।

जयप्रकाश लीलवान

इनकी कविताओं का मूल स्वर आक्रोश और प्रतिरोध हैं जो समय और समाज के साथ जिरह करती हुई नजर आती हैं और इनकी प्रस्तुति भी बेहद प्रभावशाली है।

"वर्ण–धर्म की वैचारिकी के
सुडौल उरोजों का
जहरीला दूध पीकर
विखण्डन के खप्पर भरने वाली
डायन है – हमारे देश की जाति–प्रथा।" [95]

हिन्दू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था ने जाति प्रथा को जन्म दिया और व्यवस्था के कारण आज के समय में दलितों पर अत्याचार हो रहे हैं तथा इसी के कारण अनेक दलित परिवार अपने मौलिक अधिकार, जैसे—शिक्षा, आवास आदि को तरस गये हैं क्योंकि इस जाति–प्रथा ने एक प्रकार से डायन का रूप धारण कर लिया है।

"उन्होंने तो बस
अन्धविश्वासों के बोझ से
लोगों की कमर तोड़ने
और वर्ण धर्म के सिर में से
दंगे झाड़कर
भय फैलाने के कामों को
प्रगति कहना ही सीखा है।" [96]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

धर्म तथा धर्म की व्यवस्था ने दलित समाज को सदियों से मूलभूत अधिकारों से दूर रखा तथा उनका शोषण करते रहे। इसी समस्या को कवि ने यहाँ केन्द्र में रखा है और कहा है कि सत्ता और धर्म के ठेकेदारों ने दलितों में भय पैदा कर दिया था जिससे वे न अपने मूलभूत अधिकारों को पहचान पाये और न ही प्राप्त कर पायें।

"अब हमें निश्चय हो गया है
कि व्यवस्था की इस माँद में
सदियों से सिर टिकाकर
रोने को मजबूर दलितों ने
इसकी जड़ों में मट्ठा डालने की
सर्वोच्च जरूरत को समझ लिया है।"[97]

पहले दलितों ने गुलामी को अपनी नियति मान रखा था लेकिन अब स्थिति परिवर्तित हो गयी है। अब दलितों में व्यापक स्तर पर चेतना जागृत हो गयी है तथा वे अपने वजूद को पहचान गये हैं। साथ ही आज का दलित समाज की प्रचलित रूढ़ि एवं वर्णवादी व्यवस्था को ढोने से साफ इन्कार करता है

"जिन गाँवों में
दलितों का जिक्र आते ही
कातिलों की पंचायतें
पड़खड़ी कुतिया की तरह गुर्राकर
पगड़ी को काट खाए
वह अक्षांश
वह दिशा
वह देश
किन अर्थों में हमारा है?"[98]

यहाँ पर कवि जयप्रकाश लीलवान जी यह बतलाना चाहते हैं कि भारत की आजादी के सत्तर साल बाद भी दलित लोग विस्थापितों के जैसा जीवन जी रहे हैं। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है। विशेषकर यह सवाल सवर्ण लोगों के लिए जो दिन-रात गरीबों का शोषणकरते रहते हैं।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

"मैंने अँधेरे से पूछा—
'पीड़ितों की बस्ती में
तू रहेगा कब तक?'
काली बिल्ली की निगाहों सा फैलाकर आँखें
वह बोला—
सवर्णों के दिल और दिमाग पर
मनु का राज है
तक तक।" [99]

मराठी कवि दामोदर मोरे ने प्रतीकों के माध्यम से मनुवादी वर्ण–व्यवस्था पर व्यंग्य किया जहाँ पर यह बतलाने की कोशिश की है कि दलितों का शोषण तब तक होता रहेगा जब तक यह वर्ण–व्यवस्था का ताना–बाना इसी रूप में बुना रहेगा।

"वही दो हाथ
वही दो पैर
वही दो आँखें
दराती लगने से कटने वाले
लहू भी लाल
फिर मैं अलग–थलग क्यों?
यही तो सदियों का सन्ताप है
निश्चय ही
यह मनु द्वारा किया गया पाप है।" [100]

यहाँ कवि राजेन्द्र बड़गूजर का काव्य संग्रह 'मनु का पाप' में प्रमुख रूप से अस्पृश्यता और मनुवादी वर्ण–व्यवस्था को कन्द्र में रखकर अपना कविता–कर्म सम्पादित किया है। उन्होंने दलितों के साथ भेद–भाव और जातीय उत्पीड़न का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है।

"औरत होने की वजह से
बहुत कुछ झेलना पड़ता है

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

रात को दिन, दिन को रात
सूरज को चाँद कहना पड़ता है।" [101]

दलित कवयित्री रजनी तिलक ने नारी जीवन के यथार्थ को अपने शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है कि नारी चाहे सवर्ण वर्ग की हो या दलित वर्ग की उसे इस पुरुष प्रधान समाज में वही कहना एवं करना पड़ता है जो पुरुष चाहता है, विशेषकर नारी दलितों में भी दलित होती है।

"मैंने अब उठा ली है कलम
झाड़ू के बदले
करेंगे साफ तुम्हारी सारी गन्दगी
बचाएँगे हम
देश की टूटती एकता को।" [102]

दलित कवि की मानवीयता का स्वर विद्रोह में परिवर्तित होकर दलित कविताओं में मुखरित हुआ है जिसमें उनके द्वारा मानवीय एकता के लिए झाड़ू को त्याग कलम उठाने की बात कही गयी है जिससे सवर्णों की मानसिक गन्दगी को साफ कर देश की एकता और अखण्डता को कायम रखा जा सके।

निष्कर्षत: दलित कविता का प्रमुख लक्ष्य दलितों की वेदना, यातना और उनके जीवनानुभवों को वाणी देना और सामाजिक न्याय प्राप्त करने हेतु समाज व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करना है। दलित कविता का प्रमुख कार्य वर्ण-व्यवस्था आधारित जाति प्रथा का उन्मूलन करना है तथा इसके माध्यम से दलित अपने अधिकार को पहचान कर अपमान, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खड़े होकर सामना कर सके। संक्षेप में कहें तो दलित कविता में दलित वर्ग के आक्रोश, विद्रोह, उत्तेजना, तनाव और छटपटाहट की प्रधानता है, वहीं नकार, बहिष्कार और विद्रोह का स्वर भी प्रखर है।

सन्दर्भ

1. माताप्रसाद — दलित साहित्य में प्रमुख विधाएँ, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 7
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि—दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009, पृ. 35

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

3. ओमप्रकाश वाल्मीकि — बस्स! बहुत हो चुका (काव्य संग्रह), पृ. 79-80
4. वही, ('यातना' कविता), पृ. 34
5. वही, ('बाहर आयेंगे एक दिन' कविता), पृ. 21
6. वही, ('वह दिन कब आएगा' कविता), पृ. 103
7. वही, पृ. 13
8. वही ('जाति' कविता), पृ. 78
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि — सदियों का सन्ताप, पृ. 2
10. वही, पृ.
11. वही, पृ.
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि — अब और नहीं (जाति), पृ. 20-21 (राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली)
13. वही, (अस्थि विसर्जन), पृ. 12
14. वही, पृ. 69
15. वही, पृ. 13
16. वही, (साहित्यों का सन्तोष), पृ. 6-7
17. बस बहुत, पृ. 51
18. जयप्रकाश कर्दम — दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. 73
19. सं. जयप्रकाश कर्दम — गूँगा नहीं था मैं, पृ. 11
20. वही, पृ. 36
21. वही, पृ. 75
22. वही, पृ. 16
23. वही, पृ. 17-18
24. वही, (अस्वीकृति), पृ. 33-34
25. वही, (दमन की दहलीज पर), पृ. 38
26. डॉ. जयप्रकाश कर्दम — बस्तियों से बाहर, पृ. 13
27. वही, पृ. 30
28. वही, पृ. 61
29. वही, पृ. 65
30. जयप्रकाश कर्दम — तिनका तिनका आग, पृ. 17
31. वही, पृ.
32. वही, पृ.
33. वही (अस्मिता), पृ. 11
34. वही (कलम), पृ. 30

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

35. वही, (भगवान मत बनाओ), पृ. 22
36. श्योराज सिंह बैचेन — क्रौंच हूँ मैं, पृ. 21 (सहयोग प्रकाशन, दिल्ली)
37. वही, पृ. 34
38. वही, पृ. 36
39. वही, पृ. 36
40. वही, पृ. 39
41. श्यौराज सिंह बेचैन — दलित निर्वाचिताएँ, पृ. 97
42. सूरजपाल चौहान — क्यों विश्वास करूँ, पृ. 22
43. सूरजपाल चौहान — प्रयास, पृ. 57
44. सूरजपाल चौहान — क्यों विश्वास करूँ, पृ. 45
45. वही, पृ. 23
46. सूरजपाल चौहान — कब होगी वह भोर, पृ. 56
47. वही, पृ. 43
48. सूरजपाल चौहान — क्यों विश्वास करूँ, पृ. 42
49. मोहनदास नेमिशराय — दलित निर्वाचित कविताएँ, (सं. कंवल भारती), पृ. 107
50. मोहनदास नैमिशराय—भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर (सं. विमल थोराट, सरज बडत्या), पृ.45
51. मोहनदास नैमिशराय — दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. 101
52. वही, पृ. 102
53. सुशीला टाँकभौरे — तुमने उसे कब पहचाना, पृ. 40-41
54. मुकेश मानस — पतंग और चरखड़ी, पृ. 78
55. सं. डॉ. सुशीला टाँकभौरे — हमारे हिस्से का सूरज, पृ. 3
56. वही, पृ. 12
57. मोहनदास नैमिशराय — दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. 141
58. वही, पृ. 142
59. सं. डॉ. सुशीला टाँकभौरे — हमारे हिस्से का सूरज, पृ. 48
60. कंवल भारती — दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. 206
61. कंवल भारती — तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?, पृ. 29
62. भूमिका, ओमप्रकाश वाल्मीकि — तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती? कंवल भारती, पृ. 2
63. कंवल भारती — दलित चेतना की कविता (सं. रमणिका गुप्ता), पृ. 21
64. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी — मूक माटी की मुखरता, पृ. 26
65. वही, पृ. 46
66. सं. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी — मेरी भी सुनो, पृ. 13

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

67. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी — मूक माटी की मुखरता, पृ. 12
68. वही, पृ. 39
69. कुसुम वियोगी — व्यवस्था के विषधर, (हरिजन) अपना प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ. 10
70. वही, (राष्ट्रीयता के नाम पर), पृ. 32
71. वियोगी कुसुम — टुकड़े-टुकड़े दंश, (जूठन), पृ. 83
72. वही, (सभ्यता के गाल पर), पृ. 34
73. वही, (जब भी कभी), पृ. 38
74. वही, (बाप की व्यथा), पृ. 43
75. वही, (सामन्ती), पृ. 87
76. वही, (पिंजरें), पृ. 90
77. लक्ष्मीनारायण सुधाकर — उत्पीड़न की यात्रा, पृ.
78. वही, पृ. 13
79. वही, (स्वराज्य), पृ. 28
80. सं. लक्ष्मीनारायण सुधाकर — उत्पीड़न की यात्रा, पृ.20
81. लक्ष्मीनारायण सुधाकर — वामन फिर आ रहा है, पृ. 17
82. वही, पृ. 20
83. वही, पृ. 67
84. वही, पृ. 76
85. सं. डॉ. तेज सिंह — आज का समय, पृ. 17
86. वही, पृ. 33
87. डॉ. तेजसिंह — दलित साहित्य (सं. जयप्रकाश कर्दम), पृ. 41
88. पूनम तुषामड — माँ मुझे मत दो (सफाई कर्मचारी), आन्दोलन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 43
89. वही, पृ. 44
90. वही, पृ. 78
91. वही, पृ. 85-86
92. डॉ. एन. सिंह — सतह से उठते हुए (राज पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली), पृ. 76
93. वही, पृ. 70
94. वही, पृ. 53
95. जयप्रकाश लीलावान — अब हमें ही चलना है, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली, पृ. 55
96. वही, पृ. 34
97. वही, पृ. 68
98. वही, पृ. 39

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

99. दामोदर मोरे — सदियों के बहते जख्म (कविता संग्रह) अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, टैगोर नगर, विक्रोली (पूर्व) मुम्बई, प्रथम संस्करण, दिसम्बर, 2001, पृ. 133

100. राजेन्द्र बडगूजर — मनु का पाप (कविता संग्रह), सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, हरियाणा, संस्करण 2003, पृ. 13

101. संपा. कंवल भारती — दलित निर्वाचित कविताएँ, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 145

102. डॉ. सी. बी. भारती — आक्रोश, पृ. 12

❑

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

षष्ठ अध्याय

समकालीन दलित आलोचना

6.1 भूमिका

साहित्य की एक निश्चित पैमाने पर समीक्षा करने को आलोचना कहा जाता है। जहाँ आलोचना का प्रमुख कार्य साहित्यिक कृतियों के गुण-दोष का उदाहरण सहित विवेचन एवं विश्लेषण किया जाता है, वहीं आलोचना अपने समय और परिवेश के सन्दर्भ में किसी कृति के अन्तस्थल तक पहुँचने का माध्यम भी है।

हिन्दी दलित साहित्य की आलोचना सामान्य आलोचना से कुछ भिन्न है। यहाँ दलित साहित्य का आलोचक एक तटस्थता के साथ कृति के अन्त:स्थल तक जाकर उसके मर्म को उजागर करता है जिसमें दलित लेखकों के द्वारा रचित कृतियों की, विशेषकर दलित आलोचकों के द्वारा की गई आलोचना के सन्दर्भ में बात की गई है। पिछले कुछ समय से हिन्दी में भी दलित आलोचनाएँ उभरकर सामने आयी हैं जिनमें विशेषकर दलित लेखक-लेखिकाएँ परस्पर रचनाओं की समीक्षा लिखते रहे हैं। इनमें एक ओर प्रमुख रूप से प्रगतिशील समझे जाने वाले बड़े लेखकों की रचनाओं के बारे में कुछ स्थापनाओं को चुनौती देने की बात सामने आती है वहीं दूसरी ओर बड़े दलित कवियों को द्विज आलोचकों के कब्जे से बाहर निकालने का कार्य भी दलित आलोचना में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

दलित आलोचक बिना किसी भय और भेद-भाव से मुक्त होकर अपनी आलोचना प्रस्तुत करते हैं जिसके कारण आलोचना प्रामाणिक और विशिष्ट मानी जाती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' की भूमिका में आलोचना के सन्दर्भ में लिखा है कि "दलित लेखकों द्वारा आत्मकथाएँ लिखने की जो छटपटाहट है

वह भी इन स्थितियों की ही परिणति है। सामाजिक अन्तर्विरोध से उपजी विसंगतियों ने दलितों में गहन नैराश्य पैदा किया है। सामाजिक संरचना के परिणाम बेहद अमानवीय एवं नारकीय सिद्ध हुए हैं। सामाजिक जीवन की दग्ध अनुभूतियाँ अपने अन्त: में छिपाए दलितों के हीन-दीन चेहरे सहमे हुए हैं। इन भयावह स्थितियों के निर्माता कौन है? दोहरे सांस्कृतिक मूल्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी ढोते रहने को अभिशप्त जनमानस की विवशता साहित्य के लिए जरूरी क्यों नहीं है? क्यों साहित्य एकांगी होकर रह गया है? ये सारे प्रश्न दलित साहित्य की अन्त:चेतना में समायोजित है।"[1]

दलित आलोचना भारतीय परम्परा की आलोचना की उन संरचनाओं का खण्डन करती है तथा उनके प्रभुत्ववादी निर्मितियों को खारिज करते हुए भारतीय समाज में व्याप्त वर्णवाद, विशेष तौर पर सामन्ती वर्णवाद के खिलाफ रचित साहित्य के लिए एक नवीन आलोचनात्मक पद्धति की माँग करती है।

6.2 हिन्दी दलित आलोचकों की भूमिका

हिन्दी दलित आलोचना के क्षेत्र में दलित आलोचकों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित आलोचक कर्मकाण्डी, अन्धविश्वासी, पौराणिक मान्यताओं से परे हटकर भाग्य भगवान् जैसी बातों को मानने के पक्षधर नहीं है क्योंकि दलित साहित्य में जाति आधारित शोषण, दमन, उत्पीड़न के खिलाफ विरोध का भाव अभिव्यक्त हुआ है। अत: इस साहित्य की भाषा कड़वाहट, आक्रोश और संघर्ष से भरी हुई है जो गैर दलित विचारकों की रचना पद्धति से परे है। दलितों की मान्यता है कि दलित साहित्य का सही आलोचक दलित ही हो सकता है।

6.3 ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओमप्रकाश दलित साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर हैं जिन्होंने दलित लेखन में एक समर्थ पहचान बनाई है। इन्होंने कथाकार, आलोचक के साथ अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं पर भी अपनी कलम चलाई।

वाल्मीकि जी ने अपनी आलोचना कृति 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में दलित साहित्य और उसकी सोच एवं व्यापाकता को वर्णित किया है। बजरंग बिहारी को दिए साक्षात्कार में वाल्मीकि जी का पुस्तक के सन्दर्भ में कथन है कि, "यह सही है कि

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सौन्दर्यशास्त्र पर लगातार काम करते रहने की जरूरत है। जो एक किताब या एक व्यक्ति के द्वारा नहीं बनाया जा सकता है। यह एक सामूहिक विचार है, जो एक प्रक्रिया के तहत ही रचनात्मक रूप ग्रहण करेगा। मैंने जब यह पुस्तक लिखी थी तो दलित–विमर्श के नाम पर अनेक भ्रम फैलाए जा रहे थे। यह पुस्तक उन भ्रमों को दूर करने की कोशिश भर थी। उन पाठकों, लेखकों, आलोचकों के सामने एक खाका रखने का प्रयास किया था, जो दलित साहित्य के आन्दोलन में रुचि रखते हैं। दलित साहित्य सौन्दर्यशास्त्र की बुनावट पारम्परिक, पाश्चात्य और रामचन्द्र शुक्ल की अवधारणाओं से नि:सन्देह अलग होगी और किसी भी रचना को सामाजिक सन्दर्भों से जोड़गी। साहित्य का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन जरूरी है। दलित साहित्य, साहित्य और समाज के सम्बन्धों को ज्यादा गम्भीरता से लेता है। सौन्दर्यशास्त्र का जो स्वरूप बनेगा वही दलित साहित्य की ठीक–ठाक व्याख्या भी कर पायेगा।"[2]

वाल्मीकि जी की यह पुस्तक उन्हें एक अच्छे आलोचक के रूप में परिलक्षित करती है तथा दलित साहित्य के आलोचनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का प्रयास भी। इस पुस्तक में दलित चेतना के प्रत्येक पहलू पर विस्तार से विश्लेषण किया है। यह बात भी सही है कि वाल्मीकि जी का यह प्रथम प्रयास था। इसी प्रयास के साथ वाल्मीकि जी ने एक तरह से भिन्न प्रकार की दलित साहित्य आलोचना पद्धति की माँग को पूरा किया तथा एक आलोचक के रूप में उनका यह प्रयास दलित साहित्य के सारे सरोकारों को उसी स्थिति में पहुँचाना और उसी रूप में व्याख्यायित करना है, जिस स्थिति में भारतीय समाज के अन्दर दलित समाज के साथ होता रहा है।

6.4 डॉ. एन. सिंह

डॉ.एन. सिंह ने कविता, गजल, नाटक, शोध, विश्लेषण तथा आलोचना आदि सभी विधाओं पर अपनी कलम चलाई तथा आलोचक, विचारक और दार्शनिक होने पर भी उन्होंने कवि की भूमिका निभाई। उनकी आलोचना का पैनापन भी कविता को चमक प्रदान करता है। उनका सही नाम नगीना सिंह है। रमणिका गुप्ता ने अपनी पुस्तक में डॉ. एन. सिंह के बारे में लिखा है कि "हिन्दी दलित साहित्य अपने खोल से बाहर आकर अपने पंख फड़फडा कर दबी आवाज में जब चहचहाने का प्रयास कर रहा था तब डॉ.

एन. सिंह ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने इन नवजात शिशु को सहलाया, पोषा और उड़ने की केवल विधाएँ ही नहीं बताई बल्कि उसकी उड़ान के लिए एक अपने आकाश के निर्माण की योजना भी बनाई जहाँ वह मुक्त, निर्बाध, स्वतन्त्र होकर उड़े और ऊँची उड़ान भरने का सपना पाल सके।"[3]

डॉ. एन. सिंह स्वयं दलित साहित्य के महान हस्ताक्षर तो हैं ही साथ ही उन्होंने अन्य दलित साहित्यकारों की रचनाओं से परिचित करवाने का बीड़ा भी उठाया है। इनके आलोचनात्मक ग्रन्थों में 'दलित साहित्य : चिन्तन के विविध आयाम', 'सन्त कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेय' है।

'सन्त कवि रैदास : एक मूल्यांकन और प्रदेय' नामक ग्रन्थ में दलित साहित्य एवं दलित चेतना का साहित्य दोनों को अलग किया है और एक नवीन अवधारणा भी स्पष्ट की है कि "दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है, शेष साहित्य दलित सहानुभूति या दलित-चेतना का साहित्य है।"[4]

हिन्दी के महान विचारक और चिन्तक पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है कि, "वैचारिक कर्म की इस मशाल को नया तेल देकर नयी जोत देने का यह प्रयास एक ओर जहाँ एक वर्ग विशेष को अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराएगा वहीं दूसरी ओर आलोचना के नये कीर्तिमान भी स्थापित करेगा।"[5]

दलित साहित्य के बारे में डॉ. एन. सिंह स्वयं कहते हैं कि, "मेरी मान्यता है कि दलित चिन्तन एक दर्शन भी है जो हमें वह दृष्टि देता है कि हम समकालीन घटनाक्रम को दलित हित की दृष्टि में देखें और जानने का प्रयास करे कि भविष्य में अमुक घटना का दलित जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। और अगर यह प्रभाव प्रतिकूल है तो उससे बचने का क्या रास्ता है। हमारी दृष्टि जितनी पारदर्शी और दूरदर्शी होगी हमारा लेखन उतना ही सार्थक व प्रभावी होगा।"[6]

इसलिए कहा जा सकता है कि डॉ. एन. सिंह के रूप में दलित साहित्यकारों के बीच ऐसा समीक्षक नहीं होता तो दलित साहित्य का इतना प्रचार-प्रसार नहीं होता। यह बात शतप्रतिशत खरी भी उतरती है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

6.5 डॉ. जयप्रकाश कर्दम

हिन्दी दलित साहित्य को सामने लाने व उसको स्थापित करने में डॉ. जयप्रकाश कर्दम का जाना पहचाना नाम है। उन्होंने दलित साहित्य के बुनियादी सारोकारों को उजागर किया तथा दलित साहित्य को एक दिशा प्रदान की। उन्होंने दलित साहित्य को लेकर अनेक प्रकार की रचनाएँ प्रकाशित की। दलित साहित्य के बारे में लिखते हैं कि, "दलित साहित्य दलित आन्दोलन का एक हिस्सा है। यह शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध एक हथियार है। दलित साहित्य का मूल उद्देश्य दलित समाज में जातीय स्वाभिमान और आत्मगौरव की भावना पैदा करना, उसको उसकी क्षमता और सम्भावनाओं से परिचित कराना तथा आगे बढ़ने और प्रगति करने के लिए प्रेरित करना और उसका मार्गदर्शनकरना है।"[7]

डॉ. जयप्रकाश कर्दम की आलोचना कृति 'इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन साहित्य एवं समाज चिन्तन' में दलितों की वर्ण जाति की समस्या, समाज में उनके मान–सम्मान एवं स्वीकृति की समस्या तथा सवर्णों द्वारा घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार के पात्र होने के कारण दलित हमेशा हीनता का भाव महसूस करते हैं, जिससे वे जीवन भर उभर नहीं पाते हैं। ऐसी दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण कर दलितों से जुड़ी ज्वलन्त समस्याओं को तार्किकता के साथ उठाया है। जयप्रकाश कर्दम का आलोचनात्मक ग्रन्थ–'धर्मान्तरण और दलित' में दलित विचारकों, सामाजिक चिन्तकों, पत्रकारों तथा अनेक लेखकों के लेख संकलित है जिसमें धर्म तथा धर्मान्तरण जैसे ज्वलन्त मुद्दों पर खुल कर चर्चा की है। जयप्रकाश कर्दम जी का नवीन आलोचनात्मक ग्रन्थ 'श्री लाल शुक्ल कृत राग दरबारी उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि आज राजनीतिक वर्चस्व, जो सामान्यत: गाँवों से लेकर महानगरों तक समान रूप से अपने विकृत रूप में फैल गया है तथा इसमें सामाजिक बदलाव जितना तेजी से हो रहा है उतना ही समाज में भ्रष्टाचार फैल रहा है। चरित्रता और नैतिकता का धीरे–धीरे पतन होता जा रहा है। इन सारी समस्याओं पर इस कृति में विश्लेषण किया गया है जो वर्तमान समय में भारतीय परिवेश को समझने की एक नई दृष्टि प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में डॉ. जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि, "आज सबसे बड़ी सच्चाई झूठ है, सबसे बड़ा पुरुषार्थ भ्रष्टाचार है, सबसे बड़ी नीति अनीति है। समाज में सब चोर है, सब रिश्वत लेते हैं, सब छल फरेब या धन और लाठी की ताकत से अपने अभिमान में विजयी होते हैं।"[8]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

6.6 रमणिका गुप्ता

रमणिका गुप्ता दलित साहित्य की एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। साहित्य के प्रति इनका योगदान प्रशंसनीय है। ये स्वयं दलित जन्मना न होते हुए भी एक सशक्त दलित साहित्यकार बन जाना अपने आप में अनूठी मिशाल हैं। इन्होंने दलित समाज की उस स्थिति को जाना जहाँ दलित समाज पीड़ा और संत्रास में व्यथित हो रहा था। उसी के अनुरूप उनकी भाषा विकसित हो रही है। इसके बारे में इन्होंने कहा है कि, "दलित साहित्य को दलित लिखता है। वह वंचनाओं, निषेधों, प्रतिबन्धों और अवरोधों के बीच जिन्दा रहने का आदी होता है—इस साहित्य को वह लिखता है जो यथार्थ की जमीन पर खड़ा है, कल्पना के आकाश पर नहीं। इसलिए उनकी भाषा कुलीन नहीं हो सकती।" [9]

रमणिका गुप्ता का आलोचनात्मक ग्रन्थ—'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार?' है जिसमें उन्होंने मार्क्सवाद ओर दलित साहित्य के मध्य अन्तर्विरोधों की पड़ताल की है और दलित साहित्य एवं दलित अस्मिता पर आर्थिक उदारीकरण व खगोलीकरण के प्रभावों पर भी विचार किया है तथा नारीवादी साहित्य और दलित साहित्य के बीच समानता के प्रश्न को उठाकर एक नये विमर्श को स्थान दिया है। इनकी आलोचक दृष्टि में आक्रोश और विद्रोह जैसे स्वर भी दलित लेखक की तरह ही मुखरित हुए हैं। इस प्रकार डॉ. रमणिका गुप्ता ने चेतना, रचना, समाज और बहस के साथ अनेक लेखों को संकलित कर इस आलोचना की रचना की है।

6.7 डॉ. धर्मवीर

समकालीन दलित आलोचक एवं प्रशासनिक अधिकारियों में डॉ. धर्मवीर का नाम अग्रणी है। ये दलित प्रशासक अधिकारी होने के साथ-साथ एक सफल और नवीन रूप में आलोचना लिखकर पाठकों का ध्यान एकीकृत करने वाले प्रथम दलित आलोचक हैं।

डॉ. धर्मवीर का आलोचनात्मक ग्रन्थ, 'कबीर के आलोचक' है। इनकी अधिकतर रचना कबीर पर ही है तथा कबीर के मामले में इनकी कलम कैमरे का काम करती है। डॉ. धर्मवीर से पूर्व कबीर को आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, श्याम सुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने ब्राह्मणवादी बताया है जिसका डॉ. धर्मवीर ने तर्क और सन्दर्भ के साथ कबीर को दलित घोषित कर दीन, दुःखी और पीड़ितों

का उद्धारक बताया है। कबीर को तुलसी के मुकाबले खड़ा कर यह भी साबित कर दिया है कि कबीर परिवर्तन के प्रतीक थे और तुलसी यथास्थितिवाद के पोषक थे।

डॉ. धर्मवीर ने कबीर को दलित बताकर दीन, दुःखी व पीड़ितों की सहायता करके लोगों के जीवन को सुधारने की कोशिश की। अत: कहा जा सकता है कि डॉ. धर्मवीर के साहित्य को पढ़ने के बाद दलितों की पीड़ा और दुःख-दर्द से लेखक दूर रहकर भी साहित्य का सृजन करने में सफल रहा है, ऐसा प्रतीत होता है।

6.8 कँवल भारती

कंवल भारती दलित साहित्य के जाने-माने साहित्यकार, पत्रकार एवं एक दलित चिन्तक है। उनकी रचनाओं में दलित का संघर्ष खुलकर सामने आया है। वे अम्बेडकरवादी विचारक, आलोचक और पत्रकारिता में दलित विमर्श के पुरोहित हैं। वे लिखते हैं कि, "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया है, जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सवर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की है, वही दलित है।"[10]

कंवल भारती ने अपनी आलोचना में दलित विमर्श पर ज्यादा जोर दिया है। वे दलितों की सामाजिक आर्थिक समस्याओं के बारे में लिखते हैं कि, "दलित विमर्श जिस सिद्धान्त को विकसित करता है, यह भारत के लोगों के बारे में सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने के सम्बन्ध में है। दलित समस्या को हल किए बिना आम दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बेहतर नहीं कर सकते। सबसे बड़ी दिक्कत इस हिन्दू समाज के साथ यह है, यहाँ धर्म, संस्कृति, राष्ट्रवाद में आए बिगाड़ को तो राष्ट्रीय समस्या माना जाता है परन्तु दलितों की समस्याओं को कर्म या वर्णवाद के आधार पर रखा जाता है।"[11]

उनकी पुस्तक 'आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज', जो शोधात्मक कृति है। इस पुस्तक को ठीक से पढ़ने के बाद दिमाग की उस प्रकार की गन्दगी साफ हो जाती है जो धर्म के जरिए भरी गई थी।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

पत्रकारिता के अन्तर्गत भी उन्होंने राजनीति और दलित विमर्श की बात की है तथा अपने तर्क, चिन्तन और विचारों के माध्यम से दलित आलोचना के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। 'सन्त रैदास एक विश्लेषण' नामक आलोचना के निवेदन में कंवल भारती लिखते हैं कि, "दलित साहित्य ने अभी घुटनों के बल फिर से चलना शुरू किया है। वह अब प्रौढ़ होकर हिन्दी साहित्य के समकक्ष खड़ा होगा, तो मुझे विश्वास है कि विद्वान् उसकी प्रतिबद्धता के मूल्य को एक दिन पहचानेंगे।"[12]

6.9 डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का व्यक्तित्व सृजन और संघर्ष को समर्पित रहा है। आज के समय में दलित साहित्य को भारत एवं विदेशों में पहचान बनाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने ऐसे समय में दलित लेखन प्रारम्भ किया था जब अधिकतर दलित लेखक दलित साहित्य को ज्यादा महत्त्व नहीं देते थे। इनकी आलोचनात्मक कृतियों में 'दलित साहित्य और सामाजिक न्याय', 'दलित साहित्य और उनकी भाषा', 'दलित साहित्य : सृजन के सन्दर्भ', 'दलित अस्मिता और हिन्दी उपन्यास', 'दलित साहित्य : रचना और विचार', 'गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता' आदि रचनाएँ प्रमुख हैं।

पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं कि, "दलित साहित्य का सौन्दर्य बोध यही है कि वह जीवन के संवेदनात्मक सत्य का विचार से साक्षात्कार करवाता है और यही सौन्दर्य चेतना सदियों से संतप्त, उपेक्षित एवं प्रताड़ित समाज की अस्मिता, अस्तित्व और आत्म-सम्मान के निमित्त सामाजिक शून्यता खामोशी को तोड़ती है।"[13]

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की सृजनात्मक कला के बारे में अनेक दलित चिन्तकों ने अपने विचार प्रकट किए हैं जिनमें तेजसिंह जी लिखते हैं कि, "सत्यप्रेमी जी में जिम्मेदारी की जबरदस्त भावना है। साहित्य की उद्देश्य पूर्ति के लिए वह न दिन देखते है न रात, न भूख न प्यास।"[14]

सत्यप्रेमी जी की 'दलित साहित्य : रचना और विचार' नामक पुस्तक में अनेक विद्वानों के आलेखों द्वारा श्री सत्यप्रेमी ने दलित साहित्य के स्वरूप और परम्परा सम्बन्धी सत्यों को संग्रहीत करने का प्रयास किया है। उन्होंने लगभग तीन दशकों से रचनाधर्मिता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ने वाले सर्जक एवं चिन्तक की भूमिका निभाई तथा अनेक प्रकार के

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सम्पादन एवं प्रकाशन के क्षेत्र में अपना योगदान देकर एक दलित साहित्यकार के साथ एक श्रेष्ठ दलित आलोचक भी सिद्ध हुए।

6.10 मोहनदास नैमिशराय

मोहनदास नैमिशराय जी दलित रचना और विचार की दुनिया के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। इन्होंने दलित साहित्य को मात्र साहित्य नहीं माना, बल्कि सोते हुए लोगों को जगाने का सशक्त प्रयास माना। वे लिखते हैं कि, "दूर बैठकर कल्पना के आधार पर दलितों की पीड़ा के वर्णन को दलित साहित्य कहना न्यायसंगत नहीं है। यह बिल्कुल ऐसे ही होगा जैसे दलित शोषितों को दूर से फेंककर रोटी-दान करना, जबकि दलित वर्ग के लेखकों ने जो लिखा उनकी रचनाओं में अथाह पीड़ा रही। आक्रोश का ज्वार बार-बार उफनता रहा, इसलिए कि वे सामाजिक विषमता के भुक्तभोगी थे।"[15]

मोहनदास नैमिशराय जी की रचना 'हिन्दी दलित साहित्य' ने दलित साहित्य को समग्रता से सामने लाने का सराहनीय प्रयास किया है। इस रचना में राजनीतिक परिवर्तनों के आधार पर दलित साहित्य के विभिन्न चरणों का सुव्यवस्थित इतिहास प्रस्तुत किया है। इनकी रचना के सन्दर्भ में जयप्रकाश कर्दम जी कहते हैं कि—"कोई भी इतिहास लेखन अतीत पर बहुत ज्यादा निर्भर होता है, लेकिन नैमिशराय इस पुस्तक में इस तिलिस्म को तोड़ते हैं और वर्तमान को बहुत गहराई से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने पुस्तक में कई तथ्यात्मक त्रुटियों की तरफ लेखक का ध्यान खींचते हुए कहा कि कोई भी इतिहास अन्तिम नहीं होता और उसमें सुधार की गुंजाईश लगातार बनी रहती है।"

इस तरह उन्होंने आलोचनात्मक ग्रन्थ के साथ दलित साहित्य को लेकर अनेक लेखों की रचना की है। नैमिशराय जी ने अपने आलेख 'हिन्दी में दलित साहित्य की उपस्थिति : एक पड़ताल' में व्यक्त किया है कि, "उत्तर में कबीर आये, नानक आये, रैदास आये पर ज्योतिबा फूले और बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यक्तित्व न आये। यह हमारे लिए अफसोस की बात क्यों नहीं होनी चाहिए। हमने तो ज्योतिबा फूले और बाबा साहेब का जन्म होते ही उन्हें अपना मान लिया था। उनके विचारों को आत्मसात किया था। हमें लगा था कि उन्होंने हमारे ही घर में जन्म लिया था। मेरा घर, मेरी बस्ती, मेरा नगर ही क्यों, सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में हमने क्रान्तिकारी आह्वान किया था।"[16]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

इस प्रकार मोहनदास नैमिशराय एक महान दलित साहित्य चिन्तक एवं सुप्रसिद्ध दलित आलोचक की भूमिका में थे।

6.11 श्यौराज सिंह बेचैन

श्यौराज सिंह बेचैन दलित साहित्य के उभरते साहित्यकार है। साथ ही एक प्रसिद्ध दलित आलोचक और समीक्षक भी। उन्होंने किसान आन्दोलन की यूनियन और दलित आन्दोलन में काम किया। श्यौराज सिंह बेचैन जी का मानना है कि दलित विमर्श समान्तर विमर्श के रूप में आया है। उन्होंने कहा है कि, "भारतीय समाज विविधताओं का समाज है जहाँ आहार-विहार, रोटी-बेटी के रिश्ते, धर्म जातियों के भेद, जन्म और मौत तक की यात्राएँ अपने ही जाति-समूहों में सीमित है। वहाँ समाज के सबसे ऊपरी स्तर का व्यक्ति सबसे निचली सीढ़ी के समाज के साथ अंतरंगता स्थापित कर लेता है, यह सामान्य बात नहीं है। गाँधी जी की अपीलों और सुधारकों की कोशिशों के बावजूद स्वतन्त्रता मिलने के 60 सालों में इस दिशा में प्रगति कम और दुर्गति अधिक हुई है।"[17]

इनके द्वारा रचित आलोचनात्मक कृति 'हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव' स्वतन्त्रता के बाद दलित पत्रकारिता का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। साथ ही आजादी से पूर्व की 'हरिजन' और 'मूकनायक' जैसी पत्रिकाओं पर विमर्श के बहाने दलित समाज की सोच और भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनकी माँगों को तीखे स्वर के साथ उठाती है।

इस आलोचनात्मक ग्रन्थ में अम्बेडकर के बहाने दलित समाज की सोच और उसकी माँग को हमारे सामने रखा है। जहाँ वे लिखते हैं कि, "दलित समाज के लिए हिन्दू धर्म अग्राह्य वस्तु बन गया और वह विचार सामाजिक आन्दोलन के रूप में सामने आने लगा। इस सन्दर्भ में गाँधीवादी पत्रकारिता की भूमिका की चर्चा करते हुए लेखक ने सटीक बात कही है कि ऐसे में गाँधीवादी पत्रकारिता ने अस्पृश्यता का विरोधी और आर्य समाजी साहित्यिक पत्रकारिता ने शुद्धिकरण का आन्दोलन छेड़ा है।"[18]

6.12 सूरजपाल चौहान

दलित कथाकार सूरजपाल चौहान ने बहुत ही कम समय में दलित साहित्य में अपनी पहचान बनाई, उन्होंने एकमात्र विरोध की अभिव्यक्ति को दलित न मानकर

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

परम्परागत जीवन मूल्यों और व्यवहार के समान्तर व्यापक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति को दलित साहित्य कहा है। उनकी दृष्टि में दलित लेखन का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह दलित समाज को क्या योगदान दे सकता है? सूरजपाल चौहान ने अपने सामाजिक परिवेश और जीवन में अनेक प्रकार के दु:खों को भोगा है इसलिए उनकी रचनाओं में आए जीवन प्रसंग सन्दर्भ और स्थितियों के बीच से विकसित होते चरित्र हमें आस-पास बिखरे दिखाई देते हैं।

इनकी आलोचनात्मक कृति 'हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी' में दलित समाज की पीड़ा, दु:ख, दर्द, अपमान, उत्पीड़न और शोषण तथा उसके खिलाफ उनकी आवाज की अभिव्यक्ति देता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में दलित की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहा है कि—

"काश तुम किसी दलित के घर
पैदा होता, विशेषकर दलित में
दलित कहे जाने वाले भंगी के घर
तुम्हें उठानी पड़ती बजबजाती गन्दगी
और ढोना पड़ता गू-मूत से भरा
टोकरा सिर पर रखकर।"[19]

6.13 श्री माताप्रसाद

माता प्रसाद जी ने राज्यपाल, राज्यमन्त्री तथा राजनीति के ऊँचे-ऊँचे पदों को सुशोभित किया। साथ ही उन्होंने दलित साहित्य की सेवा में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी। उन्होंने कहा कि दलित साहित्य अपमान, शोषण और अपमान की प्रतिक्रिया की दर्दभरी और रोषपूर्ण अभिव्यक्ति है जिसका उन्होंने अपनी आलोचनात्मक कृति 'हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा' में दलित कवियों की रचना की परम्परा को व्यक्त करते हुए दलितों की दुर्दशा को व्यक्त करने की कोशिश की ओर साहित्य में उसको सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस प्रकार उन्होंने एक सुप्रसिद्ध राजनेता के साथ एक श्रेष्ठ दलित आलोचक की भूमिका भी निभाई है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

6.14 डॉ. सुशीला टाँकभौरे

अब वह समय आ गया है कि दलित साहित्य में महिला लेखकाओं की कमी भी नहीं रही है। सुशीला टाँकभौरे जी ने दलित नारी के संघर्ष को अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्त किया है। दलित नारी के संघर्ष और समान श्रम के भाव के सम्मान की स्वीकृति ही दलित कविता में स्त्री-प्रेम को परिभाषित करती है। डॉ. सुशीला टाँकभौरे ने दलितों में व्याप्त दुर्व्यसनों, कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों पर उन्हें फटकारा है। उनके अनुसार, "दलित साहित्य में अपेक्षा, अपमान, पीड़ा की अभिव्यक्ति है साथ ही आजादी के बाद की पीढ़ी की वाणी इसमें मुखरित हुई है।"[20]

6.15 डॉ. दयानन्द बटोही

दलित उत्पीड़न की निर्माण शाला केवल सामाजिक संस्थाएँ ही नहीं बल्कि शैक्षिक संस्थाएँ भी इसमें शामिल है। इस सन्दर्भ में डॉ. दयानन्द बटोही ने दलित साहित्य के बारे में कहा है कि, "दलित साहित्य मानववाद की अभिव्यक्ति से जुड़ा है जो दलित साहित्य की रीढ़ है—पीड़ा, सन्ताप, यातना, जुल्म, अपमान और उसकी बाधाएँ हैं प्रकाशन की कमी।"[21]

डॉ. दयानन्द बटोही जी ने फणीश्वर नाथ 'रेणु' पर एक समालोचना लिखी। दलित चेतना ही उनके लेखों की मुख्य विषय-वस्तु रही है। उन्होंने अपने लेखों में परम्परागत मूल्यों और मान्यताओं के विरुद्ध नव जागृति का आह्वान किया है।

6.16 डॉ. तेज सिंह

दलित साहित्यकार की बुनियाद की पहचान कराते हुए प्रसिद्ध दलित साहित्यकार और अपेक्षा (पत्रिका) के सम्पादक रहे डॉ. तेज सिंह जी कहते हैं कि, "दलित पिछड़े वर्ग की अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान है, जो उन्हें सवर्ण संस्कृति से जोड़ती है। शुरू से ही श्रमण संस्कृति ने ब्राह्मणवादी संस्कृति के वर्चस्व को चुनौती दी है। आज का यह संकट मूलत: सवर्ण संस्कृति और ब्राह्मणवादी संस्कृति की टकराहट की संस्कृति है।"[22]

डॉ. तेजसिंहजी का आलोचना ग्रन्थ 'आज का दलित साहित्य' समय-समय पर की गई पुस्तकों की समीक्षाओं के माध्यम से रचना के सामाजिक सरोकार, उसमें वर्गीय दृष्टिकोण का आकलन दलित समाज के प्रसंग में करने की माँग करता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

6.17 डॉ. रजतरानी मीनू

डॉ. रजतरानी मीनू एक श्रेष्ठ दलित साहित्यकार है। उन्होंने दलित साहित्य के बारे में लिखा है कि, "दलित चेतना मेरे लिए सिर्फ साहित्यिक मनोरंजन नहीं है। मुझे लगता है कि वह एक ऐसा ऐतिहासिक उभार है जिसे अनदेखा करना स्वयं अप्रासंगिक हो जाता है।"[23]

इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'हिन्दी दलित कथा-साहित्य' (शोध प्रबन्ध) में दलित कथा साहित्य की रचनाओं के मनोजगत और उसकी अभिव्यक्ति के जिस सघन और गहन विश्लेषण को मानवीय सरोकारों से जोड़कर प्रस्तुत किया है, वह विचारधारा विराट तो है ही साथ ही यह हमारा ध्यान दुनिया के दलितों की ओर भी आकर्षित करती है। दलित कथा साहित्य के अध्ययन के बाद हम कह सकते हैं कि साहित्य मात्र अपनी व्यथा की कथा कहने वाला ही नहीं है, बल्कि यह मनुवादी व्यवस्था के आडम्बर की पोल खोलने वाला एक सशक्त दस्तावेज भी है।

दलित साहित्य कई वर्षों से पीड़ित, शोषित और उपेक्षित वर्ग के दर्द की संवेदना को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करने वाला साहित्य रहा है। आज के समय में यह अपनी मानवीय अस्मिता को बखूबी अभिव्यंजित कर रहा है। इस दलित साहित्य को लेकर अनेक आलोचकों ने अपनी आलोचना की। इन सबकी आलोचना का निष्कर्ष यह निकलता है कि हिन्दी दलित साहित्य की आलोचना अभी अपनी प्राथमिक अवस्था में है लेकिन भविष्य में इसके फलने-फूलने की अपार संभावना मौजूद है।

सन्दर्भ

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि — दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्प, भूमिका से, पृ. 10
2. साक्षात्कार, नवम्बर, 2001 सम्पादक-आमेय, पृ. 98
3. डॉ. एन. सिंह — हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक, सं. रमणिका गुप्ता, भूमिका से।
4. डॉ. एन. सिंह — हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक, सं. रमणिका गुप्ता, (डॉ. शिवचन प्रसाद - लहरों से संघर्षों की वीरगाथा, पृ. 55)
5. डॉ. एन. सिंह — हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक, सं. रमणिका गुप्ता (प्रो. मुहम्मद सुलेमान - दलित साहित्य के सजग प्रहरी, पृ. 70)

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

6. सुनीता रावत — हिन्दी दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ. 254
7. दलित दखल (साहित्यिक साक्षात्कार) — डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ. रजतरानी मीनू
दलित साहित्य आन्दोलन का हिस्सा है - डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. 142
8. दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद (डॉ. जयप्रकाश कर्दम), रूपचन्द गौतम, यथार्थ की आलोचना, डॉ. अंजनी कुमार दुबे 'भावुक', पृ. 171
9. डॉ. ललित कौशल — हिन्दी दलित साहित्य और चिन्तन, पृ. 29
10. वही, पृ. 31
11. डॉ. जीतूभाई मकवाणा — समकालीन हिन्दी दलित साहित्य : एक अध्ययन, पृ. 250
12. डॉ. जयप्रकाश कर्दम — दलित विमर्श साहित्य के आईने में, पृ. 27
13.
14. सुनीता रावत — हिन्दी दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ. 254
15. डॉ. ललित कौशल — हिन्दी दलित साहित्य और चिन्तन, पृ. 20
16. डॉ. शरणकुमार लिम्बाले — दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, अनुवादक रमणिका गुप्ता, पृ. 15
17. डॉ. रजतरानी मीनू — हिन्दी दलित कथा साहित्य : अवधारणाएँ और विधाएँ, पृ. 31
18. देवेन्द्र चौबे — आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, पृ. 208
19. सूरजपाल चौहान — विश्व गुरु होने का ढिंढोरा पीटने वाले (इन्टरनेट से)
20. साक्षान्त मस्के — परम्परागत वर्ण-व्यवस्था और दलित साहित्य, पृ. 22
21. वही, पृ. 23
22. डॉ. ललिता कौशल — हिन्दी दलित साहित्य और चिन्तन, पृ. 31
23. डॉ. रजतरानी मीनू — हिन्दी दलित कविता, भूमिका से।

❑

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सप्तम अध्याय

समकालीन दलित नाटक एवं पत्रकारिता

7.1 भूमिका

नाटक दलित साहित्य की एक नवीनतम विधा है जो निरन्तर गतिशील होकर दलित साहित्य के यथार्थ को भावात्मक स्तर पर लाकर उसका चित्रण करना तथा सामाजिक जीवन से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करा रही है, जो दलित नाटक का मूल विषय है।

दलित साहित्यकारों ने जिस प्रकार अपने समाज की संवेदनाओं और आकांक्षाओं तथा उनकी अनुभूतियों को कविता, कहानी, आत्मकथा के द्वारा अभिव्यक्त किया है उसी प्रकार नाटकों के माध्यम से भी अपने विचारों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।

हिन्दी साहित्य का पाठक दलित साहित्य की कुछ रचनाओं से परिचित है लेकिन 'दलित नाटक' से बहुत कम परिचित है क्योंकि दलित नाटक का हिन्दी भाषा में अनुवाद बहुत कम मात्रा में होना और दलित नाटकों के लिए मंचों का अभाव होना है। नाटकों के मंचन की समुचित व्यवस्था न होने के कारण दलित नाटकों के लेखन में भी उदासीनता है लेकिन उपलब्ध नाटकों के बारे में कहा जाय तो हिन्दी दलित नाटक सामाजिक जीवन से काफी हद तक प्रभावित और प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। इसी सामाजिक जुड़ाव के कारण दलित नाटक समाज में बदलाव एवं समाज को प्रेरित करने में सक्षम है। यहाँ दलित समाज की समस्याओं को ध्यान में रखकर जिन नाटककारों ने नाट्य रचना की उनका रचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जायेगा।

7.2 डॉ. सुशीला टाँकभौरे : नंगा सत्य

विश्व की सभी भाषाओं में महिला को नाटककार के रूप में प्राय: कम देखा जाता है। हिन्दी भाषा में भी ऐसा ही है। यहाँ डॉ. सुशीला टाँकभौरे ने नाटक के क्षेत्र में अपना

योगदान देकर यह सिद्ध कर दिया कि निस्सन्देह दलित साहित्य में भी महिला नाटककारों का अनुपात पहले से कम नहीं होगा। इनके द्वारा रचित नाट्य रचना 'नंगा सत्य' सात परिदृश्यों में फैली हुई है।

'नंगा सत्य' में एक गाँव की कहानी है जहाँ नाटककार कृपाशंकर और सूत्रधार कमल रहते हैं। गाँव के दलित पिछड़ों के सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक शोषण को दिखाने के लिए सफल दृश्य योजना और पात्र योजना की गई है। दलितों की शोषण से मुक्ति का मार्ग फुले व अम्बेडकर की विचारधारा की प्रगति को बताया गया है। नाटक का उद्देश्य समाज में समानता, भाईचारे के साथ-साथ संविधान को पूर्ण रूप से लागू करना है। यह क्रांतिकारी परिवर्तन के उद्देश्य से लिखी एक ऐसी नाट्य रचना है, जो दलित समाज के साथ-साथ बुद्धिजीवी वर्ग को भी इस परिवर्तन के लिए प्रेरित करती है।

7.3 रूपनारायण सोनकर

चर्चित युवा साहित्यकार रूपनारायण सोनकर ने दलित साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान बनायी है। ये हास्य, व्यंग्य, साम्प्रदायिक सद्भाव, हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं ओज के कवि हैं। इन्होंने समाजद्रोही, एक दलित डिप्टी कलेक्टर, छायावती जैसे महत्त्वपूर्ण नाटकों का सृजन किया है।

समाजद्रोही

समाजद्रोही एक सामाजिक एवं हास्य व्यंग्य नाटक है जिसमें एक कनिंग व क्रूर नेता की केन्द्रीय भूमिका है। इन्हीं नेताओं की वजह से देश का अमन चैन बिगड़ जाता है और साम्प्रदायिकता नंगा नाच करने लगती है। बलात्कार, अपहरण, लूटपाट जैसी घटनाएँ बढ़ जाती है। ऐसे नेता देश के दुश्मन है और समाजद्रोही हैं। इसके माध्यम से लेखक ने समाज को जागृत करने का प्रयास किया है कि "समाजद्रोही नाटक में मैंने एक कनिंग व क्रूर नेता की केन्द्रीय भूमिका निभायी है।"[1]

एक दलित डिप्टी कलेक्टर

इस नाटक में रतनलाल एक दलित डिप्टी कलेक्टर है जो डिप्टी कलेक्टर बनते ही दूसरी शादी कर लेता है और पहले वाली पत्नी को छोड़ देता है। इसके साथ ही माँ-बाप एवं पहली पत्नी व बेटी को भूल जाता है। कलेक्टर की पहली पत्नी अनुसूईया 12 साल

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

से अपने चाचा, भाई व अपनी बेटी जानकी के साथ मैके में रह रही है। चाचा 'रामदीन' तथा चाची 'पार्वती' अनुसूईया को समझाती हुई कहती है, "उसने तुमको दिया ही क्या है? कोई भी अनपढ़ गँवार आदमी भी अपनी पत्नी और बेटी के साथ ऐसा बर्ताव नहीं करेगा जैसा उसने किया है। धिक्कार है उसके जीवन को, धिक्कार है उसकी शान-शौकत को, धिक्कार है उसके डिप्टी कलेक्टर होने को।"[2]

कुछ समय के पश्चात् रतनलाल के पास उसके पिता का पत्र आता है जिसको रतनलाल पढ़ रहा है, "प्यारे बेटा मैंने सुना है तुमने दूसरी शादी कर ली है। यहाँ रह रही तुम्हारी पहली पत्नी और तुम्हारी बिटिया का क्या होगा? वह रो-रोकर मर रही है। तुम्हारी बिटिया पढ़ने के योग्य है। यहाँ कोई स्कूल नहीं है, उसके भविष्य का ध्यान करो। तुम चाहे हमारी मदद करो या मत करो लेकिन अपनी बच्ची और बहू पर तरस खाओ। तुम्हारे छोटे भाई चमन लाल की पढ़ाई बर्बाद हो रही है, उसको अपने पास बुला लो। हम दोनों मेहनत-मजदूरी करके अपनी जिन्दगी काट लेंगे लेकिन उसके भविष्य को अन्धकारमय मत बनाओ बेटा।"[3]

इस उपभोगितावादी एवं विलासी युग में आदमी के मानवीय मापदण्ड बदल गये हैं जहाँ पर व्यक्ति अपने स्वार्थ और वैभव प्राप्ति की इच्छा से माँ-बाप और पत्नी, बेटी तक को भूल जाते हैं। यहाँ पर नाटककार ने दलितों में जागृति पैदा करने के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। नारी के प्रति अनादर एवं शोषण और सामाजिक असमानता पर प्रकाश डालकर दलितों में चेतना पैदाकर शोषण से मुक्ति का प्रयास किया है।

छायावती

'छायावती' एक ऐसा नाटक है जो एक दबंग राजनेता और प्रशासनिक अधिकारियों के इर्द-गिर्द घूमता है। इस नाटक की नायक मुख्यमन्त्री छायावती, वर्तमान समय में अपनी कार्यकुशलता के कारण बहुत ही लोकप्रिय हो गई हैं। किसी भी नेता की इतनी हिम्मत नहीं थी कि प्रशासनिक अधिकारियों के खिलाफ बोल सके लेकिन छायावती ने आते ही इन सबका गरूर तोड़ दिया है। यहाँ छायावती दलित क्वीन ही नहीं बल्कि वह सर्वहारा वर्ग की एक बुलन्द आवाज भी है, जो दुबली-कुचली महिलाओं की उद्धारक है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

नाटककार ने इस नाटक में दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को जाग्रत करने का सफल प्रयास किया है।

माताप्रसाद

स्कूल अध्यापक से लेकर गर्वनर तक सफर करने वाले श्री माताप्रसाद जी सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार हैं। उन्होंने अपनी जीवनयात्रा में दलित जीवन को जिस गहराई और सूक्ष्मता से अनुभव किया उसकी सशक्त अभिव्यक्ति उनके लेखन में दिखाई देती है।

तड़प की मुक्ति

यह नाट्यकृति ऐसे समय में रचित हुई, जब दुनिया इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ी थी और दलित साहित्य पूरी तैयारी के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने को आतुर था। इस नाटक का नायक एक दलित युवक है जो शिक्षित और जागरूक है तथा स्थानीय दलित युवक कल्याण समिति का अध्यक्ष भी है। वह दलितों की समस्याओं को शासन, प्रशासन के समक्ष उठाकर उनका समाधान भी करवाता है। वह सच्चरित्र और साहसी युवक है जो असामाजिक तत्त्वों (गुण्डों) द्वारा मण्डल विरोधी मोर्चों की नेता और मनुवादी पार्टी की सदस्य सुषमादेवी के साथ बदतमीजी का व्यवहार किये जाने पर उसकी रक्षा कर उसे सुरक्षित घर पहुँचाता है। पी.सी.एस. की परीक्षा के बाद ट्रेनिंग के दौरान सुषमा देवी से उसकी घनिष्ठता हो जाती है तथा सुषमा देवी उसके चारित्रिक गुणों से प्रभावित होकर उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रख देती है।

नायिका सुषमा देवी जाति से ब्राह्मण होने पर भी सिर्फ मानवता पर अवलम्बित है इसलिए जातिवाद को हटाते हुए मनोज कुमार से शादी का प्रस्ताव रख कर कहती है कि, "कैसे बात करते हो तुम किसी के एहसान को जो भूला देता है, वह एहसान फरागोश कहा जाता है। मानवता से उसे गिरा हुआ समझा जाता है। हाँ अब तो हम लोगों की एक महीने में ही पोस्टिंग हो जाएगी। अब तो तुमको शादी करनी पड़ेगी।"

यह नाटक सामाजिक असमानता के प्रति आक्रोश, मानवतावाद, आर्थिक शोषण, नारी के प्रति आदर और राजनैतिक चेतना आदि विषयों को लेकर दलितों में जागृति पैदा करने का प्रयास करता है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

बारात नहीं चढ़ेगी

मनोज कुमार द्वारा रचित इस नाटक में सवर्णों की सामन्ती मानसिकता और उनके द्वारा दलितों पर किये जा रहे अत्याचार का खुलकर वर्णन किया गया है जहाँ पर दलित लड़की की शादी में दूल्हा घोड़ी पर चढ़कर नहीं आ सकता है। दलित के यहाँ घोड़ी पर सवार होकर आई बारात को भारी रक्तपात का सामना करना पड़ता है। दलितों की उस बारात पर सवर्ण लोगों के द्वारा हमला कर दिया जाता है तथा सवर्ण लोगों के द्वारा काफी मात्रा में रक्तपात किया जाता है।

उजास

रत्नकुमार सांभरिया का यह नाटक दलितों के भोलेपन और अज्ञानता पर करारा व्यंग्य करते हुए शिक्षा के महत्त्व को बताता है।

नाटक के प्रारम्भ में मन्दिर के पुजारी का भाई रामानन्द गाँव की दलित महिला सन्ती के माध्यम से मन्दिर में दलितों के प्रवेश को लेकर आन्दोलन की बात दलित समाज तक पहुंचाकर उन्हें मन्दिर प्रवेश के लिए उकसाता है। कालू सिंह (कालिया) इसे चुनावी दाँवपेंच बताकर गाँव वालों को सचेत करता है लेकिन सभी दलित रामानन्द के बहकावे में आकर चन्दा देते हैं और मन्दिर प्रवेश के समय सवर्णों से पिटते हैं। अन्त में कालूसिंह उन्हें सम्पूर्ण घटना को समझाता है और अपनी सफाई वाले काम को छोड़ने और स्वच्छता से रहकर पढ़ाई और मेहनत-मजदूरी के लिए समझाता है।

सभी ग्रामीण अपने पंजे, परात, झाड़ू आदि की मन्दिर परिसर में होली जलाते हैं। अपने सुअरों को भगा देते हैं और एकजुट होकर रहने का प्रण लेते हैं।

इस नाटक में समाज में फैली अत्यन्त भयानक व डरावनी बीमारी, जिसे जाति-प्रथा कहा जाता है, को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

विमा

इस नाटक में निशक्त लोगों की पीड़ा और दु:खों के साथ उनके जज्बातों को दर्शाया गया है। यहाँ नाटक की नायिका विमा एक निशक्त है। वह घर से प्रताड़ित होकर निकल जाती है तथा ट्रेन में बैठकर दूसरे शहर पहुँच जाती है। वहाँ उसके निशक्त होने का

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

फायदा एक अन्य उठाना चाहता है तथा एक निशक्त व्यक्ति उसकी मदद करता है। दोनों एक-दूसरे को समझने लते हैं तो सामाजिक रूप से उनका विरोधे होने लगता है।

निष्कर्ष

दलित चेतना और संघर्ष की सार्थक अभिव्यक्ति दलित नाटककारों के नाटकों में देखी जा सकती है। सैंकड़ों वर्षों के बाद दलित साहित्य को एक मुकाम मिला है जिसके माध्यम से उन्होंने अपने विचार और भावों को सशक्त अभिव्यक्ति देना प्रारम्भ किया है।

दलित नाटककारों का मूल उद्देश्य जिओ और जीने दो का है, जहाँ समाज में एकता, मानवीयता, समानता तथा अपनत्व की भावना प्रत्येक मनुष्य के हृदय में वास करे। दलित नाटककार एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जहाँ सामान्य जनता की कठिनाइयों को दूर कर उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके तथा एक शोषण मुक्त समाज की स्थापना हो सके।

7.7 दलित पत्रकारिता

7.7.1 भूमिका

पत्रकारिता का उदय समाचार जगत से हुआ तथा साहित्य के साथ पत्रकारिता का सम्बन्ध हमेशा से रहा है। इसके लिए कहा है कि, "सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य है और सर्वोत्तम साहित्य पत्रकारिता है।" पत्रकारिता एक मशाल है, जिसकी रोशनी से समाज की वास्तविक स्थिति को देखा जा सकता है।

दलित पत्रकारिता का आरम्भ बाबा साहेब अम्बेडकर से भी पहले हुआ था। उस समय ज्योतिबा फुले और गोपाल बाबा बलंकर पत्रकार हुए थे। दलित पत्रकारिता का इतिहास एक सदी से भी ज्यादा पुराना है। उस समय कई दलित पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित थी जिनमें से कई तो आज भी प्रकाशित होती हैं।

भारत वर्ष में दलित पत्रकारिता का नेतृत्व सबसे पहले उत्तर प्रदेश ने किया था जहाँ से परिवर्तन, सिंहनाद, शोषित पुकार, अनार्य भारत, भीम सैनिक, दलित चेतना, दलित केसरी और दलित जन बहुजन अधिकार आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन होता था।

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

एक महान दलित पत्रकार मोहनदास नैमिशराय है, जिन्होंने पूरे देश में घूमकर लोगों के दुःख-दर्द को समझकर सरकार और समाज के सामने लाने का प्रयास किया। उन्होंने कहा है कि, "दलितों में विकास का परिवर्तन उतना नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। इसका कारण भारतीय राजनीति के चरित्र में निहित है क्योंकि जिन लोगों के हाथ में सत्ता के सूत्र हैं, उनकी मानसिक बनावट हिन्दूवादी ही है और वह लोग दलितों को बराबर का हक, यथार्थ के धरातल पर देना ही नहीं चाहते। उसे यह राजनैतिक लोग अपने भाषण तथा वादों तक ही सीमित रखना चाहते हैं।"[4]

7.7.2 पत्रकारिता में दलित विमर्श

दलित विमर्श की प्रक्रिया पिछले दो-तीन दशकों से तेज हुई है जिसमें मण्डल विरोधी आन्दोलन के बाद समाज की ओर से सामाजिक और राजनीतिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में अपनी भागीदारी की माँग व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपों में मुखरित होने लगी। जहाँ पर अनेक दलित चिन्तक मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, डॉ. धर्मवीर, माताप्रसाद, सुशीला टाँकभौरे, रजनी तिलक आदि ने अपने सामाजिक हितों के लिए अपनी माँग को प्रभावशाली तरीके से उठाया।

श्यौराज सिंह बेचैन की 'हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव' में स्वातन्त्र्योत्तर दलित पत्रकारिता का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जिसमें पत्र-पत्रिकाओं पर विचार-विमर्श के बहाने दलित समाज की सोच और भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उसकी माँगों को मजबूती के साथ उठाया है क्योंकि राजनीतिक और आर्थिक स्वावलम्बन से ही दलित समाज का सम्पूर्ण विकास नहीं होता। इसके साथ सामाजिक तथा सांस्कृतिक मोर्चे पर सवर्ण समाज द्वारा भी इसे स्वीकारना आवश्यक है।

वास्तव में हिन्दी की दलित पत्रकारिता का एक लम्बा इतिहास रहा है। अम्बेडकर का मानना है कि "हिन्दू समाज एक मीनार है। एक-एक जाति इस मीनार का एक-एक तल है और एक से दूसरे तल में जाने का कोई मार्ग नहीं, जो जिस तल में जन्म लेता है, उसी में मरता है।"[5]

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अम्बेडकर के इस कथन ने एक ओर जहाँ हिन्दू समाज की विसंगतियों पर मार्मिक टिप्पणी की है, वहीं दूसरी ओर तत्कालीन और तथाकथित हिन्दू समाज की संकीर्ण मानसिकता पर कठोर प्रहार भी।

दलित पत्रकारिता में शेष हिन्दू समाज के दलित समाज से अलगाव की मानसिकता का स्वर भी मुखरित हुआ। इस सम्बन्ध में डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन ने लिखा है कि, "दलित समाज के लिए हिन्दू धर्म अग्राह्य वस्तु बन गया है और वह विचार सामाजिक आन्दोलन के रूप में सामने आने लगा।"[6] समकालीन दलित पत्रकारिता पर अम्बेडकर के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा साथ ही दलित लेखकों ने भी अम्बेडकर की विचारधारा को अपनाकर दलित विमर्श से सम्बन्धित आन्दोलनों और पत्र-पत्रिकाओं में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

दलित विमर्श से सम्बन्धत जिन पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, उनका विवरण इस प्रकार है—

1. युद्धरत आम आदमी (त्रैमासिक), सम्पादक : रमणिका गुप्ता, नई दिल्ली।
2. हँस (मासिक), सम्पादक : राजेन्द्र यादव, नई दिल्ली।
3. दलित साहित्य, वार्षिकी, सम्पादक : जयप्रकाश कर्दम, नई दिल्ली।
4. अपेक्षा (त्रेमासिक), सम्पादक : तेज सिंह, दिल्ली।
5. दलित टुडे (मासिक) सम्पादक : महिपाल सिंह, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश।
6. मूक नायक, सम्पादक : तारा परमार
7. सामाजिक न्याय सन्देश, सम्पादक : मोहनदास नैमिशराय
8. अस्मितादर्श, सम्पादक : विमल कीर्ति, नागपुर
9. पश्यन्ती, सम्पादक : प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय, नई दिल्ली।
10. बहुजनों का बहुजन भारत, सम्पादक : वामन मेश्राम, नई दिल्ली।
11. हिमायती, सम्पादक : सोहनपाल सुमनाक्षर, नई दिल्ली।
12. हम दलित, सम्पादक : आर.आर. कनौजिया, नई दिल्ली।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

13. अभिमूक नायक, प्रबन्धक रजनी तिलक, सम्पादक : आनन्द कुमार।

14. तीसरा पक्ष, सम्पादक : देवेश चौधरी, जबलपुर, मध्यप्रदेश।

15. अम्बेडकर इन इंडिया, सम्पादक नयानाथ निगम।[7]

इनके अतिरिक्त नयापक्ष, अंगुत्तर, प्रज्ञा साहित्य, आजकल, कल के लिए, वसुधा, कसौटी, शिखर की ओर, कथादेश, कथाक्रम, नया ज्ञानोदय, वागर्थ, पूर्वग्रह, कादम्बिनी, आलोचना आदि पत्रिकाओं का योगदान भी है।

आज जितने भी समाचार पत्र मौजूद हैं, वे हिन्दू जाति के हितों की रक्षा करने में लगे हुए हैं। वे अन्य जातियों के हितों का संरक्षण नहीं करते हैं। हमारा देश विषमताओं का मायका है। सत्ता और ज्ञान के अभाव में अब्राह्मण तथा दलित वर्ग प्रगति से वंचित है।"[8]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचार आधुनिक समय में भी प्रासंगिक हैं। देश में सवर्ण पत्रकारिता या कहें कि हिन्दू पत्रकारिता की दिशा व दशा दोनों तो दिखाई पड़ती है लेकिन दलित पत्रकारिता की नहीं? इस विषय को लेकर काफी सवाल उठते रहते हैं। दलित पत्रकारिता को लेकर काफी विमर्श सुनने को मिलता है। हिन्दूवादी पत्रकारिता ने जो पकड़ बनाई है, उसकी तुलना में दलित पत्रकारिता नहीं के बराबर है। ऐसा नहीं है कि दलित पत्रों का प्रकाशन नहीं होता। देश भर में दलित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है, लेकिन उनमें से एक प्रतिशत का नाम भी नहीं मिलता जो राष्ट्रीय पटल पर छपने वाले सवर्ण पत्र-पत्रिकाओं के बराबर खड़े हो सके।

हालाँकि हिन्दूवादी पत्रकारिता में दलित पत्रकारिता भी दिखती है लेकिन इसके पीछे बाजारवाद एक बहुत बड़ा कारण है। ज्योतिबा फुले, बाबा साहेब अम्बेडकर सहित अन्य दलित नेताओं की जयन्ती समारोह को खबरों में पिरोकर जगह तो मिल जाती है। यह एक बहुत बड़ा भ्रम है, जो दलित पत्रकारिता के सामने आकर खड़ा हो जाता है कि दलित समुदाय की बात हिन्दूवादी मीडिया ने सहज ढंग से उठाई।

राष्ट्रीय स्तर पर दलित समुदाय के बीच हिन्दूवादी पत्रकारिता के माध्यम से यह बात पहुँचती तो है लेकिन वह तेवर दिखाई नहीं देता, जो ज्योतिबा फुले, अम्बेडकर

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सहित अन्य दलित बुद्धिजीवियों में दलित समाज को मुख्य धारा से जोड़ने का काम करते हुए दिखाई देते थे।

वर्तमान समय में दलित समाज अपनी अस्मिता और सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए किस प्रकार जूझ रहा है? क्या आज का दलित मीडिया से न्याय की आशा कर सकता है? कभी नहीं क्योंकि समाज में बहुत-से लोग ही ऐसे हैं, जो दलितों की वास्तविक स्थिति के बारे में जानते हैं बाकी लोग तो आज भी घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से ही देखते हैं।

अत: समाज की इन विसंगतियों को आम जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, तभी समाज में कुछ सुधार हो सकेगा लेकिन इस विषय पर विचार करने के लिए हमारी सरकार, हमारा मीडिया या हमारे पत्रकार कितने सक्रिय हैं, यह अब सोचने एवं विचारने का विषय जरूर है।

पत्रकारिता समाज का एक आवश्यक अंग है, जब वह अंग इंसान के पास नहीं होगा, तो हम उसका उपयोग कैसे कर पायेंगे? पत्रकारिता सामाजिक चेतना का एक सशक्त माध्यम है, जो दलित समाज को अपने हक एवं अधिकार की प्राप्ति के लिए एक मंच पर ला सकता है। परन्तु अभी एक ओर दलित समाज को पत्रकारिता की दहलीज तक पहुचने नहीं दिया जाता है तथा दूसरी ओर राजनेता लोग सामाजिक न्याय की दुहाई देते रहते हैं। लेकिन उन्हें शायद यह पता नहीं होता कि सामाजिक न्याय क्या होता है? हमारा मानना है कि सामाजिक न्याय रोटी, कपड़ा, मकान के साथ-साथ आत्म सम्मान के साथ जीना हर एक इन्सान का सामाजिक हक है और सामाजिक तौर पर दबे हुए लोगों की अस्मिता उनकी पहली प्राथमिकता है। जब तक ये सभी हर इन्सान को हासिल नहीं हो जाते, तब तक सामाजिक न्याय की बात करना दबे हुए समाज के साथ छलावा है।

देखा जाए तो आज दलित पत्रकारिता उसी रूप में विद्यमान है, जैसे मानों अनेक दीये जल रहे हों। लेकिन किसी दीये में आधा तेल है, तो किसी में केवल बाती में ही तेल रह गया है और किसी दीये में बाती भी जल कर बुझने लगी है। वास्तविकता यह है कि 'बहुजनों का तलुआचाटु' और 'धोखेबाज संस्कृति' से ग्रसित होने के कारण ही समाज

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

की यह दुर्दशा है, फिर भी छोटे-छोटे दलित पत्र-पत्रिकाओं ने बहुजन आन्दोलन को बढ़ाने का बहुत ही बड़ा और युगांतकारी काम किया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि मीडिया में दलितों की उपस्थिति इस दृष्टि से नहीं हो सकती कि गैर दलित उन पर रहम-करम करके उन्हें जगह दें, बल्कि व्यक्ति के माध्यम से आने वाले विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों के अनुभवों, सूचनाओं और संस्कृति को मंच देकर उनकी ऊर्जा का सदुपयोग कर मीडिया को लोकतान्त्रिक बनाना पत्रकारिता के आधुनिक युग की जरूरत है।

सन्दर्भ

1. सं. रूपनारायण सोनकर — समाजद्रोही, पृ. 2
2. सं. रूपनारायण सोनकर — एक दलित डिप्टी कलेक्टर, पृ. 20
3. वही, पृ. 13
4. साक्षान्त मस्के — परम्परागत वर्ण-व्यवस्था और दलित साहित्य, पृ. 91
5. देवेन्द्र चौबे — हिन्दी पत्रकारिता में दलित विमर्श और अम्बेडकर, आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, पृ. 201
6. वही, पृ. 208
7. स्रोत : डॉ. हरिनारायण ठाकुर — दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 548-49
8. 'मूकनायक' के प्रथम अंक के सम्पादकीय में प्रकाशित।

❑

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अष्टम अध्याय

उपसंहार

भारतीय समाज सदियों से वर्ण-व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ा रहा है। इस वर्ण-व्यवस्था की कलुषित मानसिकता ने मनुष्य-मनुष्य के मध्य अलगाव पैदा कर दिया, जिसके चलते पूरा भारत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में बँट गया। इसी वर्ण-व्यवस्था के चलते सबसे निकृष्ट वर्ग शूद्र को शिक्षा और ज्ञान से वंचित कर दिया गया। किसी भी धार्मिक अनुष्ठान एवं कार्यों में उनकी उपस्थिति निषिद्ध कर दी गई तथा उनको अपने से ऊपर तीन वर्णों की सेवा करने का कार्य थोप दिया। इस प्रकार उनको तमाम अधिकारों से वंचित कर उनका जीवन नरक तुल्य बना दिया गया।

आधुनिक समय में साहित्य व समाज में जो 'दलित' शब्द चर्चा में आया उसके मूल में यही शूद्र है। शूद्र की अवधारणा प्राचीन सन्दर्भ एवं दलित की अवधारणा वर्तमान सन्दर्भ में जाँची एवं परखी जा सकती है।

'दलित' शब्द की अवधारणा व्यक्तिपरक कम होकर समुदायपरक अधिक है तथा यह किसी जाति विशेष के लिए प्रयुक्त नहीं होता अर्थात् 'दलित' शब्द का अर्थ, जिसका दलन हुआ हो, जो दबाया-कुचला गया हो, जिसके साथ अन्याय-अत्याचार किये गये हों तथा जिसका एक सोची समझी साजिश के तहत उत्पीड़न व शोषण किया गया हो।

साहित्य समाज का दर्पण है अत: समाज में व्याप्त ऐसी घोर विडम्बना का प्रतिबिम्ब साहित्य में होना आवश्यक है। प्राचीन समय से लेकर आधुनिक काल तक दलित चेतना किसी-न-किसी स्वरूप में विद्यमान थी लेकिन इसकी व्यापकता आधुनिक काल की देन है क्योंकि आधुनिककाल में दलित अपने अधिकारों की माँग तथा अन्याय व

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। इस दृष्टि से यह युग दलित, पीड़ित, शोषित जातियों के लिए स्वर्णयुग से कम नहीं है।

हिन्दी साहित्य जगत में दलित साहित्य का प्रादुर्भाव इसी संघर्ष का परिणाम है जिसके माध्यम से दलितों ने नये मानवीय एवं समतामूलक समाज के निर्माण की आधारशिला रखी तथा इसका आधार स्रोत दलितों के मसीहा डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे जिन्होंने दलित साहित्य को विकास पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। उनकी विचारधारा दलित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार बनी क्योंकि अम्बेडकर दर्शन दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत है। उन्होंने दलित साहित्य को आज एक अलग पहचान दिलवाई है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इन्हीं स्रोतों को आधार बनाकर समकालीन दलित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

आधुनिक काल में अनेक दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित साहित्य का सृजन कर रहे हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो समकालीन दलित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन एक विस्तृत एवं वृहद् कार्य बन जाता है अत: शोध की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए ओर अपने अध्ययन को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए समकालीन दलित साहित्यकारों एवं उनकी रचनाओं का समावेश किया और 'समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति 2001 के बाद' नामक विषय पर शोधकार्य प्रस्तुत किया जिसमें समकालीन दलित साहित्य की विविध विधाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। इन आठों अध्यायों में दलित साहित्य के परिचय से लेकर उसके उद्भव, विकास, स्वरूप, नारी चिन्तन एवं आधुनिक दलित की विभिन्न विधाओं जैसे—आत्मकथा, कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक एवं पत्रकारिता के बारे में विश्लेषणात्मक अध्ययन समकालीन सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

प्रथम अध्याय — परिचय

इस अध्याय में दलित साहित्य की अवधारणा, नामकरण, भारतीय दलित साहित्य की परम्परा, दलित साहित्य आन्दोलन, उद्भव, विकास, स्वरूप, उद्देश्य और वैचारिकता, दलित साहित्य के प्रतिमान, नारी विमर्श, प्रामाणिकता, सामाजिक रूप से दलित चेतना का विकास तथा आधुनिक परिदृश्य में दलित विमर्श आदि बिन्दुओं के माध्यम से 'दलित' शब्द और दलित साहित्य को अभिव्यक्त किया गया है। हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य आज जोरों पर चल रहा है तथा सामाजिक वर्ण-व्यवस्था के प्रति विरोधी स्वर, दलित मुक्ति चेतना, सामाजिक बन्धनों से मुक्ति, आर्थिक पराधीनता से मुक्ति और राजनीतिक अधिकार आन्दोलन आदि विचारों को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अध्याय द्वितीय — समकालीन दलित आत्मकथा

इस अध्याय के अन्तर्गत समकालीन दलित साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों की आत्मकथाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिनमें दलित लेखक— मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', रूपनारायण की 'नागफनी', श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर', माताप्रसाद की 'झोंपड़ी से राजभवन तक', सुशीला टाँकभौरे की 'शिकंजे का दर्द', तुलसीराम की 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' प्रमुख हैं।

इस प्रकार दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन में भोगे हुए दुःख, संत्रास, पीड़ा की टीस को अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

अध्याय तृतीय — समकालीन दलित कहानी

इस अध्याय में समकालीन प्रमुख दलित कहानीकारों की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिनमें प्रमुख रूप से ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहानी संग्रह 'सलाम', डॉ. सूरजपाल चौहान का 'हेरी कब आएगा', मोहनदास नैमिशराय का 'आवाजें', जयप्रकाश कर्दम का 'खरोंच' तथा 'तलाश', रमणिका गुप्ता का 'बहू जुठाई', रूपनारायण सोनकर का 'जहरीली जड़े', शरण कुमार लिम्बाले का 'दलित

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

ब्राह्मण', सुशीला टाँकभौरे की 'संघर्ष', रत्नकुमार सांभरिया, हरपाल सिंह अरूप, शैलेश मटियानी, प्रहलाद चन्द्र बोस, प्रेम कपाड़िया, अजय नावरिया आदि प्रमुख दलित कथाकारों की कहानियों के माध्यम से छुआछूत, अन्धविश्वास, सामाजिक अत्याचार एवं धार्मिक जातीय ढोंग एवं नारी उत्पीड़न जैसी समस्याओं को यहाँ उजागर करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय चतुर्थ — समकालीन दलित उपन्यास

इस अध्याय में समकालीन दलित उपन्यासकारों के उपन्यासों का आलोचनात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है जिनमें प्रमुख रूप से जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर', सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सवेर', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व', एवं 'आज बाजार बन्द है', कावेरी का 'मिस रसिया', अजय नावरिया का 'उधर के लोग', उमराव सिंह जाटव का 'थमेगा नहीं विद्रोह', भगवान दास मोरवाल का 'रेत' और 'बाबल तेरा देश में', रूपनारायण सोनकर का 'डंक' और 'सुअरदान', मोहनदास नैमिशराय का 'जख्म हमारे', यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का 'ढोलन कुँज कली' आदि उपन्यासों में वर्तमान दलित साहित्य के प्रमुख चिन्तन बिन्दु नारी चेतना, ग्रामीण चेतना तथा दलित चेतना जैसे विषयों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय पंचम — समकालीन दलित कविता

इस अध्याय के अन्तर्गत प्रमुख दलित कवियों की समकालीन काव्य रचनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन दलित कवियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि का काव्य संग्रह 'बस्स! बहुत हो चुका', 'सदियों का सन्ताप' तथा 'अब और नहीं', जयप्रकाश कर्दम का 'गंगा नहीं था मैं', 'बस्तियों से बाहर' तथा 'तिनका-तिनका आग', श्यौराज सिंह बेचैन का 'क्रौंच हूँ मैं', सूरजपाल चौहान का 'क्यों विश्वास करूँ' तथा 'कब होगी वह भोर', सुशीला टाँकभौरे का 'तुमने उसे कब पहचाना' तथा 'हमारे हिस्से का सूरज', डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का 'मूक माटी की मुखरता' तथा 'मेरी भी सुनो', लक्ष्मीनारायण सुधाकर का 'उत्पीड़न की यात्रा' तथा 'वामन फिर आ रहा है', डॉ. एन.

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

सिंह का 'सतह से उठते हुए' तथा कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, मुकेश मानस, कुसुम वियोगी, डॉ. तेजसिंह, पूनम तुषामड, जयप्रकाश लीलवान, दामोदर मोरे, सी.वी. भारती जैसे महान दलित कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से दलित आक्रोश, दलित मुक्ति चेतना, समाजिक क्रूरता एवं रूढ़ियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर, नारी चेतना तथा नारी उत्पीड़न के प्रति आक्रोश आदि का यहाँ पर यथार्थ चित्रण किया गया है।

अध्याय षष्ठ — समकालीन दलित आलोचना

इस अध्याय में प्रमुख दलित चिन्तकों ने अपने आलोचनात्मक ग्रन्थों में दलित साहित्य का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है जिनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ.एन. सिंह, डॉ. धर्मवीर, डॉ. जयप्रकाश कर्दम, कँवल भारती, डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, माता प्रसाद, डॉ. सुशीला टाँकभौरे, डॉ. दयानन्द बटोही, डॉ.तेज सिंह, डॉ. रजतरानी मीनू आदि दलित आलोचकों ने कर्मकाण्डी, अन्धविश्वास एवं पौराणिक मान्यताओं से परे हटकर दलित साहित्य की सभी विधाओं के बारे में बिना किसी भय और भेद-भाव से मुक्त होकर अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

अध्याय सप्तम — समकालीन दलित नाटक और पत्रकारिता

इस अध्याय में समकालीन प्रमुख दलित नाटकों एवं दलित पत्रकारिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

प्रमुख दलित नाटकों में डॉ. सुशीला टाँकभौरे का 'नंगा सत्य', माता प्रसाद का 'तड़प मुक्ति की', रूप नारायण सोनकर का 'छायावती', 'समाजद्रोही' एवं 'एक दलित डिप्टी कलेक्टर', मनोज कुमार का 'बारात नहीं चढ़ेगी' तथा रत्नकुमार सांभरिया कृत 'उजास' तथा 'विमा' आदि नाटकों में नारी के प्रति अनादर या शोषण, दलित उत्पीड़न तथा मानवतावाद आदि पर विचार करने का प्रयास किया है।

दलित पत्रकारिता के सन्दर्भ में अनेक दलित चिन्तकों, जैसे—मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कँवल भारती, सुशीला टाँकभौरे, रजनी तिलक आदि

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

ने समाज के सामाजिक और राजनीतिक जीवन की अपनी अनेक माँग व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपों में अभिव्यक्त की है।

अध्याय अष्टम — उपसंहार

इस अध्याय में सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध के सार को तारतम्यता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिसमें प्रत्येक अध्याय में अनुसन्धान एवं विवेचन के लिए किये गये प्रयासों को क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है तथा अन्त में दलित साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को प्रस्तुत किया गया है। दलित साहित्य में आम आदमी का चित्रण हुआ है। दलित साहित्य सामन्ती सत्ता, मूल्यों, ईश्वरीय सत्ता और अन्धविश्वास को नकारता है। दलित साहित्य में आक्रोश, चीख, घुटन, छटपटाहट, वेदना, चुभन और निराशा है। यह स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व एवं न्याय का पक्षधर है। दलित साहित्य का मूल मानवतावाद है। इसलिए वह सर्वमान्य है। इस प्रकार के विषयों को प्रमुख दलित साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

❑

Created by demo version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

शोध सारांश

आज की सदी इक्कीसवीं सदी है, जिसमें विश्व विकास के साथ कई सारी चुनौतियों को लेकर आगे बढ़ रहा है, चुनौतियाँ जो बार-बार दर्शा रही है कि हम भले ही अपने को तीसरी महासत्ता की ओर ले जा रहे हो किन्तु आज भी आम आदमी अपनी आवश्यकता को पूरा नहीं कर पा रहा है।

समाज में आज भी कई लोग ऐसे हैं जिन्हें खाने को रोटी, तन पर कपड़ा और सिर ढकने के लिए छत नसीब नहीं है। ऐसी स्थिति में भले हम यह कैसे कह सकते हैं कि भारत विकसित हो रहा है, तो निश्चय ही हमें विकास की परिभाषा बदलने की आवश्यकता महसूस होती है। आम आदमी की भावनाओं, विचारों और सोचों को साहित्य का अंग नहीं बनने दिया, समाज में विद्यमान विरोधों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

साहित्य में दलित साहित्य का अभाव रहा है, साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है, दर्पण में वही दिखना चाहिये जो सामने हो, प्रश्न यह है कि, क्या वास्तव में भारतीय साहित्य में हिन्दी साहित्य में समाज का वास्तविक रूप दिखलाया है, यदि ऐसा हुआ होता तो शायद दलित साहित्य की आवाज नहीं उठती यदि साहित्य में दलित साहित्य को उचित स्थान दिया गया होता तो शायद आज स्थिति अलग हो सकती थी। समाज परिवर्तनशील है, समाज की मान्यताएँ भी परिवर्तनशील होनी चाहिए, इसलिए उसका साहित्य भी परिवर्तनशील होना चाहिए।

एक अनुसन्धानकर्ता का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि वह अपने विषय से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन कर उनका विश्लेषण करें। दलित समाज की वास्तविक चेतना अपने समाज को पराधीनता की उन परम्पराओं से मुक्ति दिलाने की है, जिन्होंने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्य धारा से अस्पृश्य और कमजोर बनाये रखा।

हिन्दी में लिखित साहित्य ऐसी अस्पृश्यता के खिलाफ संघर्ष की आवाज उठाता है तथा भारतीय समाज के जीवन की मुख्य धारा में दलित समाज को एक निश्चित अर्थ

प्रदान करते हुए उनके द्वारा ज्ञान, पानी और जमीन जैसी सार्वजनिक वस्तुओं के लिए किये जा रहे संघर्ष की आज राष्ट्रीय जीवन में अहम सवाल घोषित करता है।

दलित साहित्य में अभिव्यक्ति में यह सवाल और उससे उपजे संघर्ष उसी वृहत्तर समाज से जुड़ने की कोशिश का एक हिस्सा है, कहना ना होगा, दलित साहित्य में उभरा यह संघर्ष एक सामाजिक जीवन मूल्यों पर केन्द्रित सामाजिक व्यवस्था की माँग करता है।

जाहिर है—'दलित साहित्य की अभिव्यक्ति' यह सवाल और उससे उपजा संघर्ष इस समाज जीवन मूल्यों पर केन्द्रित सामाजिक व्यवस्था की माँग करता है जिसमें ज्ञान, पानी और जमीन पर सबका अधिकार हो, कैसे यह संघर्ष की दिशा में एक कदम है।

अत: इस शोध कार्य को करने का मेरा मूल उद्देश्य यह होगा कि भारतीय वर्ण–व्यवस्था की पक्षपातपूर्ण और दमनकारी नीतियों के खिलाफ दलित समाज की एक रचनात्मक अभिव्यक्ति है।

साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब झलकता है। समाज की तरह साहित्य भी गतिशील होता है तथा साहित्य, समाज में हो रहे परिवर्तन का साक्षी होता है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य पर गौर किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि दलित चेतना और दलित विमर्श के दर्शन होते रहे हैं तथा आधुनिक काल में दलित विमर्श एक विचारधारा के रूप में उभर कर सामने आयी है। आजकल दलित साहित्य का चारों ओर बोलबाला है। अब आवश्यकता इस बात की है कि दलित साहित्य का सन्देश आम जन तक पहुँचे क्योंकि भारतीय समाज का एक वर्ग ऐसा भी है, जिसको सदियों से उत्पीड़ित, अपमानित किया गया जिनके साथ पशुओं से बदतर व्यवहार किया गया और दूसरों की सेवा करना ही इनका धर्म निर्धारित किया गया। इनमें चेतना विकसित न हो इसलिए शिक्षा जैसे मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया। आज दलित वर्ग अपनी अस्मिता, सत्ता संघर्ष के साथ–साथ साहित्य और सांस्कृतिक संघर्ष के संकट से गुजर रहा है। इसी संघर्ष की अभिव्यक्ति दलित साहित्य में हो रही है।

दलित समाज में संघर्ष व चेतना का स्वर फूँकने में दलित साहित्य निरन्तर क्रियाशील है। सामाजिक व राजनीतिक पटल पर हुए अनेक आन्दोलनों ने भी इसकी धार

को तेज किया है। आज सम्पूर्ण भारत में चलाये जा रहे दलित आन्दोलन का उद्देश्य वर्ण-व्यवस्था का अन्त कर उसकी जगह एक ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक मुक्ति की बात हो और जिसमें समाज को समानता की कसौटी पर कसा जा सके।

दलित साहित्य को अम्बेडकरवादी जीवन प्रेरणाओं का साहित्य कहा जाता है क्योंकि अम्बेडकर दर्शन दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत है। इन्होंने दलित साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया है जिसके कारण समकालीन दलित साहित्य फल-फूल रहा है तथा जिसकी अनेक विधाओं, जैसे—आत्मकथा, कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति हो रही है।

मैंने अपने शोध शीर्षक 'समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद)' को शोध प्रबन्ध के रूप में चुना है जिसके माध्यम से समकालीन दलित साहित्य को अनेक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सके।

भारतीय समाज सदियों से वर्ण-व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ा रहा है। इस वर्ण-व्यवस्था की कलुषित मानसिकता ने मनुष्य-मनुष्य के मध्य अलगाव पैदा कर दिया, जिसके चलते पूरा भारत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में बँट गया। इसी वर्ण-व्यवस्था के चलते सबसे निकृष्ट वर्ग शूद्र को शिक्षा और ज्ञान से वंचित कर दिया गया। किसी भी धार्मिक अनुष्ठान एवं कार्यों में उनकी उपस्थिति निषिद्ध कर दी गई तथा उनको अपने से ऊपर तीन वर्णों की सेवा करने का कार्य थोप दिया। इस प्रकार उनको तमाम अधिकारों से वंचित कर उनका जीवन नरक तुल्य बना दिया गया।

आधुनिक समय में साहित्य व समाज में जो 'दलित' शब्द चर्चा में आया उसके मूल में यही शूद्र है। शूद्र की अवधारणा प्राचीन सन्दर्भ एवं दलित की अवधारणा वर्तमान सन्दर्भ में जाँची एवं परखी जा सकती है।

'दलित' शब्द की अवधारणा व्यक्तिपरक कम होकर समुदायपरक अधिक है तथा यह किसी जाति विशेष के लिए प्रयुक्त नहीं होता अर्थात् 'दलित' शब्द का अर्थ, जिसका दलन हुआ हो, जो दबाया-कुचला गया हो, जिसके साथ अन्याय-अत्याचार किये गये हों तथा जिसका एक सोची समझी साजिश के तहत उत्पीड़न व शोषण किया गया हो।

साहित्य समाज का दर्पण है अत: समाज में व्याप्त ऐसी घोर विडम्बना का प्रतिबिम्ब साहित्य में होना आवश्यक है। प्राचीन समय से लेकर आधुनिक काल तक दलित चेतना किसी–न–किसी स्वरूप में विद्यमान थी लेकिन इसकी व्यापकता आधुनिक काल की देन है क्योंकि आधुनिककाल में दलित अपने अधिकारों की माँग तथा अन्याय व अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। इस दृष्टि से यह युग दलित, पीड़ित, शोषित जातियों के लिए स्वर्णयुग से कम नहीं है।

हिन्दी साहित्य जगत में दलित साहित्य का प्रादुर्भाव इसी संघर्ष का परिणाम है जिसके माध्यम से दलितों ने नये मानवीय एवं समतामूलक समाज के निर्माण की आधारशिला रखी तथा इसका आधार स्रोत दलितों के मसीहा डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे जिन्होंने दलित साहित्य को विकास पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। उनकी विचारधारा दलित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार बनी क्योंकि अम्बेडकर दर्शन दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत है। उन्होंने दलित साहित्य को आज एक अलग पहचान दिलवाई है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इन्हीं स्रोतों को आधार बनाकर समकालीन दलित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

आधुनिक काल में अनेक दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित साहित्य का सृजन कर रहे हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो समकालीन दलित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन एक विस्तृत एवं वृहद् कार्य बन जाता है अत: शोध की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए ओर अपने अध्ययन को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए समकालीन दलित साहित्यकारों एवं उनकी रचनाओं का समावेश किया और 'समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद)' नामक विषय पर शोधकार्य प्रस्तुत किया जिसमें समकालीन दलित साहित्य की विविध विधाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। इन आठों अध्यायों में दलित साहित्य के परिचय से लेकर उसके उद्भव, विकास, स्वरूप, नारी चिन्तन एवं आधुनिक दलित की विभिन्न विधाओं जैसे—आत्मकथा, कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक एवं पत्रकारिता के बारे में विश्लेषणात्मक अध्ययन समकालीन सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय — परिचय

इस अध्याय में दलित साहित्य की अवधारणा, नामकरण, भारतीय दलित साहित्य की परम्परा, दलित साहित्य आन्दोलन, उद्भव, विकास, स्वरूप, उद्देश्य और वैचारिकता, दलित साहित्य के प्रतिमान, नारी विमर्श, प्रामाणिकता, सामाजिक रूप से दलित चेतना का विकास तथा आधुनिक परिदृश्य में दलित विमर्श आदि बिन्दुओं के माध्यम से 'दलित' शब्द और दलित साहित्य को अभिव्यक्त किया गया है। हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य आज जोरों पर चल रहा है तथा सामाजिक वर्ण–व्यवस्था के प्रति विरोधी स्वर, दलित मुक्ति चेतना, सामाजिक बन्धनों से मुक्ति, आर्थिक पराधीनता से मुक्ति और राजनीतिक अधिकार आन्दोलन आदि विचारों को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अध्याय द्वितीय — समकालीन दलित आत्मकथा

इस अध्याय के अन्तर्गत समकालीन दलित साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों की आत्मकथाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिनमें दलित लेखक— मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', रूपनारायण की 'नागफनी', श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर', माताप्रसाद की 'झोंपड़ी से राजभवन तक', सुशीला टाँकभौरे की 'शिकंजे का दर्द', तुलसीराम की 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' प्रमुख हैं।

इस प्रकार दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन में भोगे हुए दुःख, संत्रास, पीड़ा की टीस को अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

अध्याय तृतीय — समकालीन दलित कहानी

इस अध्याय में समकालीन प्रमुख दलित कहानीकारों की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिनमें प्रमुख रूप से ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहानी संग्रह 'सलाम', डॉ. सूरजपाल चौहान का 'हेरी कब आएगा', मोहनदास नैमिशराय का 'आवाजें', जयप्रकाश कर्दम का 'खरोंच' तथा 'तलाश', रमणिका गुप्ता का 'बहू जुठाई', रूपनारायण सोनकर का 'जहरीली जड़े', शरण कुमार लिम्बाले का 'दलित ब्राह्मण', सुशीला टाँकभौरे की 'संघर्ष', रत्नकुमार सांभरिया, हरपाल सिंह अरूप, शैलेश मटियानी, प्रहलाद चन्द्र बोस, प्रेम कपाड़िया, अजय नावरिया आदि प्रमुख दलित कथाकारों की कहानियों के माध्यम से छुआछूत, अन्धविश्वास, सामाजिक अत्याचार एवं धार्मिक जातीय ढोंग एवं नारी उत्पीड़न जैसी समस्याओं को यहाँ उजागर करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय चतुर्थ — समकालीन दलित उपन्यास

इस अध्याय में समकालीन दलित उपन्यासकारों के उपन्यासों का आलोचनात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है जिनमें प्रमुख रूप से जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर', सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सवेर', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व', एवं 'आज बाजार बन्द है', कावेरी का 'मिस रसिया', अजय नावरिया का 'उधर के लोग', उमराव सिंह जाटव का 'थमेगा नहीं विद्रोह', भगवान दास मोरवाल का 'रेत' और 'बाबल तेरा देश में', रूपनारायण सोनकर का 'डंक' और 'सुअरदान', मोहनदास नैमिशराय का 'जख्म हमारे', यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का 'ढोलन कुँज कली' आदि उपन्यासों में वर्तमान दलित साहित्य के प्रमुख चिन्तन बिन्दु नारी चेतना, ग्रामीण चेतना तथा दलित चेतना जैसे विषयों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय पंचम — समकालीन दलित कविता

इस अध्याय के अन्तर्गत प्रमुख दलित कवियों की समकालीन काव्य रचनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन दलित कवियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि

का काव्य संग्रह 'बस्स! बहुत हो चुका', 'सदियों का सन्ताप' तथा 'अब और नहीं', जयप्रकाश कर्दम का 'गंगा नहीं था मैं', 'बस्तियों से बाहर' तथा 'तिनका-तिनका आग', श्यौराज सिंह बेचैन का 'क्रौंच हूँ मैं', सूरजपाल चौहान का 'क्यों विश्वास करूँ' तथा 'कब होगी वह भोर', सुशीला टाँकभौरे का 'तुमने उसे कब पहचाना' तथा 'हमारे हिस्से का सूरज', डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का 'मूक माटी की मुखरता' तथा 'मेरी भी सुनो', लक्ष्मीनारायण सुधाकर का 'उत्पीड़न की यात्रा' तथा 'वामन फिर आ रहा है', डॉ. एन. सिंह का 'सतह से उठते हुए' तथा कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, मुकेश मानस, कुसुम वियोगी, डॉ. तेजसिंह, पूनम तुषामड, जयप्रकाश लीलवान, दामोदर मोरे, सी.वी. भारती जैसे महान दलित कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से दलित आक्रोश, दलित मुक्ति चेतना, समाजिक क्रूरता एवं रूढ़ियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर, नारी चेतना तथा नारी उत्पीड़न के प्रति आक्रोश आदि का यहाँ पर यथार्थ चित्रण किया गया है।

अध्याय षष्ठ — समकालीन दलित आलोचना

इस अध्याय में प्रमुख दलित चिन्तकों ने अपने आलोचनात्मक ग्रन्थों में दलित साहित्य का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है जिनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ.एन. सिंह, डॉ. धर्मवीर, डॉ. जयप्रकाश कर्दम, कँवल भारती, डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, माता प्रसाद, डॉ. सुशीला टाँकभौरे, डॉ. दयानन्द बटोही, डॉ.तेज सिंह, डॉ. रजतरानी मीनू आदि दलित आलोचकों ने कर्मकाण्डी, अन्धविश्वास एवं पौराणिक मान्यताओं से परे हटकर दलित साहित्य की सभी विधाओं के बारे में बिना किसी भय और भेद-भाव से मुक्त होकर अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

अध्याय सप्तम — समकालीन दलित नाटक और पत्रकारिता

इस अध्याय में समकालीन प्रमुख दलित नाटकों एवं दलित पत्रकारिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

प्रमुख दलित नाटकों में डॉ. सुशीला टाँकभौरे का 'नंगा सत्य', माता प्रसाद का 'तड़प मुक्ति की', रूप नारायण सोनकर का 'छायावती', 'समाजद्रोही' एवं 'एक दलित डिप्टी कलेक्टर', मनोज कुमार का 'बारात नहीं चढ़ेगी' तथा रत्नकुमार सांभरिया कृत 'उजास' तथा 'विमा' आदि नाटकों में नारी के प्रति अनादर या शोषण, दलित उत्पीड़न तथा मानवतावाद आदि पर विचार करने का प्रयास किया है।

दलित पत्रकारिता के सन्दर्भ में अनेक दलित चिन्तकों, जैसे—मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कँवल भारती, सुशीला टाँकभौरे, रजनी तिलक आदि ने समाज के सामाजिक और राजनीतिक जीवन की अपनी अनेक माँग व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपों में अभिव्यक्त की है।

अध्याय अष्टम — उपसंहार

इस अध्याय में सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध के सार को तारतम्यता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिसमें प्रत्येक अध्याय में अनुसन्धान एवं विवेचन के लिए किये गये प्रयासों को क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है तथा अन्त में दलित साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को प्रस्तुत किया गया है। दलित साहित्य में आम आदमी का चित्रण हुआ है। दलित साहित्य सामन्ती सत्ता, मूल्यों, ईश्वरीय सत्ता और अन्धविश्वास को नकारता है। दलित साहित्य में आक्रोश, चीख, घुटन, छटपटाहट, वेदना, चुभन और निराशा है। यह स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व एवं न्याय का पक्षधर है। दलित साहित्य का मूल मानवतावाद है। इसलिए वह सर्वमान्य है। इस प्रकार के विषयों को प्रमुख दलित साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

शोधार्थी **शोध पर्यवेक्षक**

परिशिष्ट

आधार ग्रन्थ सूची

आत्मकथा

1.	मोहनदास नैमिशराय	अपने-अपने पिंजहरे (भाग 1 व 2), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	जूठन, राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
3.	सूरजपाल चौहान	तिरस्कृत, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद
4.	रूपनारायण सोनकर	नागफनी, शिल्पायन प्रकाशन, गाजियाबाद
5.	श्यौराज सिंह बेचैन	मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6.	माता प्रसाद	झोपड़ी से राजभवन, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली
7.	सुशीला टाँकभौरे	शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
8.	डॉ. तुलसीराम	मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9.	डॉ. तुलसीराम	मणिकर्णिका (आत्मकथा भाग-2), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

कहानी संग्रह

1.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	सलाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	घुसपैठिए, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3.	सूरजपाल चौहान	हैरी कब आएगा, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद
4.	जयप्रकाश कर्दम	तलाश
5.	रमणिका गुप्ता (सं.)	दलित चेतना कहानी, नवलेखन प्रकाशन, हजारी बाग, झारखण्ड

6.	रत्नकुमार सांभरिया	दलित समाज की कहानियाँ, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
7.	शैलेश मटियानी	शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ, प्रकल्प प्रकाशन इलाहाबाद
8.	रजत रानी मीनू (सं.)	हाशिये से बाहर, श्री साहित्यिक संस्थान, गाजियाबाद

उपन्यास

1.	जयप्रकाश कर्दम	छप्पर, राहुल प्रकाशन, दिल्ली
2.	सत्य प्रकाश	जस-तस भई सवेर
3.	मोहनदास नैमिशराय	मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली
4.	मोहनदास नैमिशराय	आज बाजार बन्द है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
5.	कावेरी	मिस रमिया, आकाश प्रकाशन, दिल्ली
6.	अजय नावरिया	उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
7.	उमराव सिंह जाटव	थमेगा नहीं विद्रोह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
8.	भगवान दास मोरवाल	रेत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
9.	भगवान दास मोरवाल	बाबल तेरा देश में, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
10.	रूपनारायण सोनकर	डंक, अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली
11.	रूपनारायण सोनकर	सुअरदान, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली

कविता

1.	माता प्रसाद	दलित साहित्य में प्रमुख विधाएँ, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली
2.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली
3.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	सदियों का सन्ताप, फिलहाल प्रकाशन, देहरादून
4.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
5.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	अब और नहीं (जाति), राधाकृष्णन प्रकाशन,

		दिल्ली
6.	जयप्रकाश कर्दम	गूँगा नहीं था मैं, आतिश प्रकाशन, दिल्ली
7.	जयप्रकाश कर्दम	दलित साहित्य वार्षिकी (2000-2016), सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली
8.	श्यौराज सिंह बेचैन	क्रौंच हूँ मैं, सहयोग प्रकाशन, दिल्ली
9.	सूरजपाल चौहान	क्यों विश्वास करूँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
10.	कँवल भारती	दलित निर्वाचित कविताएँ, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद
11.	कँवल भारती	तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती? बोधिसत्व प्रकाशन, रायपुर
12.	एन. सिंह	सतह से उठते हुए, राज पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
13.	सुशीला टाँकभौरे	तुमने उसे कब पहचाना, शरद प्रकाशन, दिल्ली
14.	कुसुम वियोगी	व्यवस्था के विषधर (हरिजन) अपना प्रकाशन, दिल्ली
15.	लक्ष्मीनारायण सुधाकर	उत्पीड़न की यात्रा, कंचन प्रकाशन, दिल्ली
16.	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी	मूक माटी की मुखरता, आतिश प्रकाशन, दिल्ली
17.	पूनम तुषामड	माँ मुझे मत दो, आन्दोलन प्रकाशन, नई दिल्ली
18.	जयप्रकाश लीलवान	अब हमें ही चलना है, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली
19.	डॉ. सी. बी. भारती	आक्रोश, लोकसूचक प्रकाशन, फरूखाबाद

आलोचना

1.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्प, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली
2.	जयप्रकाश कर्दम	इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन, पंकज पुस्तक मन्दिर, दिल्ली
3.	डॉ. धर्मवीर	दलित चिन्तन का विकास अभिशिप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

4.	श्यौराज सिंह बेचैन	दलित क्रान्ति का साहित्य, संगीता प्रकाशन, दिल्ली
5.	माता प्रसाद	हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
6.	डॉ. तेज सिंह	आज का दलित साहित्य, मनभावन प्रकाशन, दिल्ली
7.	शरणकुमार लिंबाले	दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
8.	ज्ञानेन्द्र रावत	दलित नारी : एक विमर्श, सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली

नाटक एवं पत्रकारिता

1.	सुशीला टॉकभौरे	नंगा सत्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2.	श्योराज सिंह बेचैन	समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में दलित उवाच, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली
3.	माता प्रसाद	तड़प मुक्ति की, अतिश प्रकाशन, हरिनगर, दिल्ली
4.	रत्नकुमार साँभरिया	विमा, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली
5.	रत्नकुमार साँभरिया	उजास, लोकमित्र प्रकाशन, दिल्ली
6.	देवेन्द्र चौबे	हिन्दी पत्रकारिता में दलित विमर्श और अम्बेडकर, आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, ओरियन्ट ब्लेकस्वान प्रकाशन, दिल्ली

सहायक ग्रन्थ

1.	श्यामाचरण दुबे	भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली
2.	सत्यकेतु विद्यालंकार	मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली
3.	डॉ. पूरण मल	दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर (राजस्थान)
4.	डॉ. नर्मदेश्वर प्रसाद	जाति–व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
5.	डॉ. विमलचन्द्र पाण्डेय	प्राचीन भारत का इतिहास, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली

6.	सं. प्रणव बंदोपाध्याय	दलित प्रसंग, शिलालेख प्रकाशन, दिल्ली
7.	पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'	उत्तर आधुनिकता : बहुआयामी सन्दर्भ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8.	सं. देवशंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र	उत्तर आधुनिकता : कुछ विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9.	कृष्णदत्त पालीवाल	उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
10.	सुधीश पचौरी	आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
11.	डॉ. मीना खरात	उत्तर आधुनिकता और मनोहरश्याम जोशी, समता प्रकाशन, कानपुर
12.	सुधीश पचौरी	उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
13.	देवेन्द्र चौबे	आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, ओरियंट ब्लैक स्वॉन प्रा. लि., नई दिल्ली
14.	सुधीश पचौरी	उत्तर आधुनिक दौर में साहित्य, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली
15.	डॉ. पूरण मल	अस्पृश्यता एवं दलित चेतना, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर
16.	जयप्रकाश कर्दम	दलित विमर्श : साहित्य के आईने में, साहित्य संस्थान गाजियाबाद
17.	सं. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी	दलित साहित्य : रचना और विचार, अतिश प्रकाशन, दिल्ली
18.	सं.अभयकुमार दुबे	आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
19.	डॉ. नरसिंहदास वणकर	दलित विमर्श, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर
20.	सं. हरपाल सिंह 'अरूष'	ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतान्त्रिक चेतना, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा

21.	सं. डॉ. धनंजय चौहाण, डॉ. धीरजभाई वणकर	भारतीय साहित्य एवं दलित चेतना, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर
22.	रघुवीर सिंह	डॉ. अम्बेडकर और दलित चेतना, कामना प्रकाशन, दिल्ली
23.	रमेश कुमार	ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'बस्स! बहुत हो चुका' : संवेदना और शिल्प, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली
24.	हजारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
25.	डॉ. विनयकुमार पाठक	हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, मित्तल एण्ड संस, दिल्ली
26.	सं. डॉ. एन. सिंह	दलित साहित्य और युगबोध, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद
27.	हरपाल सिंह 'अरूष'	दलित साहित्य की भूमिका, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
28.	जयप्रकाश कर्दम	छप्पर, संगीता प्रकाशन, दिल्ली
29.	सं. डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ. देवेन्द्र चौबे	चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य, नवलेखन प्रकाशन हजारी बाग, बिहार
30.	विनय विश्वास	आज की कविता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
31.	पी. लक्ष्मी नरसु	बौद्ध धर्म का सार, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण संस्कृति समिति, अलीगढ़
32.	टीकाकार जयदयाल गोयन्दका	श्रीमत् भगवत् गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
33.	डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर	शूद्रों की खोज, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली
34.	ओमप्रकाश वाल्मीकि	सफाई देवता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
35.	सं. जयप्रकाश कर्दम	दलित साहित्य-2000, अतिश प्रकाशन, दिल्ली
36.	सं. जयप्रकाश कर्दम	दलित साहित्य-2001, अतिश प्रकाशन, दिल्ली
37.	रजनीश ओशो	संभोग से समाधि की ओर, डायमंड पोकेट बुक्स प्रा.लि. दिल्ली
38.	राजनाथ शर्मा	साहित्यिक निबंध, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

39.	डॉ. हरिनारायण ठाकुर	दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
40.	डॉ. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी	बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद
41.	डॉ. सुखबीर सिंह	बयान बाहर, जयश्री प्रकाशन, नई दिल्ली
42.	सूरजपाल चौहान	क्यों विश्वास करूँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
43.	सं. रजतरानी 'मीनू'	हाशिये से बाहर, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद
44.	सं. माताप्रसाद	दलित साहित्य में प्रमुख विधाएँ, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद
45.	डॉ. श्यौराजसिंह बेचैन, डॉ. रजतरानी 'मीनू'	दलित दखल, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद
46.	रामधारी सिंह दिनकर	रश्मिरथी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
47.	हरिवंश राय बच्चन	मधुशाला, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
48.	डॉ. जगदीश गुप्त	नई कविता का स्वरूप और समस्याएँ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
49.	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी	मूक माटी की मुखरता, अतिश प्रकाशन, दिल्ली
50.	रामधारी सिंह 'दिनकर'	संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
51.	साक्षान्त मस्के	परम्परागत वर्ण-व्यवस्था और दलित साहित्य, नई दिल्ली
52.	सं. रूपचन्द गौतम	दलित अभिव्यक्ति : संवाद और प्रतिवाद, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली
53.	प्रो. चमनलाल	दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
54.	डॉ. शरण कुमार लिंबाले	दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

55.	डॉ. धनंजय चौहाण	हिन्दी साहित्य में दलित सरोकार, माया प्रकाशन, कानपुर
56.	डॉ. आनंद वास्कर	हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर
57.	सं. ओमप्रकाश वाल्मीकि	दलित हस्तक्षेप, शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली
58.	डॉ. रामगोपाल भारतीय	दलित साहित्य के यक्ष प्रश्न, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली
59.	रजनीश ओशो	माटी कहे कुम्हार सूँ, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लि. नई दिल्ली
60.	सं. दिलीप मेहरा	हिन्दी कथा-साहित्य में दलित विमर्श, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली
61.	सं. माताप्रसाद	हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
62.	मोहनसिंह	डॉ. भीमराव अम्बेडकर : व्यक्तित्व के कुछ पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
63.	डॉ. डाह्याभाई जी. रोहित	कवि दिनकर के साहित्य में दलित, पीड़ित तथा शोषितों का चित्रण एवं उनके उत्थान का स्वर, शांति प्रकाशन, रोहतक, हरियाणा
64.	डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर	अँधा समाज और बहरे लोग, सी.टी. प्रिन्टर्स, दिल्ली
65.	सं. शिवबाबू मिश्र	जूठन : एक विमर्श, शब्द सृष्टि, मौजपुर, दिल्ली
66.	डॉ. भरत सगरे	दलित साहित्य : अनुसंधान के आयाम, डिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर
67.	एन. आर. सागर	आजाद है हम, संगीता प्रकाशन, दिल्ली
68.	डॉ. एन. सिंह	कठौती में गंगा, लोकवाणी संस्थान, दिल्ली
69.	जयप्रकाश कर्दम	गूँगा नहीं था मैं, आतिश प्रकाशन, दिल्ली
70.	डॉ. श्यौराजसिंह बेचैन	नई फसल, मानसी प्रेस, बिलारी, मुरादाबाद
71.	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी	दलित साहित्य और सामाजिक न्याय, कंचन प्रकाशन, दिल्ली

72.	रमणिका गुप्ता	दलित चेतना : साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली
73.	डॉ. जीतूभाई मकवाणा	समकालीन हिन्दी दलित साहित्य : एक अध्ययन, दर्पण प्रकाशन, नडियाद
74.	कुसुम वियोगी	टुकड़े-टुकड़े दंश, मुहिम प्रकाशन, हापुड़
75.	मोहनदास नैमिशराय	मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली
76.	सं. सूरजपाल चौहाण	हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद
77.	डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर	सिन्धु घाटी बोल उठी, रा. प्र. समिति, दिल्ली
78.	डॉ. एन. सिंह	सतह से उठते हुए, राज पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
79.	डॉ. सुरेश मारुतिराव	हिन्दी और मराठी दलित साहित्य : एक तुलनात्मक अध्ययन, नवभारत प्रकाशन, दिल्ली
80.	दयानंद बटोही	साहित्य और सामाजिक क्रांति, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली

पत्र-पत्रिकाएँ

1. हँस
2. अपेक्षा
3. बयान
4. कथाक्रम
5. आलोचना
6. संचारिका
7. आजकल
8. नयापथ
9. तीसरा पक्ष
10. वसुधा
11. इंडिया टुडे (साहित्य वार्षिकी)

शब्दकोश

1. हिन्दी शब्द कोश — सं. डॉ. हरदेव बाहरी
2. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर — सं. रामचन्द्र
3. संस्कृत-हिन्दी इंग्लिश कोश — सं. सूर्यकान्त
4. मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश — सं. सत्यप्रकाश

ABEER

A Journal of Research

I.S.S.N. No. 2249-3409

R.N.I. No. RAJBIL/36886/2011 **I.S.S.N. No. 2249-3409** **July-September 2016**

Editor

Dr. Pravesh Kumar

ABEER

July-September 2016
I.S.S.N. No. 2249-3409
R.N.I. No. RAJBIL/36886/2011
Quarterly Journal

Editorial office
A-37, Malviya Nagar,
Jaipur-302017
Mobile : 9928358933

The facts and view in the Article / Research papers etc are of the authors and will be totally responsible for the authenticity, validity and originality etc of the Article and Research papers.

EDITORIAL BOARD

1. Robert G.Davies
International Consultant
Brooks by Malton Colloege
Leicestershiry U.K

2. Dr. Gulb Singh Azad
Director
National Center for cooperative Education
New-Delhi

3. Dr. Lokesh jain
Center for Studies in
Rural Management
Gujarat Vidyapith
Gandhinagar (Gujrat)

4. Madhur srivastava
Director,
Samgra Sevarth Sansthan
Jaipur

5. Dr. Anupam Pandey
Department of Geography
University of Allahabad
(U.P)

6. Dr. Anita Surana
H.R.L. Sahariya Govt. P.G. College,
Kaladera, Jaipur

7. Dr. R.K Sinha
Asst.Prof
Navneet College, Mumbai

CONTENTS

1.	Socialization in the Age of Globalization	Dr. Deepak Kumar	1-12
2.	The Beginning of Heritage Hotels in Rajasthan	Mukesh Sharma	13-14
3.	IMF and World Bank : Role and Relationship Between the Lines	H.L. Gurjar	15-18
4.	Rural waste to energy and Swachh Bharat Abhiyan	Manisha Sharma	19-26
5.	Jain Law on Maintenance	Dr. Beena Dewan	27-34
6.	Training for State Civil Services in Rajasthan	Harshlika Khangarot	35-42
7.	बाल श्रम सामाजिक अभिशाप	डॉ. ज्योतिशंकर भट्टाचार्य	43-49
8.	गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों में नैतिकता एवं राजनीति	सुरेश कुमार जाट	50-56
9.	डिजिटल इंडिया द्वारा सशक्त होती पंचायतें	रामावतार शर्मा	57-65
10.	विनोबा चिन्तन में विकेन्द्रीकरण	अभिलाषा चौधरी	66-69
11.	प्राचीन कला की वाहक : राजस्थान की चित्रांकन परम्परा	डॉ. सुषमा सिंह पूजा चहल	70-80
12.	संस्कृत नाट्य उत्पत्ति की विविध विचारधाराएँ	अजय गोग्यान	81-87
13.	प्राचीन काल में भारत के प्रमुख वस्त्र, चर्म तथा अन्य महत्वपूर्ण शिल्प उद्योग	टीना मीना	88-94
14.	भारत में नैतिक समस्याएँ एवं गाँधीवादी विकल्प	ऋतु आर्य	95-103
15.	भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की महत्ता	डॉ. रीतिका जैन	104-107
16.	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में अनुशासन आचरण का अध्ययन	प्रो. मधु माथुर कल्पना व्यास	108-114
17.	विश्व पटल पर भारत एक उभरती महाशक्ति के रूप में	मुकेश कुमार	115-118
18.	अमेरिकी हितों में मीडिया की भूमिका : एक अध्ययन	डॉ. निर्मला सिंह संदीप पुनियाँ	119-122
19.	स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च	राधाकिशन मीना	123-124

20.	भारतीयसंस्कृतौ नारीणां स्थानम्	रघुवीर सिंह मीना	125-129
21.	मुगलकालीन इतिहास लेखन : एक नवीन मूल्यांकन	ओम प्रकाश बैरवा	130-135
22.	जयपुर के प्रमुख तीर्थ स्थल	अशोक कुमार यादव	136-142
23.	जैन सम्प्रदाय एवं नैतिकता	डॉ. उपेन्द्र पांचाल	143-147
24.	स्वतन्त्रता बाद राजस्थान में किसान राजनीति	मंजू चौधरी	148-155
25.	वर्तमान समाज में नारी की स्थिति	डॉ. सदफ सिद्दिकी	156-163
26.	शिक्षा प्रणाली और नैतिकता	तारा कँवर	164-168
26.	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 के तहत सामाजिक विज्ञान विषय का विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ. अजय सुराणा रश्मि शर्मा	169-172
27.	प्राकृतिक आपदाएँ एवं प्रबन्धन : राजस्थान के सन्दर्भ में	डॉ. शंकरलाल गोस्वामी	173-180
28.	अहिंसा और विज्ञान	अनामिका यादव	181-184
29.	**मानवाधिकार एवं नारी विमर्श**	**श्रीकृष्ण शर्मा**	185-189
30.	**सितारों के खेल : सामाजिक यथार्थ की एक झलक**	**गुमान सिंह जाटव**	190-194
31.	**समकालीन दलित कविता में सामाजिक संघर्ष और विद्रोह का स्वर**	**मोहरसिंह बैरवा**	195-199

समकालीन दलित कविता में सामाजिक संघर्ष और विद्रोह का स्वर

- मोहरसिंह बैरवा

''भूख जब भी इन्सान को बेजार करती है ,चेहरे का नकाब तार–तार करती है।''

दलित साहित्य दलित समाज के संघर्ष की मन व्यथा का दस्तावेज है जिसमें निषेध, नकार तथा विद्रोह सर्वोपरि है। समकालीन दलित कविता आज जिस पायदान पर है उसे देखकर कहा जा सकता है कि वर्तमान में यह कविता अपनी बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रही है, इसके माध्यम से भारतीय जनमानस में जागरूकता एवं चेतना का संचार हुआ है।

दलित कविता आनंद या रस का विषय नहीं है, बल्कि इसके द्वारा समाज के मानवीय पक्षों को उजागर किया गया है जहाँ मनुष्य से मनुष्य जुड़ता है और समता–ममता वाले समाज निर्माण की परिकल्पना की गई है।

दलित कविता ने अपनी एक विकास यात्रा तय की है, जिसमें वैचारिकता, जीवन–संघर्ष, विद्रोह, आक्रोश, नकार, निषेध, वर्ण–विद्वेष, साहित्यिक अलगाव जैसे प्रश्न बार–बार दस्तक देते हैं जो दलित कविता की विकास–यात्रा के अनेक आयामों से होकर गुजरते हैं। दलित कविता शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित, अपमानित दलित जन साधारण की समग्र आवाज है। दलित काव्य जीवन का काव्य है, कला का नहीं और उस जीवन का, जिसमें जिजीविषा का संघर्ष है।

दलित कवि के मूल में मनुष्य होता है, तो वह शोषण,असमानता के प्रति अपना विरोध दर्ज करेगा ही। जिसमे आक्रोश का होना स्वाभाविक है जो दलित कवि की अभिव्यक्ति को यथार्थ के निकट ले जाता है। उसके अपने अंतर्विरोध भी होते है,जो कविता में छिपते नहीं हैं बल्कि स्वाभाविक रूप से मुखरित होते है। दलित कविता का प्रभाव और उसकी उत्पत्ति है जो आज भी जीवन पर लगातार आक्रमण कर रही है। इसलिए कहा जा सकता है कि दलित कविता मानवीय मूल्यों और मनुष्य की अस्मिता साथ खड़ी है।

दलित चेतना दलित कविता को एक अलग और विशिष्ट आयाम देती है। यह चेतना उसे डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन और जीवन संघर्ष से मिली है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है जो समाज में फैले धार्मिक,राजनीतिक,शैक्षिक,आर्थिक भेदभाव से सावधान करती है। यह चेतना संघर्षरत दलित जीवन के उस अंधेरे से बाहर आने की चेतना है जो हजारों सालों से दलितों को मनुष्य होने से दूर करते रहने में ही अपनी श्रेष्ठता मानता रहा है। अतः एक दलित कवि की चेतना और एक तथाकथित उच्चवर्गीय कवि की चेतना में गहरा अंतर दिखाई देता है।

दलित कविता में अपने भोगे हुए दुःख,पीड़ा,अपमानों की चुभन तथा अभावग्रस्त जिंदगी का जिक्र है, जिसको अनेक दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की असमानता और मनुवादी वर्णव्यवस्था पर तीखा एवं आक्रामक भाव से दलित साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कविता संग्रह च् बस्स ! बहुत हो चुका च् में अस्पृश्यता को केंद्र में रखकर उस पर तीखा प्रहार किया है तथा यह कदम भी उठाया है कि –

''जिस रास्ते से चलकर तुम पहुँचे हो
इस धरती पर
उसी रास्ते से चलकर आया मैं भी
फिर तुम्हारा कद इतना ऊँचा
कि आसमान को भी छू लेते हो
तुम आसानी से
और मेरा कद इतना छोटा
कि मैं छू नहीं सकता जमीन भी।।''[1]

दलित कवि अपनी विवशता का वर्णन करते हुए कहता है कि जिसमे वह यह तय नहीं कर पाता है कि वह किस देश का है? या यह देश किसका है? आदि। अगर यह देश उसका है तो फिर यहाँ दो देश, एक सवर्ण समाज का और दूसरा दलित समाज का क्यों है? इस प्रकार की बिडम्बनापूर्ण त्रासद स्थिति का चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविता च्ठाकुर का कुआंज् में कहते है कि –

''चूल्हा मिट्टी का/मिट्टी तालाब की/तालाब ठाकुर का
भूख रोटी की/रोटी बाजरे की/बाजरा खेत का
खेत ठाकुर का/बैल ठाकुर के/हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी/फसल ठाकुर की
कुआं ठाकुर का/खेत–खलिहान ठाकुर के
गली–मुहल्ले ठाकुर के/फिर अपना क्या?
गाँव?
देश?''[2]

समकालीन दलित कविताओं में वर्णित होने वाली पीड़ा भोगी हुई तन और मन की वेदना है जिनमें अनेक दुखों, अपमान, दरिद्रता, अन्याय और अत्याचार को सहते – सहते शोषक वर्ग के प्रति घृणा, क्रांति और आक्रोश का स्वर मुखरित होता रहा है जिसके कारण दलित समाज को अस्पृश्य, जातीय अपमान और अछूत की संज्ञा देकर मुख्यधारा से अलग कर दिया गया।कवि दामोदर मोरे ने अपनी कविता 'अस्पृश्यता का डंक' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है कि –

''पेड़ ने नागिन से पूछा / तुमसे भी जहरीला कौन है?
नागिन बोली / अस्पृश्यता मुझसे भी जहरीली है
पेड़ ने पूछा / वह कैसे?
वह बोली, / क्योंकि अस्पृश्यता
एक ही बार हजारों को डसती है।''[3]

इतिहास इस बात का गवाह है कि अनगिनत वर्षों तक दलितों के शोषण का मुख्य कारण पेट ही रहा है। क्योंकि पेट ही सारी समस्याओं की जड़ है। यदि पेट न होता तो व्यक्ति संभवतः किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। दो वक्त की रोटियाँ ही शोषण का कारण बनती रही है।

''शक्ति का अवतार रोटियाँ
शिव स्वंय साकार है ये रोटियाँ
भूख में होता भजन यारों नहीं
भक्ति आधार है ये रोटियाँ।''[4]

दलित कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा और गतिशीलता की द्योतक है जिसके माध्यम से दलितों और वंचितों को संबलन मिलता है। कवियों का उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों को दूर कर समतामूलक समाज की स्थापना करना है।–

''ओ हिमालय / मूक बनकर कब तक खड़ा रहेगा?
तोड़ दे मौन के दरवाजे / कुचल दे अपने पैरों तले
सौगंध है तुम्हे, तुम्हारी गंगा – यमुना की / तू उबल पड़
तू कुहराम मचा दे / तू क्रोधित हो जा
और / आग लगा दे, इस रीतिवाद के बाड़े में।''[5]

दलित कवियों के साथ–साथ कवयित्रिओं ने भी अपनी लेखनी के माध्यम से मानव स्वतंत्रता, समता, प्रतिष्ठा तथा स्वाभिमान जैसी ज्वलंत समस्याओं को अपनी कविताओं में समाहित किया है तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए अपनी कविताओं को क्रांति गीत बनाया।–

''माँ बाप ने पैदा किया था गूंगा / परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही / निश्चित परिपाटी पर
बैसाखियों के सहारे / कितने पड़ाव आये
आज जीवन के चढ़ाव पर / बैसखियाँ चरमराती हैं
अधिक बोझ से / अकुलाकर
विस्फटित मन हुँकारता है / वैसाखियों को तोड़ दूं।''[6]

वर्तमान समय के पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियाँ सदैव दुःख, अपमान और उपेक्षा का पात्र रही है तथा आत्मसमर्पण ही स्त्री की विवशता का हथियार है। समाज में दलित कवयित्रिओं ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया है।–

''औरत होने की वजह से / बहुत कुछ झेलना पड़ता है
रात को दिन, दिन को रात / सूरज को चाँद कहना पड़ता है।
औरत जो खुद को इन्सान समझें / तो दुनिया ख़िलाफ हो जाती है।
समाज तूफान ले आता है / परिवार सहम जाता है
औरत तूफान पर चलती है / घृणा की ओढ़नी ओढ़ती है।
क्या फर्क पड़ता है / कोख में जीवन रखती है।
औरत जो नाचीज होती है।''[7]

दलित साहित्य के प्रेरणास्त्रोत एवं क्रन्तिकारी विचारक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर की मानवतावादी,समाजवादी विचारधारा ने दलित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। तथा इस विचारधारा ने दलित समाज में विद्रोह,क्रांति और संघर्ष की ज्वाला प्रज्वलित कर दी7 जिसके फलस्वरूप दलित समाज अब सिर्फ भोगे हुए सत्य को ही नहीं,बल्कि मनुवादी वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए संघर्षरत है। इस कारण अब वह दिन दूर नहीं है,जब दलित वर्ग अपनी चेतना के बलबूते पर अन्याय, अत्याचार,उपेक्षा तथा घृणा के प्रति आक्रोश व्यक्त न करें। इस संदर्भ में कवि विश्वप्रताप भारती अपनी कविता च्मुझे इंतजार है उस दिन काज् के माध्यम से कहना चाहते हैं। कि–

''रोज–रोज / नीच अछूत / सुन–सुनकर मैं
निश्चल पत्थर सा / हो गया हूँ /अत्याचार सह के।
सिर झुकाए / गुलामी की जंजीरों से बंधा हूँ।
मुरझा गई है / मेरे प्राणों की ज्योति / लेकिन फिर भी
जला रहा हूँ / क्योंकि / मुझे इंतजार है उस दिन का
जिस दिन मैं / अपनी सिसकियों से अपने अन्दर की
चिंगारी को / भड़कने पर मजबूर कर दूँगा।
और फिर / उन गुलामी की जंजीरों को तोड़कर
उस पाखंड से लडूंगा / जो आदर्शों के / विभिन्न रूपों
का चोला पहनकर / तमाशाई बनकर / तथाकथित
धर्म की किताबों में सजा है / जिसके कारण
मेरी शानो– शौकत में / धब्बा लगा है।''[8]

अब वह समय आ गया है कि दलितों ने शिक्षा के माध्यम से अपने हक़ और अधिकारों को पहचान लिया हैं। तथा शिक्षा के माध्यम से ही उन्होंने अन्याय, दमन, शोषण तथा अपमान के खिलाफ आवाज उठाना शुरू कर दिया है–

''मैंने अब उठा ली है कलम /झाड़ू के बदले
करेगें साफ तुम्हारी सारी गंदगी / बचाएगें हम

देश की टूटती एकता को।''[9]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित कविता जीवनवादी कविता है, जिसमें संघर्षशील दलित जीवन के अपमान, अन्याय,अत्याचार और दमन को एक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। दलित कविता में समाज का वास्तविक स्वरुप नजर आता है। जहाँ पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकारों की मांग ही नहीं, अपितु वर्ण–व्यवस्था का विरोध और बाबा साहेब अम्बेडकर के सिद्धांत–वर्ग विहीन समतावादी समाज की स्थापना करना ही इसका प्रधान लक्ष्य है। अतः दलित कविता का उद्‌भव भी दलित समूह की यातना और शोषण के फलस्वरूप हुआ है। विद्रोह इसके मूल में है, तथा वर्ण–व्यवस्था को नकारकर समस्त मानव जीवन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना ही उसका परम ध्येय है।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 76
2. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 3
3. सदियों से बहते जख्म, दामोदर मोरे, पृ. 57
4. तरकश,ऋषभदेव शर्मा, तेवरी प्रकाशन खतौली, पृ. 20
5. दलित साहित्य वार्षिकी, सं. जयप्रकाश कर्दम 2015, पृ. 137
6. विद्रोहिणी, सुशीला टांक भौरे
7. नाचीज, रजनी तिलक
8. बयान, सं. मोहनदास नैमिशराय अंक अगस्त 2012, पृ. 29
9. कलम के जरिए,डॉ.सी.बी.भारती, आक्रोश पृ. 12

शोधार्थी
शहीद कैप्टिन रिपुदमन सिंह
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाईमाधोपुर (राज.)

ABEER

A Journal of Research

I.S.S.N. No. 2249-3409

R.N.I. No. RAJBIL/36886/2011 **I.S.S.N. No. 2249-3409** **July-September 2016**

Editor

Dr. Pravesh Kumar

ABEER

July-September 2016
I.S.S.N. No. 2249-3409
R.N.I. No. RAJBIL/36886/2011
Quarterly Journal

Editorial office
A-37, Malviya Nagar,
Jaipur-302017
Mobile : 9928358933

The facts and view in the Article / Research papers etc are of the authors and will be totally responsible for the authenticity, validity and originality etc of the Article and Research papers.

EDITORIAL BOARD

1. Robert G.Davies
International Consultant
Brooks by Malton Colloege
Leicestershiry U.K

2. Dr. Gulb Singh Azad
Director
National Center for cooperative Education
New-Delhi

3. Dr. Lokesh jain
Center for Studies in
Rural Management
Gujarat Vidyapith
Gandhinagar (Gujrat)

4. Madhur srivastava
Director,
Samgra Sevarth Sansthan
Jaipur

5. Dr. Anupam Pandey
Department of Geography
University of Allahabad
(U.P)

6. Dr. Anita Surana
H.R.L. Sahariya Govt. P.G. College,
Kaladera, Jaipur

7. Dr. R.K Sinha
Asst.Prof
Navneet College, Mumbai

CONTENTS

1.	Socialization in the Age of Globalization	Dr. Deepak Kumar	1-12
2.	The Beginning of Heritage Hotels in Rajasthan	Mukesh Sharma	13-14
3.	IMF and World Bank : Role and Relationship Between the Lines	H.L. Gurjar	15-18
4.	Rural waste to energy and Swachh Bharat Abhiyan	Manisha Sharma	19-26
5.	Jain Law on Maintenance	Dr. Beena Dewan	27-34
6.	Training for State Civil Services in Rajasthan	Harshlika Khangarot	35-42
7.	बाल श्रम सामाजिक अभिशाप	डॉ. ज्योतिशंकर भट्टाचार्य	43-49
8.	गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों में नैतिकता एवं राजनीति	सुरेश कुमार जाट	50-56
9.	डिजिटल इंडिया द्वारा सशक्त होती पंचायतें	रामावतार शर्मा	57-65
10.	विनोबा चिन्तन में विकेन्द्रीकरण	अभिलाषा चौधरी	66-69
11.	प्राचीन कला की वाहक : राजस्थान की चित्रांकन परम्परा	डॉ. सुषमा सिंह पूजा चहल	70-80
12.	संस्कृत नाट्य उत्पत्ति की विविध विचारधाराएँ	अजय गोग्यान	81-87
13.	प्राचीन काल में भारत के प्रमुख वस्त्र, चर्म तथा अन्य महत्वपूर्ण शिल्प उद्योग	टीना मीना	88-94
14.	भारत में नैतिक समस्याएँ एवं गाँधीवादी विकल्प	ऋतु आर्य	95-103
15.	भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की महत्ता	डॉ. रीतिका जैन	104-107
16.	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में अनुशासन आचरण का अध्ययन	प्रो. मधु माथुर कल्पना व्यास	108-114
17.	विश्व पटल पर भारत एक उभरती महाशक्ति के रूप में	मुकेश कुमार	115-118
18.	अमेरिकी हितों में मीडिया की भूमिका : एक अध्ययन	डॉ. निर्मला सिंह संदीप पुनियाँ	119-122
19.	स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च	राधाकिशन मीना	123-124

20.	भारतीयसंस्कृतौ नारीणां स्थानम्	रघुवीर सिंह मीना	125-129
21.	मुगलकालीन इतिहास लेखन : एक नवीन मूल्यांकन	ओम प्रकाश बैरवा	130-135
22.	जयपुर के प्रमुख तीर्थ स्थल	अशोक कुमार यादव	136-142
23.	जैन सम्प्रदाय एवं नैतिकता	डॉ. उपेन्द्र पांचाल	143-147
24.	स्वतन्त्रता बाद राजस्थान में किसान राजनीति	मंजू चौधरी	148-155
25.	वर्तमान समाज में नारी की स्थिति	डॉ. सदफ सिद्दिकी	156-163
26.	शिक्षा प्रणाली और नैतिकता	तारा कँवर	164-168
26.	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 के तहत सामाजिक विज्ञान विषय का विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ. अजय सुराणा रश्मि शर्मा	169-172
27.	प्राकृतिक आपदाएँ एवं प्रबन्धन : राजस्थान के सन्दर्भ में	डॉ. शंकरलाल गोस्वामी	173-180
28.	अहिंसा और विज्ञान	अनामिका यादव	181-184
29.	**मानवाधिकार एवं नारी विमर्श**	**श्रीकृष्ण शर्मा**	185-189
30.	**सितारों के खेल : सामाजिक यथार्थ की एक झलक**	**गुमान सिंह जाटव**	190-194
31.	**समकालीन दलित कविता में सामाजिक संघर्ष और विद्रोह का स्वर**	**मोहरसिंह बैरवा**	195-199

ISSN : 2394-1340

Vol. III No. 4 Oct.- Dec. 2016

Nature and Society

An International Research Journal

EVOLUTION

EDUCATION

ENVIRONMENT

ETHICS

A Quarterly Bilingual Multi Disciplinary Research Journal

Chief Editor
Dr. S.S. Yadav

Executive Editor
Dr. Ruchi Tyagi

THAR INDIA INSTITUTION

Scanned by CamScanner

Nature and Society

An International Bilingual Multi Disciplinary
Quarterly Research Journal

Volume III No. 4 October-December 2016 **ISSN : 2394-1340**

Chief Editor
Dr. S.S. Yadav

Executive Editor
Dr. Ruchi Tyagi

THAR INDIA INSTITUTION
The Harman Villa,
A-553-554, Siddharth Nagar, Airport Road
Jawahar Circle, Jaipur (India) 302017
Email : ssyadav73@gmail.com, rnd@tharindia.com,
Contact : +91 7891092431
www.tharindia.com

Scanned by CamScanner

Nature and Society

An International Bilingual Multi Disciplinary Quarterly Research Journal

Patron in Chief

Prof. K. L. Kamal: Former Vice Chancellor, University of Rajasthan, Jaipur, India

Chairperson

Prof. R. P. Yadav: Former Vice Chancellor, RTU, Kota, India

Editorial Advisory Board

Prof. G. P. Rao: Senior Professor and Head, Department of Management Studies, Kamaraj University Madurai, India

Dr. Antonova Nataliya: Assistt. : Professor, Faculty of Social Humanities, Ural State University of Physical Cultural, Russia

Prof. N. P. Singh: Former Head, Department of Zoology, University of Rajasthan, Jaipur, India

Prof. K. P. Sharma: Head, Department of Botany, University of Rajasthan, Jaipur, India

Prof. Manika Mohan: Head, Department of Psychology, University of Rajasthan, Jaipur, India

Prof. Rashmi Jain: Department of Sociology, University of Rajasthan, Jaipur, India

Ayesha Zaheer: Special Advisor SCWEC i.e. Saarc Chamber Women entrepreneur Council-Pakistan

Prof. Rozanova Vladimir: Gneisin Russian Academy, Moscow

Dr. Anita Rajpal: Department of Sanskrit, Hindu College, University of Delhi, India

Julia A. Shabanova: Head, Department of Philosophy, National Mining University, Dr. Sc (Philosophy) Habit, Ukraine

Dr. Nijole: Romeris University, Lithunia

Dr. Okaro Kingley: Ebonyi State University Abakaliki, Nigeria

Chief Editor
Dr. S. S. Yadav

Executive Editor
Dr. Ruchi Tyagi

THAR INDIA INSTITUTION

The Harman Villa

A-553-554, Siddharth Nagar, Airport Road, Jawahar Circle, Jaipur (India) 302017

www.tharindia.com Email: info@tharindia.com, rnd@tharindia.com

Contact: 0141-2729380, +91 7891072431

Disclaimer: The facts and views in the article and research papers etc. are of the authors and will be totally responsible for the authenticity, validity and originality. No claim is made for the authenticity by information reflected in the Articles. The views express the journal are neither harbored by Nature and Society not the editors.

Scanned by CamScanner

सम्पादक की कलम से...

वर्तमान में प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन दोनों ही संकट से झूझ रहे हैं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद राजनीतिक एवं सामाजिक स्थितियाँ अचानक बदलती हुई नजर आती हैं। समाज पर अर्थ हावी हो गया और अर्थ पर राजनीति। राजनीति की सर्वोच्च नीति यहीं ठहर गई है कि सत्ता में पार्टी का स्थायित्व कैसे काबिज रहे। इस लक्ष्यहीन गति और अंधी लालसा की दौड़ में न समाज का उत्थान के मायने रहे ना ही प्रकृति की सुरक्षा का जिम्मा जेहन में रहा।

इधर भटकती हुई युवा पीढ़ी के अपने सवाल है जिनके साथ राजनीतिक पार्टियाँ बड़ी चतुराई से खेल रही हैं। समाज में फैलता अवसाद, नशा और बेरोजगारी का दंश युवाओं को कहाँ ले जा रहा है, इसका जायजा हम आज पर नहीं आने वाले कल पर छोड़ते हैं। लेकिन प्रकृति का संदेश को हम ज्यादा दिन तक अनसुना नहीं कर सकते हैं। यह और बात है कि इसकी आवाज सुनने के लिए न हमारे पास समय है ना कोई योजना जिसे सरकार दीर्घकालीन नीति के रूप में बनाकर लागू कर सकें। समाज और प्रकृति दोनों में एक गहरा मतभेद शुरु हो गया है जो किसी भी राष्ट्र या सभ्यता के लिए शुभ संकेत नहीं हो सकता। प्रकृति एवं समाज दोनों ही क्षेत्रों में संतुलन, सुरक्षा, संरक्षण, सामंजस्य एवं समता के मूल तत्त्व खतरे में हैं। आवश्यकता इस बात की है कि तथाकथित संकीर्णता को छोड़कर इस गहन और व्यापक दृष्टि पर विचार कौन करे?

– डॉ. रूचि त्यागी

Scanned by CamScanner

CONTENTS

1.	भक्तिकाल में नारी स्वतंत्रता का उद्घोष	श्रीकृष्ण शर्मा	1
2.	सहरिया जनजाति और वर्तमान चुनौतियाँ : राजस्थान में सन्दर्भ में	विक्रम मीणा	5
3.	चचवंशमहाकाव्य में भाग्य एवं कर्मफल	डॉ. राजेश कुमार मीना	13
4.	धर्म एवं आध्यात्म 'राष्ट्र–स्मृति' के विशेष संदर्भ में	डॉ. विजय सिंह मीना	16
5.	भारतीय न्याय की प्राचीन एवं वर्तमान अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	बुद्धिप्रकाश वर्मा	28
6.	वर्तमान दौर में गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता	डॉ. सुनीता गुप्ता	35
7.	भारत–अमेरिका सम्बन्ध : सिद्वान्त एवं व्यवहार	मुकेश कुमार	44
8.	भास, कालिदास एवं शूद्रक के रूपकों में नारी के नीतिगत सरोकार	डॉ. अल्का बाई बैरवा	53
9.	मार्मिक पीड़ा की अभिव्यक्ति हैं 'जूठन'	मौहर सिंह बैरवा	60
10.	प्रशासनिक विधि : उद्भव एवं अवधारणा	डॉ नेहा चौधरी	70
11.	राजस्थान प्रदेश में शुष्क खेती की आवश्यकता एवं उपयोगिता	राजेश कुमार सोनी	78
12.	नक्सलवाद : गाँधीवादी विकल्प	नीतू चौधरी	84
13.	समाजिक चेतना के अग्रदूत उपेन्द्रनाथ अश्क का उपन्यास और समाज : सम्बन्ध विवेचन	गुमान सिंह	92
14.	कंकाल – "एक सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज"	गीतांजली मीणा	99
15.	समकालीन भारतीय चित्रकला व हिन्दी साहित्य में रामगोपाल विजयवर्गीय का योगदान	जितेश कुमार जाँगिड़	109
16.	राजस्थानी सांस्कृतिक परम्पराएँ एवं लोक देवियाँ	डॉ0 ऋतु	120
17	पंचायती राज और राजस्थान	डॉ0 मनोहर लाल मीना	131
18.	पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी	मंजू चौधरी	135
19.	सुशासन एवं सूचना का अधिकार	नरेन्द्र कुमार धाकड	139
20.	"Exploring effects of parent's behaviour on forgiveness of adolescents"	Dr. Usha Kulshrestha	144
21.	Privatization of Higher Education in Rajasthan The question of Equity and Opportunity	Rakesh Kumar	154
22.	Desertification : An Eco-system FactorIn reference to Shekhawati Region of Rajasthan	Naeem Khan	168

Scanned by CamScanner

ISSN : 2394-1340

मार्मिक पीड़ा की अभिव्यक्ति हैं 'जूठन'

मौहर सिंह बैरवा
शोधार्थी
राजकीय कन्या महाविद्यालय
सवाई माधोपुर (राज.)

हिन्दी साहित्य के दलित आत्मकथाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रमुख स्थान है। 'जूठन' आत्मकथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी पढ़ाई जाती है। इस आत्मकथा का जितनी प्रशंसा और प्रतिष्ठा साहित्य में मिली है, उत़नी अन्य आत्मकथाओं को नहीं। 'जूठन' आत्मकथा दलितों तथा पिछड़ी जातियों का सशक्त दस्तावेज है। आत्मकथाकार जब समाज में व्याप्त विषमताओं के द्वारा प्रताड़ित अपमानित हो जाता है, तब उसकी अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में जरूर होती है। यह आत्मकथा भी इस बात का अपवाद नहीं है। 'जूठन' आत्मकथा में दलित–जीवन की आत्मपीड़ा का दंश बार–बार मुखरित हुआ है। दलित आत्मकथा दलित लेखक के वास्तविक जीवन की पीड़ा, वेदना, टीस व कराह होती है, उसमें सदियों से चली आ रही शोषण व अत्याचार की गूंज समाहित होती है।

जीवन में भोगे दुःख और पीड़ा के स्मरण मात्र से इन्सान वेदना और दर्द से कराह उठता है, वह जब–जब अपने दुःखदायी पलों को याद करता है तो उसकी पीड़ा और भी गहरी हो जाती है अपमान, अनादर, घृणा जैसी अनेक समस्याएँ उसके सामने निरन्तर बनी रहती है, दलित आत्मकथाओं को पढने पर ऐसी वेदना की अनुभूति सहज ही हो जाती है।

'जूठन' का पढ़ते समय सांसे थम जाती है रक्तचाप बढ़ जाता है और दिमाग की नसें तन जाती हैं, तथा इसमें वर्णित वेदना हमारे अन्तर्मन को झकझोरती है दहकते अंगारों में झोंक देना, लोहे के गर्म सलाखों से दागना, जिस्म को धीरे–धीरे आरी से रेतना या शैल से बदन का बींधना या फिर नदी–नाले, कुए, तालाब में डुबो–डुबोकर मारने में जिस तरह की पीड़ा का अहसास होगा उसी का नाम है 'जूठन'। हिन्दू धर्म में वर्ण व्यवस्था द्वारा दिए हुए

Scanned by CamScanner

घाव और निर्ममता का सबूत 'जूठन' है। अनेक दर्दभरी पीड़ाओं को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भोगा तथा उनके ताप में तपकर और खुद निचोड़कर ही दलित साहित्य का सृजन हुआ है। अतः आत्माभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम दलित आत्मकथाएँ ही हो सकती हैं। दलित आत्मकथाएँ मनोरंजन शाब्दिक आडम्बर, भौतिक सुख प्राप्ति से अनुप्रेरित नहीं हैं। बल्कि इसमें भारतीय समाज की सच्चाई, हिन्दू वर्ण व्यवस्था की सड़ान्ध का स्वतन्त्र वर्णन इसमें विवेचित है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' ने हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्ण–व्यवस्था की परतों को मानस के सामने खोलकर रख दिया है। भारतीय समाज, संस्कृति तथा शिक्षा व शिक्षक की विकृत मानसिकता का परत–दर–परत प्याज छिलके की तरह खोल दिया है। आजादी के नशे में चूर जश्न मनाने वालों के लिए 'जूठन' से अच्छा 'तोहफा' और क्या हो सकता है?

गाँधी के बारे में वाल्मीकि लिखते है, "आम्बेडकर को पढ़ लेने के बाद यह बात समझ में आ गयी थी कि गाँधी ने 'हरिजन' नाम देकर अछूतों को राष्ट्रीय धारा में नहीं जोड़ा, बल्कि हिन्दुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाया। उनके हितों की रक्षा की।"[1]

वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी गाँधी की सोच और चिन्तन को जाँचा–परखा जाए तो वाल्मीकि जी के उक्त वक्तव्य का आशय समझ में आ जायेगा। 'यंग इंडिया' में गाँधी लिखते है– "वर्ण व्यवस्था कोई मानवीय नहीं है, बल्कि प्रकृति का अकाट्य नियम है, जो सदैव न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण का नियम खोजे जोने से पूर्व विद्यमान था उसी प्रकार वर्ण नियम भी विद्यमान था। यह कर्म हिन्दुओं को सौंपा गया कि वे उस नियम की खोज करें.....। वर्ण मानव अस्तित्त्व का एक शाश्वत नियम है। वह अनिवार्यतः हिन्दू धर्म का अपृथक अंग है। उसी ने हिन्दू धर्म की रक्षा की है.....वर्ण आनन्द और वास्तविक धार्मिक अनुसरण के लिए सबसे सुरक्षा का मार्ग है।"[2]

'जूठन' पूरी शिक्षा पद्धति और शिक्षकों की घिनौनी मानसिकता को उजागर करती है, गुरु शिष्य की जो पवित्र छवि हमें दी गई है या जिस छवि का निर्माण किया गया है, वह बाहर से देखने पर बहुत सुहावनी, निर्दोष और प्रशंसनीय लग सकती है। लेकिन गुरु शिष्य के इस पवित्र रिश्ते को वही जानता है, जो इन गुरुओं के पास से गुजरा हो। इतिहास इसका

Scanned by CamScanner

कोई आँकड़ा नहीं दे सकता कि अब तक कितने एकलव्यों का अंगूठा काटा गया होगा। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं:– "अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा था, वह अभी मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है, तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ–बहन की गालियाँ देते थे। सुन्दर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहितातपन करते थे"[3]

चौथी कक्षा के छात्र ओमप्रकाश को हेडमास्टर पैतृक धन्धे का एहसास कराता है। पढ़ने पढ़ाने की बजाए उसे स्कूल का कमरा, बरामदा और मैदान में झाड़ू लगाने का आदेश देता है। यह क्रिया दूसरे दिन भी दोहराई जाती है। तीसरे दिन बालक ओमप्रकाश पढ़ने हेतू कक्षा में जैसे ही बैठता है– हैडमास्टर दहाड़ता है, "अबे ओ चूहड़े के, मादरचोद कहाँ घुस गया. .....अपनी माँ....."[4] दहाड़ सुनकर वह बालक थर–थर कापने लगता है। आगे की घटना स्वयं उन्हीं के शब्दों में–

"हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकी उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था, जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले, जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू.....नहीं तो गांड में मिर्ची डाल के स्कूल के बाहर काढ़ (निकाल) दूँगा"[5]

यह घटना व्यवस्था के प्रति मन में गहरी वितृष्णा और घृणा पैदा करती है तथा आमूल परिवर्तन के लिए उत्प्रेरित करती है जिस व्यवस्था में आज अन्याय और उनके प्रकार विद्रुपता विद्यमान है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जिस स्कूल और कॉलेज में पढ़ने जाते हैं, उन्हें 'अबे चूहड़े का', 'कितना भी पढ़ लियो रहेगा तो चूहड़ा ही' कहकर उनकी हैसियत बता दी जाती है। जब कभी भी वे शिक्षक से किसी समस्या पर बात करने जाते, सबसे पहले उन्हें 'भंगी' होने का एहसास कराया जाता। प्रैक्टिकल के लिए जब वे लैब जाते तो अध्यापक किसी न किसी बहाने उन्हें कोई काम सौंपकर बाहर भेज देते। अध्यापकों का लक्ष्य बारहवीं में फेल कराना था। अखिरकार प्रैक्टिकल में फैल करके बारहवीं में ही उन्हें रोक लिया गया। एक चूहड़े के घर जन्म लेकर वे सवर्णों से बेहतर कैसे हो सकते थे? ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने दर्द और टीस का बयान करते हैं– "ऐसे ही आदर्श शिक्षकों से पाला पड़ा था उस समय, बचपन

Scanned by CamScanner

से किशोर अवस्था कि ओर बढ़ते हुए, जब व्यक्तित्व का निर्माण हो रहा होता है, तब ऐसे दहशत भरे माहौल में जीना पड़ा। इस पीड़ा का एहसास उन्हें कैसे होगा, जिन्होंने घृणा और द्वेष की बारीक सुईयों का दर्द अपनी त्वचा पर कमी महसूस नहीं किया? अपमान जिन्हें भोगना नहीं पड़ा? वे अपमान बोध को कैसे जान पायेंगे? रेतीले ढूह की तरह सपनों के बिखर जाने की आवाज नहीं होती भीतर तक हिला देने वाली सर्द लकीर खिंच जाती है। जिस्म के आर–पार .....कभी–कभी लगता है जैसे क्रूर और आदिम सभ्यता में सांस लेकर पले बढ़े है"[6]

हालांकि इस सड़ी हुई व्यवस्था के बीच कुछ संवेदनशील लोग भी हैं जो दलितों कि वेदनाओं को समझते हैं जिसमें बदलाव की आशा कि जा सकती है। ऐसे लोगों को वाल्मीकि जी ने 'जूठन' में बड़े आदर के साथ याद किया है। स्कूली समय के दो व्यक्ति बाबूराम त्यागी और चमनलाल त्यागी का सहयोग और प्यार इन्हें संबल देता है तथा जिसके कारण लेखक आक्रोश और आत्मीयता के मध्य संतुलन स्थापित कर पाता है, जिससे उन्हें यह संदेश मिलता है कि भविष्य में दो से बढ़कर हजारों लोग मिलकर समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व जैसी भावना को प्रचारित–प्रसारित कर व्यवस्था में बदलाव ला सकते हैं।

इस व्यवस्था में विद्यमान धार्मिक कर्मकाण्ड और गढ़ी हुई ऐतिहासिकता पर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जब–जब अध्यापकों से प्रश्न करने की कोशिश तब–तब उन्हें मार खानी पड़ी। परीक्षा में अंक तो कम मिले ही साथ–साथ सवर्ण सहपाठियों एवं अध्यापकों द्वारा पीड़ित करने वाले शब्द भी मिले– "देखो चूहड़े को, बामन बन रहा है।"[7]

अनेक प्रकार की प्रताड़नाओं के बावजूद वाल्मीकि के बाल मन में उपजी चेतना बार–बार अध्यापकों से सवाल करने के लिए प्रेरित करती है– "अश्वश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का मांड़। फिर किसी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया? किसी महाकवि ने हमारे जीवन पर एक शब्द क्यों नहीं लिखा?.... .....मास्टर चीख उठे थे, "घोर कलियुग आ गया है....., जो एक अछूत जबान जोरी कर रहा है।"[8]

उस मास्टर ने बालक ओमप्रकाश को मुर्गा बना दिया तथा शीशम की एक लम्बी छड़ी मंगाई और फिर, "चूहड़े के तू द्रोणाचार्य से अपनी बराबरी करे है.....ले तेरे ऊपर मैं

Scanned by CamScanner

महाकाव्य लिखूँगा....." "उसने मेरी पीठ पर सटाक–सटाक छड़ी से महाकाव्य रच दिया था। वह महाकाव्य आज भी मेरी पीठ पर अंकित है। भूख और असहाय जीवन के घृणित पलो में सामन्ती सोच का यह महाकाव्य मेरी पीठ पर ही नहीं, मेरे मस्तिष्क के रेशे–रेशे पर अंकित है।"[9]

शिक्षा तन्त्र में विद्यमान वर्णव्यवस्था की ठोकरों से ओमप्रकाश वाल्मीकि बार–बार आहत होते हैं, उनकी पीड़ा से कराहते भी हैं लेकिन टूटते नहीं, बल्कि चेतना का वेगमयी प्रवाह निरन्तर बढता जाता है, जो हर दलित और दलित चेतना के लिए स्पृहणीय है। हिन्दू धर्म द्वारा दी गई पीड़ा से इनका मन बार–बार तरह–तरह के सवाल पैदा करता है–"मैं हिन्दू भी तो नहीं हूँ। यदि हिन्दू होता तो हिन्दू मुझसे इतनी घृणा, इतना भेदभाव क्यों करते? बात–बात पर जातीय बोध की हीनता से मुझे क्यों भरते?.....जातीय श्रेष्ठता–भाव अभिमान बनकर कमजोर को ही क्यों मारता है? क्यों दलितों के प्रति हिन्दू इतना निर्मम और क्रूर है?"[10]

हमारी शिक्षा व्यवस्था ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के ऊपरी पायदान पर बैठे हुए लोगों के मन में जन्मजात श्रेष्ठ होने का भाव इसलिए पैदा किया दलित और पीड़ित वर्ग स्वभाविक रूप से अपने को हीनतर मानते हुए मुकाबले से बाहर हो जाए तथा बराबरी की जुर्रत महसूस न कर सके? इसलिए डॉ. अम्बेडकर द्वारा शुरू की गई दलित अस्मिता और आत्म सम्मान की लड़ाई प्रासांगिक है जिसने आज दलितों के मन मस्तिष्क में चेतना के बीज बो दिए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस चेतना के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुए है।

एक साजिश के तहत इस शिक्षा व्यवस्था की वजह से डॉ. अम्बेडकर जैसे महान व्यक्तित्व का ओमप्रकाश वाल्मीकि पैदा होने के 17–18 वर्षों बाद जान सके। लेकिन संयोगवश हेमलता जैसे मित्र द्वारा दी गई पुस्तक "डॉ. अम्बेडकरः एक परिचय" को जब इन्होंने पढ़ना शुरू किया तो एक नये जीवन का अनुभव हुआ। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' में लिखते है, "जैसे जैसे में इस पुस्तक के पृष्ठ पलटता गया, मुझे लगा, जैसे जीवन का एक अध्याय मेरे सामने उधड़ गया है। ऐसा अध्याय जिससे मैं अनजान था।

डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्ष ने झकझोर दिया था।.....कई दिन और कई रातें मैंने बेचैनी से काटीं। मेरे भीतर भी छटपटाहट बढ़ गई थी। मेरी चुप्पी जो मेरे रोम–रोम को जड़ बना रही थी, अचानक पिघलने लगी थी। उस पुस्तकालय में अम्बेडकर की लिखी जो पुस्तकें

Scanned by CamScanner

थी, वे सभी पढ़ डाली थीं।.....इन पुस्तकों के अध्ययन से मेरे भीतर एक प्रवाहमयी चेतना जागृत हो उठी थी। इन पुस्तकों ने मेरे गूंगेपन को शब्द दे दिये थे। व्यवस्था के प्रति विरोध की भावना मेरे मन में इन्हीं दिनों पुख्ता हुई भी।.....यह धारण भी उन दिनों पुख्ता हो रही थी कि जो शिक्षा स्कूल, कॉलेजो में दी जा रही है, वह किसी भी रूप में हमें राष्ट्रीय नहीं बनाती, बल्कि कटट्र, संकिर्ण हिन्दू बनाती है"[11] वाल्मीकि जी के उक्त वक्तव्य ने समूची शिक्षा व्यवस्था पर सवालिया निशान लगा दिया है। शिक्षा–तंत्र को जाँचने के लिए 'जूठन' विवश करती है।

मनुष्य जीवन में पुस्तकों का काफी योगदान होता है, उसी प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि को भी बुद्ध, अम्बेडकर, राहुलसांकृयापन, भदंत आनन्द कौसत्यायन, मार्क्स, टैगोर, गोर्की, प्रेमचन्द, शरतचन्द्र आदि अनेकों व्यक्तियों के दर्शन और साहित्य ने ओमप्रकाश वाल्मीकि को कभी निराश नहीं होने दिया तथा परिवर्तन की राह दिखाई। ये पुस्तकें वाल्मीकि जी के लिए एक नया जीवन देने वाली के बराबर थी वे 'जूठन' में लिखते हैं कि "बुद्ध के मानवीय स्वतन्त्रता के विचार ने मुझे प्रभावित किया था। परिवर्तित समष्टि में कुछ भी अपरिवर्तनीय नहीं है। मानव ही सर्वोपरि है। करूणा और प्रज्ञा व्यक्ति को उच्चता की ओर ले जाती है।"[12]

'जूठन' में दलित आन्दोलन के बारे में काफी वर्णन मिलता है। महाराष्ट्र में 'दलित पेंथर्स' और 'नामान्तर आन्दोलन' ने दलित अस्मिता के सवाल को बहस का मुद्दा बनाया। डॉ. अम्बेडकर के विचारों का प्रचार–प्रसार किया दलित साहित्य ने सोये दलितों को जगाने और उनमें जागृति लाने का काम किया सबसे पहले महाराष्ट्र में ही वाल्मीकि जी के व्यक्तित्व में दलित आन्दोलन की ऊर्जा संजोई थी। दलित चेतना की अद्भूत तेजस्विता के दर्शन इन्होंने महाराष्ट्र के चन्द्रपुर में रहते हुए किए थे। अपने इस एहसास का 'जूठन' में कलमबद्ध किया है, "अपने आपको इस आन्दोलन से जोड़ने में मुझे जो आत्मसन्तुष्टि मिली वह एक अनोखा अनुभव था। जैसे–जैसे मैं इस आन्दोलन का हिस्सा बन रहा था, वैसे–वैसे मेरे कई मित्र मुझसे दूर हो रहे थे। उनकी दृष्टि में मैं रास्ते से भटक रहा था और अपनी प्रतिभा और रचनात्मकता का विनाश कर रहा था"[13] दलित आन्दोलन से जुड़ने के उपरान्त वाल्मीकि जी ने अनेक समस्याओं का सामना किया तथा उनका अनुभव आन्दोलन के लिए प्रेरित करता रहता था।

Scanned by CamScanner

दलित साहित्य ने साहित्य के अर्थ को बदल दिया है, तथा मराठी के दलित साहित्य ने इसे अद्भूत शक्ति प्रदान की, स्वयं दलित अस्मिता के लिए संघर्ष की भावभूमि तैयार की थी वाल्मीकि जी लिखते हैं कि "दयापंवार, नामदेव ढसाल, राजा ढाले, गंगाधर पानतावणे, बाबूराव बागुल, केशव मेश्राम, नारायण सूर्वे, वामन निंबालकर, यशवन्त मनोहर के शब्द रंगों में चिंगारी भर रहे थे। ऐसी अभिव्यक्ति जो रोमांचित कर एक नई ऊर्जा से भर रही थी।[14] इस जागृति के बावजूद ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित आन्दोलन के अन्तर्विरोध को बड़ी सूक्ष्मता से 'जूठन' में रेखांकित करते है, जिसमें डॉ. अम्बेडकर के विचारों और दलित आन्दोलन के प्रभावों के बावजूद स्वयं दलितों में जातिगत दूरियां बनी हुयी थी। वाल्मीकि जी ने महाराष्ट्र की गलियों में भ्रमण कर यह महसूस किया था कि मेहतर बस्तियों में बाबा साहेब का संदेश पहुचा ही नहीं था। जो पहुचा था वह भी 'जाति' के साथ। वे लोग हीनता की भावना से ग्रसित थे जिसके कारण वे आन्दोलन में जुड़से कतराते थे तथा दलित नेतृत्व को संदेह की दृष्टि से देखते थे।.....दलित आन्दोलन के इस अन्तर्विरोध ने उन्हें कमजोर किया था जिसका प्रभाव राजनीतिक स्तर पर भी दिखाई पड़ता है।

निश्चित तौर पर सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन में मुख्य लड़ाई श्रेणीबद्धता, वर्चस्व और शोषकों से जरूर है, परन्तु दलितों उन विभेदकारी सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के प्रति भी सचेत रहना पड़ेगा, जिन्हें दलित समाज ने आत्मसात कर लिया है या आत्मसात करा दिया गया है। आत्मसात करा दी गई मूल्य सरणियों के बावजूद भी दलित के अन्दर चेतना का बीज मरा नहीं है, बल्कि वह सुषुप्तावस्था में पड़ा है, बस उसे उत्प्रेरित करने जरूरत है। अपमान की वेदना और हक चिन्ता ही उसे जगा सकती है। वाल्मीकि जी के पिताजी इस चेतना के अप्रितम उदाहरण हैं। इनके पिताजी को इस बात का गहरा एहसास था कि पढ़–लिखकर 'जाति' सुधारनी है। हालाकि यह और बात है कि पढ़–लिखकर ऊँचे ओहदे पर पहुँचने के बाद भी भुगतभोगी वर्ग की जाति का दशं बेधता रहता है, डंक मारता है फिर भी यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि ओमप्रकाश जी की पढ़ाई में बाधक हेडमास्टर रूपी निष्ठुर व्यवस्था के सामने भी जरूरत पड़ने पर इनके पिताजी दहाड़ते हैं। हार नहीं मानते। बच्चे की पढ़ाई के लिए वे सब कुछ करते हैं, जो एक चेतनाशील व्यक्ति को करना चाहिए। वाल्मीकि जी पहली बार गाँव से दूर पढ़ाई के लिए जा रहे होते हैं, तो उनके पिताजी स्मरण कराते हैं "बेटे! तू एक गरीब चूहड़े का बेटा है.....इसे हमेशा याद रखियो.....।"[15] यह वाक्य उन्हें दलित समाज के प्रति कर्तव्य–बोध का एहसास कराता है।

Scanned by CamScanner

ISSN : 2394-1340

वाल्मीकि जी की माँ के अन्दर आत्मसम्मान और हक के लिए उपजा स्वाभाविक आक्रोश नारी चेतना का अद्भुत उदाहरण है। सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की की शादी में वाल्मीकि जी की माँ ने जब काम के बदले खाना माँगा, तो सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की ओर संकेत करके कहा था, "टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है.....ऊपर से जातकों (बच्चों) के लिए खाना माँग री है? अपणी औकात में रह चूहड़ी! उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।[16] इन वाक्यों ने उनके दिलोंदिमाग को बरछी की तरह छलनी कर दिया था। उन्होंने वहीं टोकरा बिखेरी दिया था। इनकी माँ तिलमिला गई थी, आँखें सुर्ख हो गई थीं और सख्त लहजे में सुखदेव सिंह से कहा था, "इसे उठाके अपने घर में धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देणा.....।"[17] ओमप्रकाश वाल्मीकि बताते हैं कि उस दिन से आक्रोश और बदलाव की चिंगारी फूट पड़ी थी। जूठन का सिलसिला बंद हो रहा था। जिस दिन दलित स्त्रियों में चेतना आ गई, उस दिन 'व्यवस्था'की चूलें हिल जाएंगी। वर्ण–व्यवस्था की ढूह भरभराकर गिर जाएगी। 'जूठन' इस बात को रेखांकित करती है कि दलित स्त्रियों को तिहरी लड़ाई लड़नी है–पुरुष सत्ता, वर्ण–व्यवस्था और आर्थिक–तंत्र, तीनों के खिलाफ। लड़ाई बहुत लम्बी है। इसके लिए धैर्य और साहस की जरूरत है। बस एक बार संगठित होकर आवाज उठाने की जरूरत है। शिक्षा, आत्मनिर्भरता और एकजुटता से ही इसको हासिल किया जा सकता है।

'जूठन' में अभिव्यक्त ओमप्रकाश वाल्मीकि के बालपन के दरकने की अनगूंज अन्तस को हिलाकर रख देती है। चाचा की हिदायत और अपनी इच्छा के विरुद्ध मरे हुए बैल की छुरी से खाल उतारते हुए उनके भीतर बहुत कुछ था, जो टूट रहा था। सूअर के बच्चे को छुरी से चाक (वध) करते हुए ओमप्रकाश जी का बालपन पीड़ा और ग्लानि के भंवर में उलझ गया था, उन्हें लगा था जैसे दिमाग की नसें ही फट जाएंगी। यही है महान हिन्दू संस्कृति, जिसने सब कुछ तो छीना ही है, नन्हा खिलखिलाता बचपन भी छीन लिया है। उसकी मासूमियत छीनी है। यह 'व्यवस्था' कितनी बेरहम और जालिम है, इससे बड़ी मिसाल और क्या हो सकती है?

'जूठन' ने प्रेम की सारी परिभाषाओं एवं उसके अर्थों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। दो युवा मनों में उपजे प्रेम के टूटते तार ने नस–नस में समाई 'जाति–व्यवस्था' को बड़ी तल्खी से उजागर किया है। प्रमी–प्रेमिका के बीच में 'जाति' आते ही वह सब कुछ बिखर जाता

Scanned by CamScanner

ISSN : 2394-1340

है, जिसे दो जवांदिल भविष्य के लिए संजोकर रखते हैं। इस 'व्यवस्था' में मानव की स्वाभाविक मनोवृत्तियाँ दफन कर दी जाती हैं और सारी स्वतंत्रताएँ छीन ली जाती हैं। यह अकारण नहीं है कि शिकार दलित और स्त्री ही होते हैं। इन अर्थों में दोनों पर्यायवाची से लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे सवर्ण घरों में स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में बन्द करके जातिगत मानसिकता से संस्कारित किया जाता है। महाराष्ट्र की कुलकर्णी (ब्राह्मण) परिवार की लड़की सविता को उसके माँ–बाप ने क्या बचपन से यही सिखाया और बताया था कि एस. सी. अनकल्चर्ड (असभ्य) होते हैं, गंदे रहते हैं, एस.सी. से घृणा करो?

कुलकर्णी खानदान की बेटी सविता ओमप्रकाश वाल्मीकि की ओर इसलिए आकृष्ट हुई थी कि वे एस.सी. हो ही नहीं सकते। इतने सभ्य और सुशील तो सिर्फ ब्राह्मण ही होते हैं। ब्राह्मणवादी संस्कृति ने सदियों तक रिसने वाला सिर्फ दर्द ही तो दिया है, जिसका भुक्तभोगी पूरा दलित समाज है। इस सभ्यता ने न जाने कितने ओमप्रकाशों और सविताओं को दफन किया है। इस पथराई, जड़ीभूत संवेदना को जगाने की ओर 'जूठन' संकेत करती है। दिलोदिमाग पर छाई हुई भीरूता और आतंक को मिटाने के लिए एक सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन की आवश्यकता हेतु 'जूठन' प्रेरित करती है।

'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि की संवेदना हाहाकार कर उठी है। यह आत्मकथा दलित साहित्य की एक अनोखी भेंट है, इसने हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति की असलियत को एक–एक कर उघाड़ा है। शिक्षा–तंत्र के तंतुओं को अधेड़कर 'भारत महान' की पोल खोलकर रख दिया है। यह सच्चाई बुद्धिजीवियों और संवेदनशीलता का डंका पीटने वालों को मुंह चिढ़ाती है। हिन्दी अभिजात्यता एवं परम्परागत साहित्य को कटघरे में खड़ा करके उसे बेनकाब किया है 'जूठन' ने। 'जूठन' की प्रामाणिकता पर किन्हें संदेह हो सकता है? ओमप्रकाश वाल्मीकि पर ढाए गए जुल्म हर दलित को, हर पीड़ित वर्ग और संवेदनशील व्यक्ति को सच्ची लगेगी। उन्हें लेखक का दर्द बिल्कुल अपना–सा लगेगा। इसीलिए 'जूठन' का दर्द मर्मांतक आत्माभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है।

'जूठन' में दुःख–दर्द पीड़ा और कराह का संसार पसरा पड़ा है। इन्हीं वेदनामयी टीसों के बीच ओमप्रकाश वाल्मीकि पलते, बढ़ते, जीते और सांस लेते हैं। 'जूठन' में एक तरफ यातनादायी चीखें हैं, तो दूसरी तरफ इनसे होड़ लेने की चेतना और अद्‌भूत साहस भी व्याप्त

Scanned by CamScanner

है जो हर दलित और पीड़ित वर्ग को उठ खड़े होने की प्रेरणा देता है। जूठन के टुकड़ों पर जिंदा रखने वाली हिन्दू व्यवस्था को वाल्मीकि जी की मनुष्यता से सबक लेनी चाहिए। मन में आक्रोश और अपमान की धधकती ज्वाला के बीच भी उनकी मनुष्यता कहीं खोती नहीं है, बल्कि और निखरती है।

'जूठन' के दर्द में एक अद्भूत संदेश है, जो आमूल परिवर्तन की मांग करता है। इसमें अंतर्मन को कुरेदने की भरपूर क्षमता है। भाषा इसकी कुरेदन को और बढ़ाती है। अपने परिवेश से ही वाल्मीकि जी 'भाषा' की सुघड़ता को पनपाते हैं। भाषा को साधने वाला तथा साधने के पीछे जो लक्ष्य है– उसकी दृष्टियां स्पष्ट हैं और यही महत्वपूर्ण भी है। दलित साहित्य की मांग भी यही है। दलित साहित्य अपनी जमीन से उपजा है। सचमुच का सांस्कृतिक परिवर्तन दलित साहित्य ही कर सकता है।

इस प्रकार दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि की इस आत्मकथा में उनकी शिक्षा तथा दलित लेखक के वास्तविक जीवन की पीड़ा, सदियों से चली आ रही शोषण व अत्याचार की गूंज, वेदना तथा टीस समाज में किस तरह से व्यक्त होती है, यह इस आत्मकथा के शैक्षणिक और सामाजिक संदर्भ में देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधाकृष्णन प्रकाशन प्रात्र लि. नई दिल्ली 1997 पृष्ठ सं. 89
2. यंग इण्डिया, 20 अक्टूबर, 1927
3. जूठन, पृष्ठ सं. 14
4. वही, पृष्ठ सं. 15
5. वही पृष्ठ सं. 15
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 62
7. वही पृष्ठ सं. 77
8. वही पृष्ठ सं. 34
9. वही पृष्ठ सं. 34–35
10. वही पृष्ठ सं. 54
11. वही पृष्ठ सं. 89–89
12. वही पृष्ठ सं. 121
13. जूठन, पृष्ठ सं. 121
14. वही पृष्ठ सं. 111
15. वही पृष्ठ सं. 82
16. वही पृष्ठ सं. 21
17. जूठन पृष्ठ सं. 21

❑ ❑ ❑

Scanned by CamScanner

समकालीन दलित कविता में सामाजिक संघर्ष और विद्रोह का स्वर

- मोहरसिंह बैरवा

''भूख जब भी इन्सान को बेजार करती है ,चेहरे का नकाब तार–तार करती है।''

दलित साहित्य दलित समाज के संघर्ष की मन व्यथा का दस्तावेज है जिसमें निषेध, नकार तथा विद्रोह सर्वोपरि है। समकालीन दलित कविता आज जिस पायदान पर है उसे देखकर कहा जा सकता है कि वर्तमान में यह कविता अपनी बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रही है, इसके माध्यम से भारतीय जनमानस में जागरूकता एवं चेतना का संचार हुआ है।

दलित कविता आनंद या रस का विषय नहीं है, बल्कि इसके द्वारा समाज के मानवीय पक्षों को उजागर किया गया है जहाँ मनुष्य से मनुष्य जुड़ता है और समता–ममता वाले समाज निर्माण की परिकल्पना की गई है।

दलित कविता ने अपनी एक विकास यात्रा तय की है, जिसमें वैचारिकता, जीवन–संघर्ष, विद्रोह, आक्रोश, नकार, निषेध, वर्ण–विद्वेष, साहित्यिक अलगाव जैसे प्रश्न बार–बार दस्तक देते हैं जो दलित कविता की विकास–यात्रा के अनेक आयामों से होकर गुजरते हैं। दलित कविता शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित, अपमानित दलित जन साधारण की समग्र आवाज है। दलित काव्य जीवन का काव्य है, कला का नहीं और उस जीवन का, जिसमें जिजीविषा का संघर्ष है।

दलित कवि के मूल में मनुष्य होता है, तो वह शोषण,असमानता के प्रति अपना विरोध दर्ज करेगा ही। जिसमे आक्रोश का होना स्वाभाविक है जो दलित कवि की अभिव्यक्ति को यथार्थ के निकट ले जाता है। उसके अपने अंतर्विरोध भी होते है,जो कविता में छिपते नहीं हैं बल्कि स्वाभाविक रूप से मुखरित होते है। दलित कविता का प्रभाव और उसकी उत्पत्ति है जो आज भी जीवन पर लगातार आक्रमण कर रही है। इसलिए कहा जा सकता है कि दलित कविता मानवीय मूल्यों और मनुष्य की अस्मिता साथ खड़ी है।

दलित चेतना दलित कविता को एक अलग और विशिष्ट आयाम देती है। यह चेतना उसे डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन और जीवन संघर्ष से मिली है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है जो समाज में फैले धार्मिक,राजनीतिक,शैक्षिक,आर्थिक भेदभाव से सावधान करती है। यह चेतना संघर्षरत दलित जीवन के उस अंधेरे से बाहर आने की चेतना है जो हजारों सालों से दलितों को मनुष्य होने से दूर करते रहने में ही अपनी श्रेष्ठता मानता रहा है। अतः एक दलित कवि की चेतना और एक तथाकथित उच्चवर्गीय कवि की चेतना में गहरा अंतर दिखाई देता है।

दलित कविता में अपने भोगे हुए दुःख,पीड़ा,अपमानों की चुभन तथा अभावग्रस्त जिंदगी का जिक्र है, जिसको अनेक दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की असमानता और मनुवादी वर्णव्यवस्था पर तीखा एवं आक्रामक भाव से दलित साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कविता संग्रह च् बस्स ! बहुत हो चुका च् में अस्पृश्यता को केंद्र में रखकर उस पर तीखा प्रहार किया है तथा यह कदम भी उठाया है कि –

''जिस रास्ते से चलकर तुम पहुँचे हो
इस धरती पर
उसी रास्ते से चलकर आया मैं भी
फिर तुम्हारा कद इतना ऊँचा
कि आसमान को भी छू लेते हो
तुम आसानी से
और मेरा कद इतना छोटा
कि मैं छू नहीं सकता जमीन भी।।''[1]

दलित कवि अपनी विवशता का वर्णन करते हुए कहता है कि जिसमे वह यह तय नहीं कर पाता है कि वह किस देश का है? या यह देश किसका है? आदि। अगर यह देश उसका है तो फिर यहाँ दो देश, एक सवर्ण समाज का और दूसरा दलित समाज का क्यों है? इस प्रकार की बिडम्बनापूर्ण त्रासद स्थिति का चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविता च्ठाकुर का कुआंज् में कहते है कि –

''चूल्हा मिट्टी का/मिट्टी तालाब की/तालाब ठाकुर का
भूख रोटी की/रोटी बाजरे की/बाजरा खेत का
खेत ठाकुर का/बैल ठाकुर के/हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी/फसल ठाकुर की
कुआं ठाकुर का/खेत–खलिहान ठाकुर के
गली–मुहल्ले ठाकुर के/फिर अपना क्या?
गाँव?
देश?''[2]

समकालीन दलित कविताओं में वर्णित होने वाली पीड़ा भोगी हुई तन और मन की वेदना है जिनमें अनेक दुखों, अपमान, दरिद्रता, अन्याय और अत्याचार को सहते – सहते शोषक वर्ग के प्रति घृणा, क्रांति और आक्रोश का स्वर मुखरित होता रहा है जिसके कारण दलित समाज को अस्पृश्य, जातीय अपमान और अछूत की संज्ञा देकर मुख्यधारा से अलग कर दिया गया।कवि दामोदर मोरे ने अपनी कविता 'अस्पृश्यता का डंक' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है कि –

''पेड़ ने नागिन से पूछा / तुमसे भी जहरीला कौन है?
नागिन बोली / अस्पृश्यता मुझसे भी जहरीली है
पेड़ ने पूछा / वह कैसे?
वह बोली, / क्योंकि अस्पृश्यता
एक ही बार हजारों को डसती है।''[3]

इतिहास इस बात का गवाह है कि अनगिनत वर्षों तक दलितों के शोषण का मुख्य कारण पेट ही रहा है। क्योंकि पेट ही सारी समस्याओं की जड़ है। यदि पेट न होता तो व्यक्ति संभवतः किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। दो वक्त की रोटियाँ ही शोषण का कारण बनती रही है।

''शक्ति का अवतार रोटियाँ
शिव स्वंय साकार है ये रोटियाँ
भूख में होता भजन यारों नहीं
भक्ति आधार है ये रोटियाँ।''[4]

दलित कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा और गतिशीलता की द्योतक है जिसके माध्यम से दलितों और वंचितों को संबलन मिलता है। कवियों का उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों को दूर कर समतामूलक समाज की स्थापना करना है।–

''ओ हिमालय / मूक बनकर कब तक खड़ा रहेगा?
तोड़ दे मौन के दरवाजे / कुचल दे अपने पैरों तले
सौगंध है तुम्हे, तुम्हारी गंगा – यमुना की / तू उबल पड़
तू कुहराम मचा दे / तू क्रोधित हो जा
और / आग लगा दे, इस रीतिवाद के बाड़े में।''[5]

दलित कवियों के साथ–साथ कवयित्रिओं ने भी अपनी लेखनी के माध्यम से मानव स्वतंत्रता, समता, प्रतिष्ठा तथा स्वाभिमान जैसी ज्वलंत समस्याओं को अपनी कविताओं में समाहित किया है तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए अपनी कविताओं को क्रांति गीत बनाया।–

''माँ बाप ने पैदा किया था गूंगा / परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही / निश्चित परिपाटी पर
बैसाखियों के सहारे / कितने पड़ाव आये
आज जीवन के चढ़ाव पर / बैसखियाँ चरमराती हैं
अधिक बोझ से / अकुलाकर
विस्फटित मन हुँकारता है / वैसाखियों को तोड़ दूं।''[6]

वर्तमान समय के पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियाँ सदैव दुःख, अपमान और उपेक्षा का पात्र रही है तथा आत्मसमर्पण ही स्त्री की विवशता का हथियार है। समाज में दलित कवयित्रिओं ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया है।–

''औरत होने की वजह से / बहुत कुछ झेलना पड़ता है
रात को दिन, दिन को रात / सूरज को चाँद कहना पड़ता है।
औरत जो खुद को इन्सान समझें / तो दुनिया ख़िलाफ हो जाती है।
समाज तूफान ले आता है / परिवार सहम जाता है
औरत तूफान पर चलती है / घृणा की ओढ़नी ओढ़ती है।
क्या फर्क पड़ता है / कोख में जीवन रखती है।
औरत जो नाचीज होती है।''[7]

दलित साहित्य के प्रेरणास्त्रोत एवं क्रन्तिकारी विचारक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर की मानवतावादी,समाजवादी विचारधारा ने दलित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। तथा इस विचारधारा ने दलित समाज में विद्रोह,क्रांति और संघर्ष की ज्वाला प्रज्वलित कर दी7 जिसके फलस्वरूप दलित समाज अब सिर्फ भोगे हुए सत्य को ही नहीं,बल्कि मनुवादी वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए संघर्षरत है। इस कारण अब वह दिन दूर नहीं है,जब दलित वर्ग अपनी चेतना के बलबूते पर अन्याय, अत्याचार,उपेक्षा तथा घृणा के प्रति आक्रोश व्यक्त न करें। इस संदर्भ में कवि विश्वप्रताप भारती अपनी कविता च्मुझे इंतजार है उस दिन काज् के माध्यम से कहना चाहते हैं। कि–

''रोज–रोज / नीच अछूत / सुन–सुनकर मैं
निश्चल पत्थर सा / हो गया हूँ /अत्याचार सह के।
सिर झुकाए / गुलामी की जंजीरों से बंधा हूँ।
मुरझा गई है / मेरे प्राणों की ज्योति / लेकिन फिर भी
जला रहा हूँ / क्योंकि / मुझे इंतजार है उस दिन का
जिस दिन मैं / अपनी सिसकियों से अपने अन्दर की
चिंगारी को / भड़कने पर मजबूर कर दूँगा।
और फिर / उन गुलामी की जंजीरों को तोड़कर
उस पाखंड से लडूंगा / जो आदर्शों के / विभिन्न रूपों
का चोला पहनकर / तमाशाई बनकर / तथाकथित
धर्म की किताबों में सजा है / जिसके कारण
मेरी शानो– शौकत में / धब्बा लगा है।''[8]

अब वह समय आ गया है कि दलितों ने शिक्षा के माध्यम से अपने हक़ और अधिकारों को पहचान लिया हैं। तथा शिक्षा के माध्यम से ही उन्होंने अन्याय, दमन, शोषण तथा अपमान के खिलाफ आवाज उठाना शुरू कर दिया है–

''मैंने अब उठा ली है कलम /झाड़ू के बदले
करेगें साफ तुम्हारी सारी गंदगी / बचाएगें हम

देश की टूटती एकता को।''[9]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित कविता जीवनवादी कविता है, जिसमें संघर्षशील दलित जीवन के अपमान, अन्याय,अत्याचार और दमन को एक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। दलित कविता में समाज का वास्तविक स्वरुप नजर आता है। जहाँ पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकारों की मांग ही नहीं, अपितु वर्ण–व्यवस्था का विरोध और बाबा साहेब अम्बेडकर के सिद्धांत–वर्ग विहीन समतावादी समाज की स्थापना करना ही इसका प्रधान लक्ष्य है। अतः दलित कविता का उद्‌भव भी दलित समूह की यातना और शोषण के फलस्वरूप हुआ है। विद्रोह इसके मूल में है, तथा वर्ण–व्यवस्था को नकारकर समस्त मानव जीवन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना ही उसका परम ध्येय है।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 76
2. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 3
3. सदियों से बहते जख्म, दामोदर मोरे, पृ. 57
4. तरकश,ऋषभदेव शर्मा, तेवरी प्रकाशन खतौली, पृ. 20
5. दलित साहित्य वार्षिकी, सं. जयप्रकाश कर्दम 2015, पृ. 137
6. विद्रोहिणी, सुशीला टांक भौरे
7. नाचीज, रजनी तिलक
8. बयान, सं. मोहनदास नैमिशराय अंक अगस्त 2012, पृ. 29
9. कलम के जरिए,डॉ.सी.बी.भारती, आक्रोश पृ. 12

शोधार्थी
शहीद कैप्टिन रिपुदमन सिंह
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाईमाधोपुर (राज.)